समर्पण।

—:※:—

यह पुस्तक हमारे देशकी छोटी बड़ी प्रिय बहिनोंके करकमलोंमें बन्धु-द्वितीयाके उपलक्ष्यमें उपहारस्वरूप सप्रेम समर्पित है।

'गोविन्द'

निवेदन ।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।"

पाश्चात्य देशोंमें विख्यात स्त्री-पुरुषोंके स्वर्णकार्य (Golden deeds) लिखनेकी प्रथा है। हमारे देशके पुराण और इतिहासोंमें ऐसे स्त्री-पुरुषोंकी कमी नहीं, परन्तु अभीतक इस ओर विशेषतया किसीका ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है। हिन्दीमें स्त्रियोपयोगी पुस्तकोंका अभाव देखकर हम यह पुस्तक लेकर आप लोगोंके सामने उपस्थित हुए हैं। हमें विश्वास है कि, भारतकी आदर्श सती स्त्रियोंके जीवनचरितोंके पाठसे हमारी बहिन-बेटियोंको मनोरञ्जनके साथ इतिहासका भी ज्ञान होकर बहुत कुछ लाभ पहुंचेगा।

स्त्रियोंकी सुशिक्षापर ही भावी सन्तानका जीवन निर्भर रहता है। सीताके पातिव्रत्य और रामके पत्नीप्रेमसे रामायणकी रचना हुई, कुन्तीके पुत्रवात्सल्य और द्रौपदीकी कर्तव्यनिष्ठासे महाभारत बना, जीजाबाईकी शिक्षासे शिवाजी स्वराज्यकी स्थापना कर सके और 'अलेक्झाण्डर,' 'नेपोलियन,' 'अल्फ्रेड दि ग्रेट,' 'पिटर दि ग्रेट' आदि महापुरुष मातृशिक्षाके प्रभावसे ही वैभवशाली हुए थे। वास्तवमें सन्तानके लिये मातासे बढ़कर और कोई गुरु नहीं हो सकता।

देशप्रेमी सज्जनोंकी यदि यह इच्छा है कि, अपने देशमें अच्छी माताएँ उत्पन्न हों,—जिनसे और जिनकी सन्तानसे देशका मङ्गल अवश्यम्भावी होगा,—तो उन्हें अपनी कन्याओंके सामने बचपनसे ही ऐसे आदर्श-चरित्र रखने चाहिये, जिनका अनुकरण करती हुई आगे चलकर वे सुगृहिणी हो सकें। इस पुस्तकमें जिन साध्वी स्त्रियोंके जीवनचरित संगृहीत हुए हैं, उनमें अनेक आदर्श देख

पड़ेंगे। कोई असाधारण विदुषी हैं, तो कोई दानशीला हैं, कोई रणकर्मकुशला हैं, तो कोई त्यागपरायणा हैं। इस प्रकारकी अनेक गुण-सम्पन्ना विविध सतियोंके चरित्र इस पुस्तकमें अंकित होनेसे इसका जो कन्यायें या महिलाएँ अध्ययन करेंगीं, वे अपने स्वभाव और रुचिके अनुसार उन सतियोंमेंसे किसीको आदर्श स्वरूप चुन सकेंगीं। प्रत्येक चरित्रमें सतीत्वभावका उत्कर्ष दिखानेमें विशेष ध्यान दिया गया है और सावधानी इस बातकी रक्खी गई है कि, किसी धर्म-मत-पन्थसे कोई चरित्र विरुद्ध न हो; जिससे सब जाति-धर्मकी कन्याओंके उपयुक्त यह पुस्तक हो सके।

इसका प्रथम संस्करण काशीके बालबोध कार्यालयने सन् १९१४ में प्रकाशित किया था। उस समय मध्यप्रान्तके सरकारी शिक्षा-विभागकी अनुकूलता और सर्वसाधारणकी कृपासे १-२ वर्षोंमें ही इसकी २५०० प्रतियाँ बिक गईं। प्रतियाँ अप्राप्य हो गईं और मांग बनी ही रही; परन्तु शीघ्र इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करनेका सुयोग प्राप्त नहीं हुआ। श्रीभारतधर्ममहामण्डल-की कृपा और सहायतासे अब यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसके प्रकाशनसे आर्यमहिलाहितकारिणीमहापरिषद्के उद्देश्योंकी पूर्त्ति होकर स्त्रीशिक्षावृद्धिमें भी यथेष्ट सहायता मिलेगी। महामण्डलके सञ्चालकोंके अनुरोधसे इसमें लगभग पहिलेसे दुगुने चरित्र नये लिखे गये हैं, जिससे पुस्तक भी बड़ी हो गई है। आशा है, प्रथम संस्करणकी तरह इस संस्करणको भी राजपक्ष और प्रजापक्ष अपनाकर हमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

इस पुस्तकका स्वत्वाधिकार काशीके श्रीविश्वनाथ—अन्नपूर्णा-दानभण्डारको हम सहर्ष अर्पण करते हैं और स्वजातीय शास्त्र-प्रकाशनकार्यके लिये स्थापित भारतधर्म सिंडिकेट लिमिटेडको इसे प्रकाशित करनेकी अनुमति देते हैं। निवेदक—सम्पादक।

विपयसूची ।

—०※०—

विपय	पृष्ठ ।
सती पार्वती	१
सती सीता	१२
सती सावित्री	२७
गार्गी	३४
मैत्रेयी और कात्यायनी	३७
सती वेहुला	४६
अरुन्धती	५३
सुनीति	५७
कयाधू	५८
शैव्या	६०
सुलोचना अथवा प्रमिला	६१
गान्धारी	६४
दमयन्ती	६५
मदालसा	७२
सती अनुसूया	७६
सती सुकन्या	८४
शशिकला	८६
सती गोपा	९४
दाहिरकी राजपत्नी	१००
राजकन्या सुजावाई	१०४
रानी भवानी	११०

विषय	पृष्ठ ।
सती करमदेवी	११६
सती ताराबाई	१२४
राजमाता जीजाबाई	१३७
कुमारी कृष्णा	१५३
लीलावती	१५८
रानी कुँवर साहब	१६१
देवी अहिल्याबाई	१६५
वीरपत्नी, वीरमाता और वीरभगिनी ...	१७८
जोहराबाई	१८१
पन्नादाई	१८५
शिलाद-पत्नी	१८६
चित्तौरकी रानी	१९२
सती खना	१९५
मलयबाई देसाई	२००
सच्ची सहधर्मिणी नीरकुमारी	२०२
हमीर-माता और हमीर-पत्नी	२०४
सती संयोगिता	२०६
सती पद्मिनी	२१३
रानी दुर्गावती	२१६
सती जयावती	२२४
साध्वी मीराबाई	२२६
रानी प्रभावती	२२३
महारानी लक्ष्मीबाई	२३६

सती-चरित्र-चन्द्रिका।

अथवा

भारतकी सती स्त्रियाँ।

सती पार्वती।

(१)

पूर्व जन्ममें पार्वती दक्षप्रजापतिकी कन्या थीं। उन्होंने स्वयं अपनी इच्छासे महादेवके साथ विवाह कर लिया। इसलिये दक्ष बहुत ही नाराज हो गये। उन्होंने बड़ा भारी यज्ञ किया। यज्ञके लिये सब देवताओंको निमन्त्रण दिया गया पर महादेवको नहीं। दक्षकी कन्या, सतीका हृदय इस बातसे बहुत ही दुःखित हो गया। उन्होंने स्वामीकी आज्ञा लेकर पिताके घरकी यात्रा की। वहाँ दक्षने सतीके मुँहपर ही शिवकी बड़ी निन्दा की। इस अपमानके मारे सतीने प्राण त्याग कर दिया और साथ आये हुए गणोंने दक्षयज्ञका विध्वंस कर डाला। इधर उनके शरीर छोड़ते ही महादेव शक्तिशून्य हो गये। वे सब कुछ छोड़-छाड़ कर ध्यानमें मग्न हो गये। फिर तो नन्दी, भृंगी आदिके जो जीमें आता, वही करने लगे। वे कभी सब देहमें भस्म रमाते, कभी नेमरुके फूलोंके गहने पहनते, कभी भूर्जपत्रके कपड़ोंसे शरीर ढँकते,

कभी सोये रहते, कभी घठे रहते और कभी उछल कूद मचाया करते थे।

महादेव तो मृत्युञ्जय ठहरे। वे गङ्गाके किनारे एक देवदारुके पेड़के नीचे बैठे ध्यानमें मग्न रहने लगे। वे मृगनाभिकी गन्ध सूंघते, बाघकी छाल पहनते और किन्नरोंका गाना सुना करते थे। पर पार्वती तो मृत्युको न जीत सकीं—वे मर गयी थीं। इसीलिये उन्हें फिर जन्म लेना पड़ा। इस बार उनके पिता हुए हिमालय, माता हुई मेनका और भाई हुआ मैनाक। वे इकलौती बेटी थीं, अतएव उनका बड़ा लाड़-प्यार होने लगा। उनके अधिक प्यारका एक और भी कारण यह था कि, इन्द्र कहीं उसके पंख न काट डालें, इस डरके मारे उनका भाई, मैनाक सदा जलमें ही डूबा रहता था, कभी घर नहीं आता था। पर्वतोंके पङ्ख कटनेकी बात कोरी चण्डूखानेकी गप्प नहीं है। जिन लोगोंने मसूरीके बाज़ारमें खड़े होकर शिवालय पर्वतकी ओर आँख उठाकर देखा होगा, उन्हें अवश्य ही ऐसा मालूम हुआ होगा, मानों कोई पर-कटा कबूतर गिर पड़ा है।

(२)

पार्वती, आद्या-शक्ति और सर्वव्यापिनी होनेके कारण उनके ही न रहनेसे महादेव शक्तिशून्य होकर केवल इसी ध्यानमें मग्न हो गये कि, फिर कब वह मेरी शक्ति लौट आवेगी। और एक बात है। देवताओंको एक नये सेनापतिकी आवश्यकता हुई है। ब्रह्माने तारकासुरको वर दे दिया था कि, तुम्हें देवता न मार सकेंगे। इसीसे उसने देवताओंको स्वर्गसे मार भगाया और तरह तरहसे वह उन्हें दुःख दे रहा है। ब्रह्मा कह चुके हैं कि,—"तुम लोग उसे नहीं जीत सकोगे। महादेवके पुत्र ही उसको हरा सकते हैं। पर कठिनता तो यह है कि, महादेव ध्यानमग्न हैं!

वे परं-ज्योति ठहरे, न तो मैं ही उनकी ऋद्धि और प्रभावकी थाह लगा सकता हूँ और न विष्णु ही उनका पार पा सकते हैं। अतएव यह तो आशा नहीं कि, हम दोनोंके समझाने बुझानेसे वे व्याह करनेको तैयार होंगे। हाँ, उमाका रूप उन्हें मोहित कर सकता है। अगर ऐसा कर सको कि, वे उमाका रूप देखकर मोहित हो जायँ, तो सारा काम बन जाय। वे उमाके रूपसे आकृष्ट हो विवाह करेंगे, उनके पुत्र होगा और वही पुत्र तारकासुरका वध करेगा।"

एक दिन नारदने हिमालयके घर आ कर देखा कि, बालिका पार्वती उनके पास आकर बैठी हुई है। उन्होंने कहा कि, यह लड़की एक दिन महादेवकी एकमात्र पत्नी होगी और किसी दिन उनके शरीरका आधा भाग अधिकार कर लेगी। यह बात सुन, हिमालयने और किसी वरके लिये चेष्टा करनी छोड़ दी; पर इससे वे बड़े फन्देमें पड़े। वे अपनी ओरसे अनुनय-विनय करके तो कन्या दे नहीं सकते; क्योंकि महादेव कठोर तपस्यामें निमग्न हैं। इस समय उनके पास विवाहकी बात लेकर कोई कैसे जाय? अतएव उन्होंने एक दिन महादेवकी पूजा कर प्रार्थना की कि, मेरी यह कन्या आपकी पूजा करना चाहती है, आप आज्ञा दें तो यह सेवा करे। महादेवजीने हामी भरी; क्योंकि वे जानते थे कि, उनके मनमें किसी तरह विकार नहीं पैदा हो सकता।

उसी समयसे पार्वतीजी अनन्य-मनसे महादेवकी सेवा-शुश्रूषा करने लगीं। वे उनकी पूजाके फूल चुनतीं, आसनके लिये ठौर कर देतीं, पानी भर लातीं, कुश ला देतीं; इसी तरह वे नित्य उनकी सेवा किया करती थीं। महादेव उन्हें किस दृष्टिसे देखते थे, यह कविने नहीं लिखा; पर यह लिखा है कि, पार्वती महादेवके मस्तकपर जो चन्द्रकला है, उसीकी किरणोंसे अपनी थकावट दूर

करती थीं। इससे तो यही मालूम होता है कि, उनकी इतनी बड़ी सेवाका यही पुरस्कार उन्हें मिला। महादेव उन्हें अपने शिरकी चन्द्रिकामें नहाने देते हैं, बस्—इसीसे पार्वती कृतार्थ हो जाती हैं।

(३)

इसी तरह दिन बीतते गये। पर देवताओंसे अब देर नहीं सही जाती। वे एकदम ऊब उठे हैं। इन्द्रने सभा कर कामदेवको बुलाया। देवताओंकी अवस्था उसे समझा दी गयी। इसके बाद बोले कि,—"तुम एक बाण छोड़कर हम लोगोंकी रक्षा करो।" कामदेवने सोचा कि, यह तो बांये हाथका खेल है। यही सोचकर उसने वसन्तको बुलाया, रतिको साथ ले लिया और सबको लिये दिये महादेवके आश्रममें जा पहुँचा। बिना समयके ही हिमालय-पर वसन्त-ऋतु छा गई। स्थावर जङ्गम सभी आनन्द और मिलन-की आशासे प्रफुल्लित हो गये। आश्रमके बाहर फूल खिल उठे, पशु-पक्षी अपने जोड़ेके साथ घूमने फिरने लगे। किन्नर-किन्नरियां गलेसे गला मिलाये गाने लगीं। महादेवको इन सब बातोंकी कोई चिन्ता नहीं थी—वे यथासमय ध्यानमें डूब गये। नन्दीने देखा कि, गण लोग तो बड़े ही चञ्चल हो उठे हैं। उन्होंने होठ-पर अङ्गुली रख कर कहा,—"देखो, चुप रहो।" बस्—सब चुप हो रहे। वसन्तका सब जोर थम गया। कामदेव भी पीछेसे अपना निशाना साध रहा था; पर महादेवका चेहरा देखते ही उसके हाथसे धनुष-बाण गिर पड़े। कैसे गिर पड़े, इसका उसे पता भी न लगा। उसका भी सारा अभिमान टूट गया। इसी समय कहींसे पार्व्वती आ पहुंची। मदन तो छिपे छिपे नन्दीकी आंखों-में धूल फेंक कर आश्रममें घुस भी पड़ा था। वसन्तसे इतना भी पार न लगा। अबकी उसने पार्व्वतीको अपना सहारा बनाया

और उन्हें फूलोंके गहने पहना किसी-किसी तरह आश्रममें ले आया। पार्व्वतीके आते ही महादेवका ध्यान छूट गया। मदनके मनमें आशा उपजी। पार्व्वतीने रीतिके अनुसार पूजा करना आरम्भ किया। इसके बाद कमलकी कलियोंकी माला लेकर जब पार्व्वतीने उनके गलेमें पहिना देनी चाही, तब महादेवने उसे हाथ बढ़ा कर अपने हाथमें ले लिया और "तुम्हें अनन्यसाधारण पति प्राप्त हो" ऐसा आशीर्वाद दिया। कामदेवने देखा कि, बस्—यही अवसर ठीक है। यही सोच कर उसने धनुषपर बाण चढ़ाया। महादेवका मन भीतर ही भीतर बड़ा चञ्चल हो उठा। उन्होंने चारों ओर दृष्टि फेरी। कामदेव उनकी नज़रों तले आया, बस्—क्रोधसे तमतमा उठे। उसी क्षण उनके तीसरे नेत्रसे अग्निने प्रकट होकर कामको जला कर भस्म कर डाला। महादेवको रूपज-मोह नहीं, इन्द्रिय-विक्षोभ नहीं, इसी लिये उन्होंने मोहके कर्त्ताको जला डाला और आप वहांसे चल दिये। वे सर्वव्यापी ठहरे—कहां चले गये, किसीने नहीं जाना।

मदनने जब तीर छोड़नेके लिये धनुषपर रक्खा था, तब पार्वती महादेवके सामने ही थीं। उस बाणके प्रभावसे उनके भी शरीरके रोंगटे खड़े हो गये। उन्हें बड़ी लज्जा मालूम हुई। वे नीचा सिर किये भूमिकी ओर देखती रह गईं। ज़रा सम्हलकर बैठीं, तो उन्हें इस बातका बड़ा दुःख हुआ कि, बाबाकी वे लम्बी लम्बी आशायें तो चूर-चूर हो गयीं। वे अपने रूपको आप ही धिक्कार देने लगीं और शून्य मनसे घर लौटीं। इसी समय उनके पिता आये और उन्हें गोदमें उठा कर ले चले। सब कुछ हो बीता। हिमालयकी आशालता मुर्झा गई, देवताओंकी आशाकी जड़ कट गयी। इधर कामदेव भी जलकर भस्म हो गया, रति मूर्छित हो गयी; परन्तु पार्व्वतीने आशा नहीं त्यागी।

(४)

जब महादेवने देखते ही देखते कामदेवको जला डाला, तब वे मेरी ओर काहेको देखेंगे? यह सोचकर पार्वती खिन्न सी हो गयीं। उन्हें अपने आप पर ही बड़ी अवज्ञा हुई कि, व्यर्थमें विधाताने मुझे इतना रूप दिया है। पर अब क्या हो सकता है? अब तो सिवा तपस्या करनेके और कोई उपाय नहीं है। इसलिये उन्होंने तपस्या करनेकी ही ठानी। मांको जब यह हाल मालूम हुआ, तब वे बारबार उन्हें मने करने लगीं, पर रोक न सकीं। भला कैसे रोक सकतीं? जल जब नीचेकी ओर जाने लगता है, तब जिस तरहसे उसकी गति नहीं रोकी जा सकती, उसी तरह जिस आदमीने मनही मन कोई संकल्प स्थिर कर लिया हो, उसकी गति भी कोई नहीं रोक सकता।

होते होते यह बात बापके कानों तक पहुंची। सुनकर वे प्रसन्न हुए। बिना तपस्या किये, बिना ऐसे दृढ़ संकल्प किये हुए, क्या इतना बड़ा स्वामी पा लेना सहज बात है? उन्होंने झटपट तपस्या करनेकी अनुमति दे दी। पार्वतीने तपोवनकी यात्रा की। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बालोंकी जटा बनायी, हाथमें रुद्राक्षकी माला ले ली और भूमि ही अपनी शय्या बनायी। नयनोंकी वह चञ्चलता दूर हो गयी। आप ही पानी भर भरकर पेड़ोंकी जड़में सींचने लगीं। उन्होंने तपोवनके सब हरिणोंको अपने हाथों खाना देकर वशमें कर लिया। वे जब स्नान कर, अग्निमें आहुति दे, बघछालेकी ओढ़नी ओढ़े वेद पढ़ने बैठतीं, तब उन्हें देखनेके लिये ऋषिगण भी आया करते थे। क्रमसे तपोवन पवित्र हो उठा, पशुओंने परस्परका बैर छोड़ दिया, अतिथिसेवाके लिये फलफूल वहीं खूब फलने लगे, फूसकी नयी मड़ैयामें यज्ञकी अग्नि जलने लगी।

इतने पर भी जब महादेवके मनमें दया नहीं उपजी, तब

पार्वतीने और भी कठिन तपस्या करनी आरम्भ की। गरमीके दिनोंमें सिरपर तपते हुए सूर्य्यके रहते हुए, पार्वती अपनी चारों ओर अग्निके कुण्ड जलाकर पञ्चतप करने लगीं। उनकी आंखोंकी चारों ओर काले निशान पड़ गये। उपवासके बाद वे पारणा करतीं आकाशके जल अथवा चन्द्रमाकी किरणोंसे। बरसात लगने पर जब नया जल आसमानसे गिरने लगा, तब उनके शरीरसे गरमी बाहर निकलने लगी। उन्होंने कुटीके अन्दर रहना छोड़ दिया और आसमानके नीचे, पत्थरोंकी चट्टान पर वे सोने लगीं। पूसके महीनेमें वे सारी रात पानीमें ही रहकर बिता देती थीं। उनका मुखड़ा कमलकी तरह पानीके ऊपर तिरता हुआ दिखलाई पड़ता था। पेड़ोंके झड़े हुए पत्ते खाकर ही रह जानेसे लोग समझते हैं कि, तपस्याकी हद हो गयी। लेकिन् पार्वतीने यह खाना भी छोड़ दिया। पत्तेको संस्कृतमें 'पर्ण' भी कहते हैं। उन्होंने पत्ते खाना भी छोड़ दिया, इसीलिये उनका नाम 'अपर्णा' पड़ गया। बड़े बड़े तपस्वी भी इतना कठोर व्रत नहीं पालन कर सकते।

(५)

इन्हीं दिनों पार्वतीके आश्रममें एक जटाधारी आ पहुँचे। इस बार पार्वतीकी अग्नि-परीक्षा थी। जटाधारीका चेहरा बड़ा सुन्दर था। वे आश्रममें आकर अतिथि हुए। पार्वतीने उनका सत्कार करनेमें कोई बात उठा नहीं रक्खी। अब तो जटाधारी बाबा खूब जमकर बैठ रहे और लगे यों राग अलापने—"कहिये, आपकी तबीयत कैसी है? आश्रमका क्या हालचाल है? वृक्षोंमें पानी तो ठीकसे पहुंचता है न?" इत्यादि-इत्यादि। फिर कहने लगे,—"तुम ऐसी सुन्दरी और राजाकी लड़की होकर भला यह तपस्या क्यों कर रही हो? क्या किसी वरकी इच्छासे? मुझे तो दुनियांमें ऐसा कोई युवक नहीं दिखाई देता, जिससे तुम ब्याह करना चाहो

और वह इसे अपना अहोभाग्य न समझे। यदि देवताको पति-रूपमें पाना चाहती हो, तो कितने ही देवता तुम्हारे पिताके ही राज्यमें वसते हैं। मालूम होता है कि, किसीने तुम्हारा अपमान किया है, इसीलिये तुम ऐसी कठोर तपस्या कर रही हो। पर नहीं, यह वात ठीक नहीं; क्योंकि तुम हिमालयकी लड़की हो, भला तुम्हारा अपमान करनेका कौन साहस कर सकता है? जो हो, तुम कष्टको पूरा पूरा उठा रही हो; लेकिन् मैं एक बात कहता हूं, वह सुनो। मैंने बहुतसी तपस्या सञ्चित कर रक्खी है, उसमेंसे मैं तुम्हें आधी दिये डालता हूं। उसे लेकर तुम अपनी मनोवाञ्छा पूरी करो।"

जब जटाजूटधारी बाबाने पार्वतीके हृदयपर असर करनेवाली ये वातें कहीं, तब उन्होंने अपनी सखीकी ओर सङ्केत किया। उसीने सारा हाल बतला दिया। सबसे पहले तो उसने यही बात कही कि,—"पार्वतीका प्रेम महादेवपर हो गया है। मालूम होता है कि, महादेवके हुङ्कारसे कामदेवके हाथोंसे जो वाण छूटकर दूर जा गिरा था, वह पार्वतीके हृदयमें ही आकर बिंध गया है। उसी समयसे ये अनमनीसी हो रही हैं। किसी तरह इनका जी चैन नहीं पाता। जब किन्नरियाँ महादेवका चरित गाने लगती हैं, तब इनका दिल भर आता है, खुद गाना तो पार लगना ही नहीं, उलटा गला भारी हो आता है, आवाज़ लड़खड़ाने लगती है, जिसे देख किन्नरियाँ रो देती हैं। रात बीतते बीतते सुपनेमें महादेवको देख चिल्ला उठती हैं,—'हे नीलकण्ठ'! तुम कहां हो?' बस, तुरंत ही नींद खुल जाती है। चुप चाप अपने हाथों महादेवकी प्रतिमूर्त्ति बना, उसे सम्बोधन कर कहा करती हैं कि,—'पण्डित लोग तुम्हें सर्वगत कहते हैं—अर्थात् तुम्हें घट-घटके अन्तर्यामी बतलाते हैं; फिर क्यों तुम्हें यह नहीं मालूम होता कि, मैं जो इतनी पागल हो रही हूं, वह केवल मात्र तुम्हारे ही लिये।' इसने इतने

दिनोंतक तपस्या की है कि, इसके रोपे हुए पेड़ अब फल देने लगे। पर न तो आज तक इसकी मनस्कामना पूरी हुई, न इसका कोई लक्षण ही दिखाई देता है। न मालूम देवादिदेव कब मेरी सखीपर दया करेंगे! हम सखियोंसे तो अब बेचारीका मुंह भी नहीं देखा जाता।"

जटाजूटधारीने यह सारा हाल सुन, पार्वतीकी ओर मुंह फेर कर पूछा,—"क्या यह सब सच है या कोरी दिल्लगी है?"

पार्वती अब तक स्फटिककी अक्षमाला जप रही थीं। अबके उन्होंने मालाको आगे रख, बातें करनेकी चेष्टा की। पर मुंहसे बात ही नहीं निकलती। बड़े यत्नसे उनके मुँहसे दो-चार बातें निकल सकीं। अबतक हमलोग औरोंके ही मुंहसे सुनते आते थे कि, पार्वती महादेवके प्रेमकी आकांक्षिणी हैं; अथवा उनके आचार व्यवहार देखकर इस बातका अनुमान करते थे। अब हमलोग उन्हींके मुँहसे उनके दिलकी बातें सुन सकेंगे।

पर बातें अधिक नहीं—गिनी-चुनी दो दो बातें हैं। वे बातें कौनसी थीं, यह जाननेके लिये शायद आपलोगोंको भी बड़ा कौतूहल हो रहा होगा। अच्छा, तो सुनिये। पार्वतीने कहा,—"आपने जो कुछ सुना है, वह सब ठीक है। मेरी आशा बड़ी लम्बी चौड़ी है। इसीसे मैं इतना तप कर रही हूं; क्योंकि—"मनोरथानामगतिर्न विद्यते।"

पार्वतीने अपने प्रेमका जैसा प्रकाश किया, क्या वैसा आजतक किसीने भी किया था? इस प्रेमप्रकाशमें न तो चञ्चलता है, न इन्द्रिय-विक्षोभ है। और यह बात भी तो इस दुनियाँकी सी नहीं है। यह स्थिर, धीर, अटल और अचल प्रेम है। "मैं कुछ नहीं हूं, मेरी आकांक्षा बौनेके चाँद छूनेके समान बहुत बड़ी है; लेकिन अब मेरी और कोई गति नहीं है, इसलिये तपस्या कर रही

हूँ ।" इस बातसे कितनी दीनता, कितना आत्म-विसर्जन, महादेव-पर कितनी भक्ति, कितनी श्रद्धा और कितना प्रेम प्रकट होता है !

जटाधारीने कहा,—"मैं महादेवको अच्छी तरह जानता हूं—तुम उन्हें ही पति बनाना चाहती हो। पर मैं जहाँ तक जानता हूँ, वे अमङ्गलसे भरे हुए हैं। मेरी तो राय नहीं है कि, तुम्हें इस काममें आगे बढ़नेको कहूं। यह सम्बन्ध बड़ा ही बे मेल होगा। कहाँ तो तुम ब्याहका 'कंगन' पहनोगी और कहाँ उनके हाथमें साँप लिपटा होगा ! भला यह कैसे मेल खायेगा ? तुम रेशमी साड़ी पहन कर दुलहिन बनकर जाओगी और उनके शरीरमें हाथीकी ताजी खाल, जिससे लहू टपकता होगा, रहेगी।" इस तरह उन्होंने अच्छी तरह साबित कर दिया कि, महादेवके साथ कदापि पार्वतीका विवाह नहीं हो सक्ता। यह कह, वे और भी तरह तरहसे महादेवकी निन्दा करने लगे। जिन्होंने एक बार बापके मुँहसे शिव-निन्दा सुनकर प्राण त्याग कर दिया था, वे भला एक बेजान पहचानके मनुष्यके मुँहसे इतनी निन्दा सुनकर कैसे चुपचाप सह लेतीं ? यह तो कभी सम्भव नहीं था। जिनके मुँहसे इतनी बात भी नहीं निकल सकी थी कि, मैं शिवकी प्रेमाकांक्षिणी हूँ, बल्कि यही इतना कहा था कि, आपने जो कुछ सुना है, वह सच है। इस बार उनका भाव और का और हो गया। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं, आँख लाल हो आयीं, क्रोधसे होंठ फड़कने लगे, कलेजेमें आगसी जल उठी। वे बड़ी दृढ़ता भरे स्वरमें बोलीं,—"तुम महादेवको भली भांति नहीं पहचानते, इसी लिये ऐसी बातें कर रहे हो, नहीं तो ऐसा क्योंकर कहते ? निर्बोध मनुष्य महात्माओंके चरित्रको समझ तो सकते नहीं, क्योंकि उनके चरित्र साधारण लोगोंकी तरह नहीं होते; इसीलिये वे ऊटपटाङ्ग बका करते हैं। लाख सिर मारें, पर वे उसका मर्म नहीं समझ सकते।" यह कह

पार्वतीने एक-एक करके तपस्वीकी सभी बातोंका खण्डन कर दिया। अन्तमें बोलीं,—"तुमसे बहस करनेका कुछ मतलब नहीं। तुम उन्हें बुरा समझते हो, तो समझा करो, पर मैं तो उन्हें अपना हृदय दे चुकी हूँ। अब उसे लौटा थोड़े सकती हूँ? मैं निन्दा स्तुतिकी कोई परवाह नहीं करती। मैंने अपनी इच्छासे अपनेको उनके चरणोंमें सौंप दिया है।"

अपनी बातें पूरी होते न होते उन्होंने देखा कि, तपस्वीके होंठ फड़क रहे हैं, शायद वे और कुछ कहा चाहते हैं। यह देख, उन्होंने सखीसे कहा,—"तुम उन्हें रोको; क्योंकि केवल बड़ोंकी निन्दा करनेवाले ही अपराधी नहीं होते, जो उनकी बातें सुनते हैं, उनपर भी अपराध चढ़ता है। नहीं तो कहो, मैं ही यहांसे चली जाऊँ, व्यर्थकी बकझकसे क्या मतलब है?"

यह कह वे ज्योंही वहांसे उठकर जाने लगीं, त्यों ही महादेवने अपनी असल मूर्त्ति प्रकट कर दी और उनका हाथ थाम लिया। पार्वतीका एक पैर उठा था, वह ज्योंका त्यों रह गया। वे 'न ययौ न तस्थौ'—न जा सकीं, न ठहर सकीं। उनकी देह कांपने लगी, पसीना टपकने लगा। महादेवने कहा,—"तुमने तपस्या करके मुझे खरीद सा लिया है। मैं तुम्हारा दास हूँ।" यह सुन पार्वती-का कठोर भाव लुप्त हो गया, तपस्याकी कुल क्लान्ति दूर हो गयी, उनके शरीरमें एक नवीन स्फूर्त्ति पैदा हो गयी।

इसीका नाम प्रेम है। इसमें कामनाकी गन्धि तक नहीं है। कामका अर्थ यहां समस्त इन्द्रियोंके विषयका लिया गया है। "मुझे अपने प्यारेके दर्शन नहीं चाहिये, स्पर्श नहीं चाहिये, उनका स्वर सुनना नहीं चाहिये, उनके शरीरकी गन्धि सूंघना भी मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं केवल उन्हें मन प्राण सर्वस्व देकर उनकी पूजा करना चाहती हूं। वे मुझे अपने चरणोंके नीचे स्थान दें, बस उसीसे

मैं कृतार्थ हो जाऊँगी।"—यह कितने ऊँचे दर्जेका अपूर्व प्रेम है, कड़ी तपस्या है, यह आप ही सोच देखें। हृदयमें ऐसा निःस्वार्थ प्रेम भी बड़ी तपस्याओंसे पैदा होता है। इसीसे पार्वतीने कठोर तपस्या की थी। उनका मनोरथ सिद्ध भी हुआ। महादेव स्वयं उनकी परीक्षा लेने आये, उन्होंने देखा कि, पार्वती खरा सोना है। इसीलिये उन्होंने अपनेको उनका दास कहा। वे आप ही आप उनसे विवाह करने आये। विवाहके बाद मदनकी जान बचा दी। इसके बाद दोनों मिल कर एक हो गये। पार्वती शिवकी अर्द्धाङ्गिनी हुई। ऐसा भाग्य किसीका भी नहीं हुआ—किसी देवताका भी नहीं हुआ।

—:o:—

सती सीता।

(१)

भगवती सीताकी प्रत्येक जीवनघटना ज्वलन्त आदर्शसे पूर्ण है। चरित्रचन्द्रिकामें उनके जन्म, विवाह आदिका वृत्तान्त लिखा गया है। यहाँ मुख्य मुख्य दो ही चार घटनाओंकी चर्चा की जायगी।

पूज्य पिताकी आज्ञासे जिस समय रामचन्द्रजी वन जानेके लिये सब माताओंसे आज्ञा ले, जानकीके पास जाकर समझाने लगे; उस समय जो उत्तर माताने दिया है, वह प्रत्येक हिन्दू स्त्रीको अपने अन्तःकरणपर स्वर्णाक्षरोंमें लिख लेना चाहिये। वास्तवमें जानकीकी प्रथम और विषम यही परीक्षा थी। भगवान् बोले,—"सीते! तुम

अयोध्यामें रहकर सास और ससुरकी सेवा करना, इनकी सेवा करनेसे बढ़कर कोई भी पुण्य नहीं है। यद्यपि मैं पिताकी आज्ञा मानकर वन जाता हूँ, परन्तु तुम निश्चय जानो कि, मैं सानन्द अयोध्या लौट आऊँगा। तुम वन जानेकी जरा भी इच्छा नहीं करो, क्योंकि बड़े बड़े दुर्दान्त राक्षसों और भीषण अजगरोंका वनमें निवास रहता है। रास्तेमें बिना जूतेके हम लोगोंको चलना पड़ेगा। इसलिये मार्गके कुशों, काँटों और कङ्कड़ोंसे असह्य व्यथा होगी। कंदराएँ, नदियाँ, खोह, नाले, खारे आदि ऐसे भयानक गहरे मिलेंगे कि, जिनको देखकर तुम किसी तरह भी ढाढ़स नहीं बाँध सकोगी। सिंहों, बाघों, भालुओं, भेड़ियों और हाथियोंके गगनभेदी भयावने शब्दोंको सुनकर हृदयमें कँपकँपी होने लगेगी। वल्कल पहनना होगा, जमीनपर सोना होगा और कन्द मूल फल खाने होंगे, सो भी कभी मिलेंगे और कभी नहीं। नाना कपट-वेष धरनेवाले और बराबर मनुष्योंका भक्षण करनेवाले बड़े बड़े विकराल निशिचरोंका सामना करना पड़ेगा।" इन सब बातोंको सुनकर वे जरा भी विचलित नहीं हुईं। तुरंत कहने लगीं—"आर्य्यपुत्र! सास, ससुर, पिता, माता आदि कोई भी पतिके सिवाय स्त्रियोंकी शरण नहीं है। आप जहाँ हैं, वहीं अयोध्या है और, स्त्रियोंके लिये तो जहाँ पति न रहें, वहीं भयावना जंगल है। मैं कमसे कम इसलिये तो अवश्य चलूंगी कि, आपके आगेके कुशों और कंटकोंको चुन सकूंगी। पति चाहे आकाशसे वा विमानसे ही क्यों न जाय, स्त्रीका धर्म है कि, उसकी चरणछायामें ही बराबर रहे। जैसे मैं पिताके घरमें सदा सानन्द रही थी, उसी तरह पातिव्रत्यके महत्त्वको स्मरण करती हुई भीषणसे भीषण वनमें भी सानन्द रहूंगी। हे नाथ! आपके बिना मैं किसी तरह यहाँ नहीं रह सकती। प्रभो! मैं आपको किसी तरह कष्ट नहीं दूंगी।

जो कुछ नाथका उच्छिष्ट मिलेगा, वहीं मैं खाकर रहूंगी। चौदह वर्ष ही नहीं, यदि हजार वर्ष भी रहना पड़े, तो भी कष्ट नहीं होगा। प्रियतम! मेरे चित्त और प्राण तुम्हारे चरणदर्शन विना किसी तरह भी शांत नहीं रह सकेंगे। कांटे मुझे रूईकी तरह लगेंगे और धग् धग् करती हुई धूप शीतल चन्दनकी तरह मुझे लगेगी। आपके चरणोंके साथ कण्टकमें सोनेके आनन्दके समान मुझे अयोध्याके पर्यङ्कशयनका आनन्द भी नहीं मिल सकेगा। नाथ! मुझे यदि आप अकेली छोड़ जायँगे तो मैं प्राण-धारण नहीं कर सकूंगी।" ऐसा कहती कहती सीता रोने लगीं और उनका कण्ठ बन्द हो गया। रामचन्द्रके हृदयमें रुका हुआ शोकसागर अब नहीं रुक सका, आन्तरिक प्रेमीके पास उमड़ पड़ा। परन्तु मर्यादाके अवतार भगवान् किसी तरह हिम्मत बाँध कर फिर बोले—"राजपुत्रि! वनकी भयङ्करता तुम नहीं जानती हो। सीते! याद रखो, ग्रीष्ममें प्रखर सूर्यकिरणोंसे पृथ्वी सदा तवेकी तरह जलती हुई दारुण दुःख देती है, वर्षामें प्रचण्ड जलवर्षणके और कड़क् कड़क् कर वज्रपात होनेके समय बड़े बड़े वीरोंको भी प्राणसे हाथ धोना पड़ता है और हेमन्त ऋतुके प्रबल हिमवर्षणके समय द्वन्द्वसहिष्णु तापसोंका भी जीवन धारण करना कठिन हो जाता है। इसलिये अयि जानकि! वन जानेके विचारको सर्वथा छोड़ो। मैं तुम्हारी भलाईके लिये सब कह रहा हूँ। क्या तुम नहीं जानती हो कि, मानसरोवरके अमृततुल्य जलमें पली हुई हंसिनी कभी नमकके विषैले समुद्रमें जी सकती है? क्या नन्दनविपिनकी कोकिला मरुस्थलमें जी सकती है? जनकनन्दिनि! तुम किसी तरह भी वन जानेका इरादा नहीं करो।"

ऐसी मर्मभेदिनी बातको सुनकर सिर पीटती हुई सीता रोती रोती बोलीः—

"प्राणनाथ! करुणायतन! सुन्दर सुखद सुजान!
तुम बिनु रघुकुलकुमुदविधु! सुरपुर नरकसमान॥"

"नाथ! माता, पिता, बहन, भाई, सास, ससुर सबके सब पतिके विना, सूर्यसे भी विशेष उष्ण हैं, सब भोग रोग हैं, गहने बोझ हैं, संसार यम-यातना है और हे नाथ! तुम्हारे विना अयोध्या श्मशान है। हे प्राणपते! हे हृदयमणे! आप तो जानते ही हैं कि:—

"जिय विनु देह नदी विनु वारी।
तैसिहिं नाथ पुरुष विनु नारी॥"

"जैसे जीवके विना शरीरका अस्तित्व नहीं और जलके विना नदीका अस्तित्व नहीं, वैसे ही पुरुषके विना नारीका अस्तित्व ही नहीं है। हे दीनबन्धो! हे नाथ! आपने जो कुछ वनका दुःख कहा है, सो सब आपके वियोगके लवलेशके बराबर भी तो नहीं है। यदि आप जान लें कि, मैं आपके जानेपर चौदह वर्ष जी सकूंगी तो नहीं ले जाइये; परन्तु मैं जानती हूँ कि:—

"पश्चादपि हि दुःखेन मम नैवास्ति जीवितम्।
उज्झितायास्त्वया नाथ! तदेव मरणं वरम्॥
इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्त्तमपि नोत्सहे।
किं पुनर्दश वर्षाणि त्रीणि चैकश्च दुःखिता॥"

"आपके जानेके पीछे मैं किसी तरह भी नहीं जी सकती। भीषण वियोग-दुःखको सहनेकी अपेक्षा जानेके साथ ही मर जाना अच्छा होगा। मैं एक क्षण भी ऐसे हृदयविदारी शोकको नहीं सह सकती; फिर क्या चौदह वर्ष सहना किसी तरह सम्भव हो सकता है? आर्य्यपुत्र! मेरे दुःखकी चिन्ता आप नहीं कीजिये। मैं आपके साथ पूरे आनन्दसे रहूँगी। वनदेव और वनदेवियाँ, सास, ससुर बनेंगी। रमणीय पर्वत सौ अयोध्याके समान होंगे। मधुर मूर्तिको देखनेसे मुझे धूप नहीं लगेगी। वृक्षोंके पत्ते बिछाकर

मैं बराबर चरण दबाया करूंगी। मुझे सिंह आदि किसीसे डर नहीं लगेगा; क्योंकि, सिंहपति साथ ही रहेंगे। नालों और झरनोंके कल कल और झर झर शब्दसे मारे आनन्दके हँसती रहूँगी। मोरों और मोरनियोंके नाच और पक्षियोंकी मधुर बोलीसे चित्त सदा आनन्दमें डूबा रहेगा। और क्या, आनन्द-निधिके साथ किसी तरह दुःख मिल सकता है? हृदयमणे! मुझे जरा भी दुःख, किसी तरह भी, नहीं होगा। अब एकबार भी बन जानेका निषेध नहीं करो; नहीं तो हृदयके पर्दे अलग अलग हो जायंगे। यह अधम शरीर अब ऐसा शब्द सुननेमें असमर्थ है, कलेजा थर्रा रहा है, बुद्धि ठिकाने नहीं है, अंग अब जल रहे हैं, चारों तरफ अँधेरा छागया! हा नाथ! हा!" ऐसा कहते कहते माताका गला रुँध गया। दारुण विलाप करती हुई प्राणपति रामके चरणोंमें लिपट कर रुदन करने लगीं। अन्तमें भगवान्‌को उन्हें साथ ले जाना ही पड़ा।

(२)

दुर्द्धर्ष दशाननकी शोकमयी अशोकवाटिकामें माता सीताने द्वितीय पातिव्रत्यकी परीक्षामें धर्मविजय करके जगत्‌की रमणियोंके सामने पतिधर्मका जो ज्वलन्त आदर्श रक्खा है, उसके लिये जब तक इस लोकपर सूर्य-चन्द्रमा रहेंगे, तब तक स्त्री-जाति उनके चरणोंका ध्यान करेगी और अपना उद्धार करेगी।

"जिस रामको एक मुहूर्त्त भी बिना देखे मैं अपने प्राण नहीं बचा सकती, वह प्राणपति राम कहाँ हैं? जिस रामहृदयसे मिलनेके लिये एक तृणतुल्य हार भी, व्यवधान होनेके डरसे, मैंने नहीं पहना था, वह हृदय आज कितने शैल-सागरोंकी दूरीपर है! हा नाथ! शीघ्रता करो, कृपा सिन्धो! दासीका उद्धार करो।" दिन रात यही बात कहती कहती और शोकमें जलती जलती माता शुक्र-

पक्षकी प्रतिपद्के निष्प्रभ चन्द्रमाकी तरह कृश हो गई हैं; पतिदेवके वियोगमें आँखें रोती रोती फूल गई हैं और बराबर आँसूसे डबाडब भरी हुई रहती हैं। सीताकी आर्त्तध्वनिसे पृथ्वी माताकी छाती भी फटती जाती है और गर्म सांसोंसे हरे हरे पेड़ भी जलते चले जाते हैं।

इसी समय राक्षसराज आकर अपना अतुल ऐश्वर्य दिखा उनको मुग्ध करनेकी चेष्टा करने लगा। बोला,—"सीते! भिखारी रामकी आशाको छोड़ो। लंकाके सब रत्नालंकार, धन-कोष और मणि-माणिक्य सब तुम्हारे ही हैं। तुम्हीं लंकाकी अधीश्वरी हो। जिन रानियोंको देखकर इन्द्राणी भी ईर्ष्या करती है, वे सब तुम्हारी दासी बनेंगी और त्रिभुवनविजयी मैं भी तुम्हारा दास बन जाऊंगा। शोक मत करो। राजमहिषी बनो। मेरे साथ मनोहारिणी अट्टालिकाओंमें रमण करो। तापस दीन रामको भूल जाओ।"

लंकापतिकी घृणित बातें सुनकर माता सिंहनीकी भाँति गरज उठीं; माता सीताकी कोमल मूर्ति आगके समान धक् धक् करने लगी, आंखोंसे आगकी चिनगारियां निकलने लगीं और क्रोधके मारे तमाम शरीर काँपने लगा। किसी तरह हाथमें तृण* लेकर बोलीं,—"रे नीच! ऐसा कहते तुझे घृणा नहीं आती? क्या तुझे मालूम नहीं है कि, मैं क्षत्रियसिंहकी पुत्री हूँ? क्या कपटी नीच निशाचर मेरा भोग कर सकेगा? मालूम होता है, तेरा बध समीप ही है। क्या प्राणनाथ भिखारी हैं? निश्चय रख, वे प्रबलप्रतापी मार्त्तण्ड (सूर्य) हैं और तू खद्योत है। खद्योतकी तभीतक चलती है, जब तक सूर्य भगवान्का उदय नहीं हुआ रहता। ठहर जा,

*शास्त्रोंमें लिखा है कि, पतिव्रता स्त्री परपुरुषसे सामना-सामनी बात नहीं कर सकती। इसीलिये तृणको माताने बीचमें कर लिया।

घबरा नहीं, रघुनाथजी आकर तेरा दर्प अभी चूर्ण कर देते हैं। क्या तू नहीं जानता है कि, प्रभाकर (सूर्य) को छोड़कर जैसे प्रभा नहीं रह सकती, वैसे ही मैं नाथको छोड़कर नहीं रह सकती। एकदम मदमत्त नहीं होजा, धर्मशास्त्र देख कि, पर स्त्रीकी, अपनी स्त्रीसे बढ़कर रक्षा करनी चाहिये और उसे मातृतुल्य मानना चाहिये। अब भी चेत और भगवान्‌के पास मुझे ले चलकर हाथ जोड़ उनसे क्षमा माँग। वे दीन-रक्षक हैं, शरणमें जानेपर अवश्य तेरी रक्षा करेंगे। यदि नहीं तो, यह बात हृदयमें रख ले कि, यमराजसे तू कदाचित् बच सकता है और क्रुद्ध इन्द्रके बज्रसे भी बच सकता है, परन्तु रघुनाथजीके क्रुद्ध होनेपर ब्रह्मा और रुद्र भी तुझे नहीं बचा सकेंगे।" इन अपमानसूचक वाक्योंको सुनकर रावण क्रोधके मारे जल उठा और कहने लगा,—"अब मैं विशेष बातें नहीं सुनना चाहता। तेरी अवधिके और दो मास रह गये हैं। यदि इस अवधिमें मेरी कही नहीं मानोगी तो, निश्चय, तेरे कोमल मांसके टुकड़े टुकड़े करके, जलपानके लिये, मेरे रसोइये पका डालेंगे।"

रावणकी ऐसी तीखी बातें सुनकर माता ज़रा भी विचलित नहीं हुई और राघवेन्द्रका ध्यान करती हुई बोलीं,—"रे राक्षसाधम! जब तक पुरुषसिंह रामचन्द्रजीके सामने तू नहीं गया है, तभी तक गीदड़की तरह उनको तुच्छ समझता और उनकी निन्दा करता है। रे कामान्ध रावण! रघुकुलतिलक रामकी धर्मपत्नीको पापकी दृष्टिसे देखते तेरा हृदय फट नहीं जाता! तेरी आँखें फूट नहीं जातीं! पागल! धर्ममूर्त्ति राजा दशरथकी पुत्रवधूके साथ पापकी बात कहते हुए तेरी जिह्वा क्यों नहीं गल जाती! रे अनार्य दशग्रीव! मैं क्या करूं, नाथकी आज्ञा ही नहीं है, नहीं तो अपने पातिव्रत्य तेजसे तुझे यहीं भस्म कर देती। रे कायर पापी! यदि तू बड़ा वीर और कुबेरका भाई था तो, क्यों नहीं मारीचकी मायाके बिना ही तू रघुवीरके

साथ लड़कर मुझे लाया ? क्या यही शूर-वीरका काम है ? रे नरा-धम ! तू मुझे काटनेका क्या डर दिखाता है ? यदि तू मेरे शरीरकी बोटी बोटी काट डालेगा, तो भी मैं तेरा नाम नहीं लेनेकी।"

भगवती सीतासे इस तरह तिरस्कृत हो, डरानेके लिये, कुछ निशाचरियोंको वहां रखकर आप चला गया। भीमाकृति कुछ राक्षसियाँ एक तरफ दाँत निकालकर खड़ी हैं, कुछ विकट-दशना तीन तीन हाथकी नाकें लिये एक ओर डरा रही हैं और कुछ विक-राल मुंह बाये एक ओर गरज रही हैं तथा कुछ विकृतवदना भयङ्कर शब्दसे यह कह रही हैं,—"अयि वाले! जिसके हाथमें सारे देव हैं, जिसके सामने पृथ्वीके सब वीर राजा हाथ जोड़े खड़े रहते हैं और जिसके पैरों तले लक्ष्मी है, उसकी पटरानी बन; नहीं तो हम लोग तुझे अभी खा जाती हैं।" इस तरह इनकी ऐसी अनेक बातें सुनकर भी माताका हृदय रामसे तिलभर भी नहीं पलटा। रोकर कहने लगीं,—"हा राम! हा लक्ष्मण! मुझे धिक्कार है कि, आपके बिना अबतक जीती हूं। यह अधम शरीर क्या पत्थरका है कि, शोकाग्निसे जल नहीं जाता! मैं पतिहीन, अनार्य सतीकी तरह, पापमय जीवन क्यों धारण कर रही हूं! मैं अपने बायें पैरसे भी हत्यारे रावणको नहीं छू सकती। क्या मैं आर्य्य महिला होकर उसकी स्त्री बन सकती हूँ! क्या नाथ! मुझे बिल्कुल भूल गये! क्या समुद्र बांधनेमें देर हो रही है! राक्षसियों! चाहे तुमलोग मुझे आगमें जला दो वा मेरे हृदयको निकाल कर खा जाओ, परन्तु मैं परपतिका मुख किसी तरह भी नहीं देख सकती। हे वनवृक्ष! तुम लोग फूल गिराना छोड़कर चिनगारियां गिराओ कि, मैं जल जाऊँ। हे चन्द्रमा! तुम बहुत दिन शीतल रहे, अब सीताका उद्धार करनेके लिये आग्नेय पर्वत बनकर मेरे ऊपर गिर जाओ।"

ऐसा कहती कहती, मणि बिना साँपकी तरह, पृथ्वीपर छट-

पटाती छटपटाती गिरकर बेहोश होगई। पति-प्राणताकी कैसी अतुल शक्ति है! जिस महाप्रतापी लंकापतिके क्रुद्ध होनेपर पृथ्वी और समुद्र थर थर काँपने लगते थे, जिस वीरका नाम सुनकर आकाशसे देवता भाग जाते थे, जिसकी अभय भुजाओंके सामने ऋषियोंको भी नीचा खाना पड़ता था और जो स्वच्छन्द हो चौदहों भुवनों और तीनों लोकोंमें घूमा करता था, उसे भी जाज्वल्यमान पातिव्रत्यतेजके सामने भागना पड़ा!

(३)

जगन्मान्या जनकनन्दिनीकी सबसे कठिन और मर्मभेदिनी परीक्षा, लङ्केश्वर रावणके वधके पीछे, रामचन्द्रके सामने, विभीषणके द्वारा लायी जानेपर, हुई थी। इस घटनाको जगत्‌की सबसे बड़ी घटना विद्वानोंने कहा है। इसको लिखते समय हृदय थाम कर लिखना पड़ता है। जिस दीनानाथ रामकी दया और प्रेम जगत्प्रसिद्ध है, जिस रामने निषादपतिका भी प्रेमके वश हो आलिङ्गन किया था, जिस रामने सर्वनाशिनी कैकेयी तकको एक कटुवचन नहीं कहा था, जिस रामके प्यारसे दीन-दुःखियोंकी बात तो दूर रहे, अयोध्याके पशु पक्षी भी वशमें थे और जिस रामके हृदयमें कृपालुता और क्षमा कूट कूट कर भरी हुई थी, उसी रामके मुखसे ऐसे दारुण वचन माताके लिये निकल सकेंगे और उसी हृदयसे विषका समुद्र उमड़ निकलेगा, ऐसा विश्वास लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान् आदि किसीको भी नहीं था। उस समय किसीको स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था कि, समुद्रसे भी गम्भीर और दावानलसे भी भयानक दुःख माताको आज सहना पड़ेगा।

विभीषणके बहुत निवेदन करनेपर माता सीता वस्त्रालंकार धारण कर अशोकवाटिकासे पतिप्रेमके एक अद्भुत प्रकाशमय दिव्य भावका अपने सन्तप्त हृदयमें अनुभव करती हुई प्राणाराध्यके

दर्शनके लिये चलीं। जिस तरह महादरिद्रोको सुवर्णकी खान मिलनेपर और पपीहेको स्वातीकी बूँदें मिलनेपर एक अचिन्त्य आनन्दका अनुभव होता है, उसी तरह क्यों, उससे भी बढ़कर, रामचन्द्रके सामने आते आते माताके सत्यपूर्ण और विमल मनः-प्राण आनन्दनिर्झरिणीमें बहने लगे ! अपने प्रियतमके मुखारविन्दसे सुधासे सने हुए वचन सुननेके लिये माताका हृदय उछलने लगा। परन्तु राम हिमालयकी तरह अटल हैं, आज उनमें दयाका लेश नहीं है, दुःखका नाम नहीं है और प्रेमका निशान नहीं है। बिल्कुल समुद्रकी तरह गम्भीर होकर बोले—"भद्रे ! दशों दिशाएँ पड़ी हैं, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ, मैं तुम्हें नहीं चाहता। जैसे नेत्ररोगी दीपशिखाको नहीं देख सकता, उसी तरह मैं भी तुम्हें नहीं देख सकता। कोई भी सत्पुरुष परगृहमें रही हुई स्त्रीको नहीं छू सकता—सो भी रावण महापापी था; जब कि, उसने दश महीनों तक तुम्हें अधीन रक्खा था, तो मैं तुम्हें कैसे छू सकूँगा ?

ऐसी तीखी बरछीकी तरह बात सुनकर, मनुष्योंके सामने, इतनी माता लक्ष्मी लज्जित हुईं कि, लज्जावती घासकी तरह उनके सब अङ्ग एकदम बटुर गये और वहाँके सब मनुष्योंको यह मालूम पड़ने लगा कि, वह सब अङ्गोंको संकुचित कर अभी लुप्त हो जायँगी। किसी तरह अपने शरीरको सम्हालते सम्हालते अकथनीय दारुण दैवदुर्विपाक स्मरण कर माताने निश्चय कर लिया कि, 'अब मुझे पार्थिव शरीर रखना ठीक नहीं।' थोड़ी देरके बाद अञ्चलसे आँसूको पोंछकर हृदयमें पत्थर बाँध, धीमे, परन्तु पतिव्रततेजसे पूर्ण शब्दोंमें बोलीं,—"वीरवर ! * क्या मुझे साधारण स्त्रियोंकी तरह

---

* 'प्राणनाथ' न कहकर सीताजी रामके लिये आज 'वीरवर' शब्द प्रयुक्त करती हैं। यही भगवतीके क्रोधकी शेष-सीमा और कटूक्तिकी पराकाष्ठा है।

आप जानते हैं? क्या सभी स्त्रियाँ एक सी होती हैं? मेरी आन्तरिक बातें आप नहीं जानते? जब आपने हनुमान्‌को मेरे यहाँ भेजा था, तब क्यों नहीं मेरे त्यागकी बात सुनायी थी? उसी समय आपके चरणोंका ध्यान करते करते मर जाती, जिससे कि, आप भी इतने कष्टोंसे बच जाते!" यह बोलते बोलते जानकीकी मुखज्योति पवित्रतासे जगमगा उठी और उनका चित्त विशुद्धतासे पूर्ण हो गया।

फिर बोलीं,—"राजाधिराज! मुझे इसी बातका बड़ा दुःख है कि, आपके चरणोंके पास, मेरे इतने दिनोंतक रहनेपर भी, आपने मुझे नहीं पहचाना! मेरी सम्पूर्ण भक्ति और प्रीतिकी क्यों इस तरह उपेक्षा करते हैं?" कहते कहते एक दैवी शक्तिकी स्फूर्ति और स्वर्गीय ज्योतिका आविर्भाव माताके शरीरपर हो गया! लक्ष्मणकी ओर देखकर माताने तुरंत कहा,—"सुमित्राकुमार! मेरा अन्तिम कार्य तुम कर दो। जब मेरे पतिदेवका मेरे ऊपर विश्वास नहीं है तो, अब मेरी एकमात्र शरण अग्निदेव हैं। शीघ्र चिता तैयार करो। मैं इस अधम शरीरको अब छोड़ूँगी!"

अनन्य रामभक्त लक्ष्मणने प्रभुका भी यही अभिप्राय समझ कर शीघ्र चिता तैयार कर दी। चिताकी आग धक् धक् कर जलने लगी। चारों ओर सन्नाटा छा गया। माता जानकी अपने चरित्र-गौरवके बलसे इस समय भी धीर, स्थिर और अचल खड़ी हो रामका चिन्तन करने लगीं; क्योंकि रामने उन्हें छोड़ा था, माता तो राममयी थीं। रामभक्तिके दुर्जय बलके सामने किसीको कुछ नहीं समझती थीं। और शान्त तथा गभीर चित्तसे सानन्द रामचन्द्रकी प्रदक्षिणा कर अग्निदेवके पास आईं। अग्निदेवकी तीन बार प्रदक्षिणा करके सिर ऊपर उठा और हाथ जोड़ कहने लगीं,—

"वचसि मनसि काये जागरे स्वप्नसङ्गे
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि,
तदिह दह ममाङ्गं पावनं पावकेदं
सुकृतदुरितभाजां त्वं हि कर्मैकसाक्षी।"

"यदि मैं शरीर, मन और वाक्यसे अपवित्र होऊं, सोनेमें, जागनेमें, किसी अवस्थामें भी यदि रामचन्द्रको छोड़, मेरे चित्तमें परपतिका भाव आया हो तो, पापपुण्य दोनों कर्मोंके साक्षी अग्निदेव! मेरे शरीरको अभी जला दो।" ऐसा कह कर पातिव्रत्यके तेजसे देदीप्यमाना जगन्मोहिनी माता जिस समय ज्वलन्त अग्निराशिके समीप गयीं, उस समय देखनेवालोंको मालूम पड़ा कि, एक स्वर्गीय दिव्य ज्योति अग्निमें प्रवेश कर रही है। जिस समय माता लक्ष्मीकी लावण्यवती मधुर मूर्ति अग्निकी लक् लक् करती हुई जिह्वासे, क्षण भरके लिये, आच्छादित हो गयी—अग्निने प्रलयकारी हु हु हु हु शब्द करते हुए उस सौम्य मूर्तिको निगल लिया—उस समय चारों तरफकी भयंकर हाहाकार और भीषण आर्त्तनादकी ध्वनिसे आकाशमण्डल भर गया। कहीं स्त्रियाँ सिर पीटने लगीं, कहीं वृद्ध पृथ्वीपर लोटते लोटते हाहाकार करने लगे और कहीं देवतालोग 'हाय हाय' करने लगे। लक्ष्मण चिल्लाकर रोने लगे।

जो अग्निका भी अग्नि है, उसे क्या अग्नि जला सकता है? सीताका एक बाल भी वह नहीं जला सका। सतीत्वतेजसे स्वयं दब गया। लोग क्या देखते हैं कि, उनका शरीर तपे हुए सुवर्णकी भाँति चमक रहा है। उसी अग्निमें पतिचरणके ध्यानमें योगासन लगाये बैठी हैं। चारों ओर पुष्पवृष्टि होने लगी। "सीताकी जय! माताकी जय! पातिव्रत्यकी जय!" इत्यादि जयजयकारकी ध्वनिसे आकाश गूँज उठा। सतीत्वतेजके सामने विश्वके लोग चकित हो गये। अग्निदेव स्वयं प्रकट हो कहने लगे,—"लो राम!

यह लो अपनी जानकी। ध्यान रहे, यह धर्ममूर्ति जनककी पुत्री है। इसे स्वप्नमें भी पाप छू नहीं सकता। यह विशुद्ध है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं करो। श्रद्धाके साथ इसे ग्रहण कर कृतार्थ हो जाओ।"

रामचन्द्र कहने लगे,—"मैं भी जानकीको अच्छी तरह जानता हूं। जानकी अनन्यहृदया और पतिप्राणा है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। यह मेरी उतनी ही प्रिय है, जितनी मनस्वियोंको अपनी कीर्त्ति प्यारी होती है।"

ऐसा कह कर रामचन्द्र ज्यों ही चुप हुए त्योंही एक बार फिर असंख्य कण्ठोंसे जयध्वनि हुई। माताके म्लान मुखपर, पतिकी प्रसन्नता जानकर, प्रफुल्लता झलकने लगी। थोड़ी ही देरके बाद फिर भगवान्‌के अद्भुत चरित्रको स्मरण कर आनन्दसे विह्वल हो उठीं।

(४)

माता सीताकी अन्तिम परीक्षा हुई थी उनके द्वितीय वनवासके हो जानेपर। अयोध्याकी राजसभामें प्रजारञ्जक मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रने किसी गुप्तचरसे अपनी निन्दा सुनकर एक दिन अपने भाइयोंको बुलाकर कहा,—"भ्राताओ! प्रजाको प्रसन्न रखना और प्रजामें निष्कलंक रहना ही राजाका एक मात्र धर्म है। यदि सीताको रखनेसे मेरे ऊपर और पवित्र रघुवंशके ऊपर धब्बा लगता है तो, लक्ष्मण! अभीसे उसका मैं मुख नहीं देखूँगा। तुम शीघ्र उसे वनमें छोड़ आओ।"

"हा! जन्मदुःखिनी सीते! तुम्हारा ऐसा दुर्दैव! तुम्हारे दारुण दुःखको सुनकर किसका हृदय विदीर्ण नहीं होगा? क्या तुमने दुःख ही सहनेके लिये जन्म लिया है? मैं तुम्हें कैसे विकराल जन्तुओं-से भरे हुए वनमें, तिसपर भी गर्भावस्थामें, हत्यारेकी तरह, छोड़ूंगा?"

वीरवर लक्ष्मण मन ही मन ये बातें कहते हुए शोकमें डूब रहे थे; परन्तु करें क्या! अपने प्रभुकी आज्ञा मानकर तुरंत रथपर माताको बिठा वनमें चल दिये। कुछ दूर जाते जाते लक्ष्मण हृदयके उद्वेगको नहीं रोक सके-एकाएक रो उठे और निर्वासनकी बात ज्यों त्यों करके सुनाई। सीता इस हृदयदाही वचनको सुनकर रोती हुई लक्ष्मणसे कहने लगीं:—"अस्तु, प्रिय लक्ष्मण! यदि अपने-को निष्कलंक रखनेके लिये नाथने यह बनवास दिया है तो मैं सादर भोगनेके लिये तैयार हूं। पतिमंगलके लिये यदि प्राण भी चले जांय, तो भी चिन्ता नहीं। लक्ष्मण! पतिदेवके और पूज्य-जनोंके चरणोंमें मेरा अन्तिम प्रणाम कहना। स्वामीसे यह भी कहना कि, मेरे न रहनेपर इस गर्भके बच्चेको न भूल जावें। तुम भी नाथके दृढ़ भक्त हो रहना।" ऐसा कहते कहते ऊँचे स्वरसे रोने लगी। लक्ष्मण और नहीं देख सके, माताकी चरनधूलि सिरपर रख, अयोध्या लौट आये।

(५)

संयोगसे महर्षि वाल्मीकि उसी रास्तेसे आ रहे थे। माताको झर झर रोती हुई देख, महर्षि पहिचान कर अपने आश्रममें ले आये। कुछ दिनोंके पीछे लव और कुश नामके दो रामतुल्य पुत्र सीतासे उत्पन्न हुए। यथा समय ऋषिने उनके संस्कार कराकर अपनी बनायी रामायणके मधुर गानका और वीणाका बालकोंसे अभ्यास कराया।

कुछ दिनोंके बाद रामचन्द्रके अश्वमेधयज्ञमें निमंत्रित हो दोनों शिष्योंके साथ वाल्मीकिने यज्ञमण्डपमें ही रामचन्द्रको वीणापर इनका गान सुनाया। गान सुनकर रामचन्द्र मुग्ध हो गये और इनका परिचय जानकर सीताके शोकमें सन्तप्त हो बोले:—"महर्षे!

यदि इस सभाके बीच अपने सतीत्वकी परीक्षा जानकी दे तो, मैं उसे अवश्य ग्रहण कर लूँगा।"

इस बातको स्वीकार कर महर्षि वाल्मीकि सभामें सीताको ले आये। काषाय-वस्त्र-धारिणीजानकीको देखकर सबका हृदय करुणासे गलने लगा। सब यही कहने लगे कि,—'बिना परीक्षा ही लिये यदि रघुनाथ महारानीको ले लेते तो, अच्छा होता'। कितनेही रामकी निन्दा और सीताकी प्रशंसा करने लगे। नतमुखी अश्रुपूर्णलोचना सीताको आगे खड़ी कर महर्षि बोलेः—

"यदि जानकी अपवित्र हो तो, मेरी इतने दिनोंकी की हुई तपस्याका फल मुझे न मिले और बिना किये हुए पापोंका फल मुझे मिले।" यह सुनकर रामचन्द्र बोलेः—"मैं सीताके सतीत्वसे पूर्ण परिचित हूँ और आपके वचनोंपर भी मेरा पूर्ण विश्वास है; परन्तु बलवान् लोकापवादके भयसे फिर सीताको सबके सामने शपथ करनी होगी।" रामचन्द्रकी बात सुनकर जब माताने जान-लिया कि, मुझे शुद्ध जानकर भी नाथ ग्रहण नहीं करते, तब सबके सामने हाथ जोड़ कर बोलींः—"यदि मैंने किसी तरह भी रामसे दूसरे पुरुषकी चिन्ता नहीं की है और यदि मैं पूर्ण पतिभक्ता हूं तो, हे वसुन्धरे! तुमने ही मेरा जन्म दिया है, अब मैं तुम्हारी ही गोदी-में फिर सोया चाहती हूं। माँ मेदिनि! सतीत्वकी अन्तिम परीक्षामें सहायक बन मेरा जीवन सार्थक कर।" ऐसा कहते ही कहते भूतलसे एक दिव्य विमान निकला। उसी पर बैठ 'राम, राम' कहती और रामचरणोंका ध्यान करती हुई माता पातालमें पैठ गईं।

धन्य माँ सीते! इस समय यद्यपि तुम दर्शन नहीं देती, परन्तु माँ! शुद्ध हृदय दो कि, हम तुम्हारे निर्मल नामको लेकर और तुम्हारे चरणोंसे पवित्र हुई पृथ्वीका दर्शन कर अपने उद्धारके लिये प्रयत्न

कर सकें। माँ! आशीर्वाद दो कि, तुम्हारा नाम लेते लेते आर्य्य-महिलाएँ अपने प्राण छोड़ें। माँ! शक्ति दो कि, आर्यस्त्रियाँ इस कठिन समयमें भी पातिव्रत्यकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकें। माँ! बुद्धि दो कि, पतिव्रतके सोये हुए भाव फिर जगा सकें। माँ! विद्या दो कि, तुम्हारे आदर्शको पानेके लिये दिनमें तीन बार तुम्हें स्मरण कर हृदयको विमल बना सकें तथा तुम्हारे चित्र और चरित्रको हृदय-पर खींचकर अपना उद्धार कर सकें। माँ! एकबार और दर्शन दो; आर्यजाति तुम्हारे दर्शनके लिये लालायित है। हे मङ्गलमयी देवि! एकबार फिर दर्शन दे भारतका मङ्गल करो।

सती सावित्री।

(१)
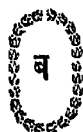
बहुत पुरानी बात है। मद्रास प्रान्तमें अश्वपति नामक एक धार्मिक और विद्वान् राजा बड़ी योग्यतासे राज्य करता था। विपुल धन, धान्य, प्रतिष्ठा आदि होते हुए भी अपुत्र होनेके कारण वह सदा चिन्तातुर रहता था। विना ईश्वराराधनके यह चिन्ता दूर नहीं होगी, जानकर राजा रानी दोनों, सावित्रीदेवीकी आराधना करनेमें लग गये। कई पुरश्चरण होनेपर साक्षात् सावित्री देवीके दोनोंको दर्शन हुए। देवीने वर मांगनेको कहा। राजा ने पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा प्रकट की। देवी बोली,—"तुम्हारे भाग्यमें पुत्र नहीं है; किन्तु वरप्रदानसे तुम्हें एक अलौकिक कन्या होगी, जो दोनों कुलोंको तारेगी और आर्य्यमहिलाओंमें आदर्श मानी

जायगी ।" वर देकर देवी अदृश्य हो गईं । थोड़े ही दिनोंमें रानी गर्भवती हुईं । यथासमय प्रसूत होकर उन्हें कन्यारत्नकी प्राप्ति हुई । राज्यमें पुत्रोत्सवके तुल्य आनन्द मनाया गया । देवीके वरदानके अनुसार कन्याका रूप अलौकिक ही देख पड़ता था । सावित्री-देवीके वरदानसे कन्याका जन्म होनेके कारण उसका नाम भी 'सावित्री' ही रक्खा गया ।

जब सावित्री वर योग्य हुईं, तो उनको देखने कई राजपुत्र आये, पर उनकी स्वर्णके समान दिव्य कान्ति देखकर उनसे विवाह करनेका किसीको साहस नहीं होता था । कामबुद्धिसे जो उनके सामने आता, वही उन्हें देवीरूपमें देखने लगता और प्रणाम कर लौट जाता था । इससे अश्वपतिकी चिंता अधिकाधिक बढ़ने लगी । अन्तमें उन्होंने वृद्ध अमात्योंको साथ देकर सावित्रीको देशपर्यटन-के लिये भेजा और कहा,—"जो वर तुम चुनो, उसीके साथ हम तुम्हारा विवाह कर देंगे ।"

कई दिनोंके पश्चात् सावित्री घर आयीं । उसी समय ब्रह्मर्षि नारद भी अश्वपतिसे मिलने आये थे । मुनिकी अर्घ्य पाद्यसे राजाने पूजा की । सावित्रीको देख, नारदने पूछा,—"इसका अभी तक विवाह क्यों नहीं किया गया ?" राजा सब वृत्तान्त कह कर बोले,—"अभी यह देश विदेश भ्रमण कर आयी है, इसने किसको पति चुना है, सो आपही पूछें ।" नारदके पूछनेपर सावित्रीने कहा,—"सौराष्ट्र देशके राजा द्युमत्सेन,—जिनका राज्य रुक्मीने हरण किया है और जो पत्नीसहित अन्ध हैं,—उनके सुयोग्य पुत्र सत्यवान्‌को मैंने अपने हृदयमें पतिरूपसे माना है ।"

नारद बोले,—"निःसन्देह सत्यवान् असाधारण वर है । उसके पिता-माता सत्य बोलते हैं और वह भी सत्य बोलता है; इससे उसका नाम सत्यवान् है । वह मिट्टीके घोड़ोंसे खेलता था; अश्व

उसे प्रिय हैं, चित्रोंमें भी वह अश्व लिखता है, इससे उसे चित्राश्व भी कहते हैं। वह सत्कुलोद्भव, रूपवान्, गुणोंका सागर और सर्वविद्या-सम्पन्न है। परन्तु एक ही दोषसे उसके सब गुणोंपर पानी फिर गया है। वह दोष यही है कि, वह अल्पायु है। एक वर्षसे अधिक नहीं जियेगा। सावित्रीको चाहिये कि, वह और किसी वरको चुने।"

इसपर सावित्रीने कहा,—"जिसको मैंने मनसे वर लिया, उसका त्याग करनेकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकती। सज्जनोंका धर्म है कि, पहिले मनमें भली भाँति सोच विचार ले, फिर मुखसे कहे और अनन्तर वही करे। चाहे उसका परिणाम शुभ हो, या अशुभ। राजा तथा पण्डित अपनी बातके सच्चे होते हैं और कन्यादान एक ही बार होता है। मैं राज कन्या हूँ, मैंने सत्यवान्‌को चित्तसे वर लिया है। अब चाहे वह गुणवान् हो या निर्गुण, पण्डित हो या मूर्ख, अल्पायु हो या दीर्घायु, वही मेरा पति है। चाहे इन्द्र ही साक्षात् क्यों न आवें, उन्हें मैं नहीं वरूंगी।"

सावित्रीकी दृढ़ता देख, अश्वपति नारदकी आज्ञा ले, अन्ध द्युमत्सेनके निकट गये और आदरसे प्रणाम कर सत्यवान्‌के लिये सावित्रीको स्वीकार करनेकी प्रार्थना करने लगे। द्युमत्सेनने कहा,—"महाराज! आप मेरे घर आये, यह मेरा अहोभाग्य है; परन्तु आप जो प्रार्थना करते हैं, उसके सम्बन्धमें मैं आपसे क्या कहूं? मैं अन्ध हूं, मेरी सहधर्मिणी भी अन्ध है, मेरा राज्य छिन गया है, सत्यवान् वनचरोंकी तरह जीविका निर्वाह करता है। आपकी पुत्री हमारे साथ वनवासके कष्ट कैसे सहेगी?" अश्वपतिने कहा,—"यद्यपि आप अन्ध और राज्यच्युत हैं, तथापि सावित्रीने सोच विचारकर ही सत्यवान्‌को वरा है। अब वह दूसरे पुरुषको पतिरूपसे नहीं मान सकती। अतः आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लें, तो मुझपर आपकी बड़ी कृपा होगी।"

द्युमत्सेनने स्वीकार किया। सावित्री-सत्यवान्का समारोहके साथ विवाह हुआ। इन्द्र-इन्द्राणी, या ऋषि और ऋषिपत्नीकी तरह दोनों आनन्दसे काल यापन करने लगे। इतने बड़े राजाकी पुत्री होनेपर भी सावित्री साधारण कृषक-कन्याकी तरह घरके सब काम करती और पति तथा सास-ससुरको प्रसन्न रखती थी। देखते देखते एक वर्ष बीत गया और वह दिन आ पहुँचा, जिस दिन सत्यवान्की मृत्यु बदी थी। प्रातःकालसे ही वह पतिके साथ रही। सत्यवान् वनमें लकड़ी तोड़ने सन्ध्या-समय जाने लगा, तो सास-ससुरको समझा बुझाकर उनकी आज्ञा ले, सावित्री भी उसके साथ चल पड़ी। उस दिन सावित्री देवीका व्रत भी उसने किया था।

सत्यवान् लकड़ियोंका बोझा उठाकर ज्यों ही चलने लगा, त्योंही उसके शिरमें एकाएक पीड़ा हुई और वह एक वटवृक्षके नीचे गिर पड़ा। सावित्री उसके शिरको गोदमें रखकर आँचलसे हवा करने लगी; परन्तु सत्यवान् सुधमें नहीं आया। इतनेमें वह क्या देखती है कि, एक भयानक काली आकृति भैंसेपर चढ़कर उसके आगे आई और उसने सत्यवान्के शरीरसे अँगूठे बराबर ज्वलन्त जीव फाँसमें फँसाकर निकाल लिया। सत्यवान्की श्वाँस रुक गई। वह मृतके समान अचेत हो गया। जब वह आकृति उस जीवको दक्षिण दिशाकी ओर ले जाने लगी, तो सावित्रीने उसे पछियाकर कड़े स्वरमें उससे पूछा,—"तू कौन है और मेरे पतिके जीवको कहां ले जा रहा है?" वह आकृति यमकी थी। वे बोले,—"हे सावित्रि! मैं यम हूं। तेरा पति धर्मात्मा था और तू पतिव्रता है। इससे अपने दूतोंको न भेजकर उसे लेने मैं स्वयं यहाँ आया। इसकी इहलोककी यात्राकी अवधि आज समाप्त हो जानेके कारण इसे मैं ले जारहा हूँ। तुमने पतिकी अच्छी सेवा की है। तुम

उसके ऋणसे उऋण हुई हो। अब तुम घर लौट जाओ और इसका और्द्ध्वदैहिक संस्कार करो।" सावित्रीने कहा,—"यह नहीं हो सकता। मैं अपने पतिको आपको नहीं ले जाने दूँगी। जहां आप जा रहे हैं या मेरे पतिको ले जा रहे हैं, वहां मुझे जाना ही होगा। तप, गुरुसेवा, पतिप्रेम, व्रत और आपकी कृपासे मैं सर्वत्र जा सकती हूं। विद्वान् लोग सप्तपदी होनेसे ही शरीरसम्बन्ध हुआ समझते हैं। ऐसा शरीरसम्बन्ध इनके साथ मेरा हुआ है। उसको सोचकर मैं कुछ कहती हूं सो सुनो। अनेक आत्मज्ञानी सर्वत्यागी वनवासियोंने धर्म, सत्य और पुरुषार्थकी छानबीन कर धर्मको ही प्रधान माना है। अतः पतिके साथ रहना और पति-सहगमन करना ही मेरा धर्म है"।

यमराज बोले,—"तुम्हारी इन सुन्दर उक्तियोंसे मैं प्रसन्न हुआ। अब तुम मुझसे सत्यवान्के प्राणोंके अतिरिक्त कोई वर माँग लो और घर लौट जाओ।" सावित्रीने कहा,—"मेरे सास-ससुर अंधे और राज्यच्युत हैं, उन्हें पुनः राज्य और आँखें प्राप्त हों।" यमने कहा,—"ऐसा ही होगा। चलनेसे तुम्हें बहुत श्रम हुए हैं, अब लौट जाओ।" सावित्री बोली,—"महाराज! पतिके साथ रहनेसे मुझे कुछ भी श्रम नहीं जान पड़ते। आज पतिदेव चले, कल मुझे भी जाना होगा। तो पतिके साथ ही क्यों न जाऊँ? सज्जनोंका सङ्ग क्षण-मात्रके लिये भी श्रेष्ठ लोग चाहते हैं; क्योंकि सत्सङ्ग कभी विफल नहीं होता। अतः मनुष्यको सज्जनोंका साथ कभी नहीं छोड़ना चाहिये। फिर मैं तो अपने पतिदेवके साथ जा रही हूं। आप धर्मराज होकर मुझे अपने धर्मपालनसे क्यों रोकते हैं?

इसी प्रकार सावित्री धार्मिक सम्भाषणसे यमको प्रसन्न करती जाती और यम उसे वर देते जाते थे। अन्तमें उसने कहा,—"हे धर्मराज! मेरे श्वसुर पुत्रहीन होकर मरें, यह मैं नहीं चाहती

अतः ऐसा वर दीजिये, जिससे मुझे सौ पुत्र हों।" धर्मराजने झट कह दिया—"तथास्तु।" सावित्रीकी बात बन गई। वह बोली,—"महाराज! सत्यके बलपर सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, पृथिवी आदि अपने अपने स्थानोंपर स्थित हैं और सत्यके अवलम्बनसे ही देवताओंमें देवत्व है और मनुष्य भी देवत्वको प्राप्त करते हैं। सत्य ही तप है, सत्य ही यज्ञ है और सत्य ही धर्म है। आप धर्मराज हैं। सत्य आपको ही आश्रय करके रहता है। हे सत्यस्वरूप! आप धन्य हैं। मैं आपको बारम्बार प्रणाम करती हूँ।"

इस उक्तिसे तो यम अधिक ही प्रसन्न हुए और पुनः सावित्रीसे वर मांगनेको कहने लगे। सावित्रीने कहा,—"अब मुझे कोई वर नहीं चाहिये। आपने जो वर दिये हैं, उन्हींको पूर्ण कीजिये। बिना सत्यवान्‌के जिये मुझे पुत्र होना असम्भव है और आप मुझे सौ पुत्र होनेका वर दे चुके हैं। अपने वचनको निवाहना सज्जनोंका ही धर्म होता है।" सावित्रीका चातुर्य यमराजके ध्यानमें आगया। उन्होंने हँसकर कहा,—"पुत्रि! तुम्हारे कौशल और पतिप्रेमसे मैं सन्तुष्ट हुआ हूँ। इससे सत्यवान्‌को तुम्हें लौटा देता हूं। अब सत्यवान् चार सौ वर्ष जीकर अनेक धर्मकार्य करेगा और अनन्तर तुम्हारे साथ उत्तम गतिको प्राप्त होगा। यही नहीं, किन्तु जो सधवाएँ तुम्हारे चरित्रको श्रवण करेंगी और सावित्रीव्रत भक्तिभावसे करेंगी, वे कदापि विधवा नहीं होंगी। जाओ, तुम्हारा श्रीभगवान् मङ्गल करेंगे।"

यमके चले जानेपर सत्यवान्‌का शरीर जिस वटवृक्षके पास पड़ा था वहां सावित्री पहुंची, तो क्या देखती है कि, सत्यवान् मानो नींदसे उठ रहा है। उसने सावित्रीसे पानी मांगा। सावित्रीने निर्मल जल देकर सब कहानी कह सुनाई। जिससे सत्यवान् अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और ऐसी स्त्री प्राप्त होनेके कारण

मन ही मन अपने भाग्यको सराहने लगा। दोनों लकड़ियोंका बोझ लेकर घरकी ओर चले। मार्गमें पुत्रको खोजते हुए माता पिता उन्हें दिखाई दिये। दोनोंके नेत्र खुल गये थे। अब वे अन्धे नहीं हैं। पुत्र और पुत्रवधूको देखते ही दोनोंने छातीसे लगा लिया। सिर सूँघा और वे उन्हें घर ले जाने लगे।

मार्गमें द्युमत्सेनके मन्त्री बहुत सी प्रजाके साथ आते दिखाई दिये। सबने राजाको प्रणाम कर कहा,—"महाराज! आपके पुण्यप्रतापसे आपकी सेनाने रुक्मीको हरा दिया और अपना राज्य हस्तगत कर लिया है। अब आप चल कर राज्यासनपर विराजिये और पहिलेकी तरह प्रजापालन कीजिये।" इस समाचारसे सभी प्रसन्न हुए। द्युमत्सेन, रानी, सत्यवान्, सावित्री आदिने बड़े ठाटसे राजधानीमें प्रवेश किया। इन परिवर्तनोंका कारण सावित्रीको जानकर कृतज्ञतासे सबके हृदय गद्गद् हो गये। उसका सबने एककण्ठसे जय जयकार किया। कुछ दिनोंके पश्चात् सावित्रीको पुत्र हुए। तब द्युमत्सेन सत्यवान्को राजगद्दी देकर रानी सहित तप करने वनमें चले गये।

सच्ची पतिव्रता यमके भी कैसे दाँत खट्टे करती और अपने कुटुम्बका कैसा उद्धार करती हैं, इसका ज्वलन्त दृष्टान्त सावित्री हैं। स्वप्नमें भी पतिसे दूर रहनेकी इच्छा न करने, पतिके लिये सब प्रकारके कष्ट सहने और पतिके चरणोंमें आत्मा न्यौछावर करनेसे मृतात्माएँ भी लौट आती हैं, यही सावित्रीके चरित्रसे शिक्षा मिलती है।

गार्गी ।

प्राचीन भारतका पूरा इतिहास न मिलनेसे गार्गीके जन्म कर्मका विश्वसनीय पता नहीं मिलता, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि, गार्गी महर्षि-सुता थीं। ब्रह्मज्ञानमें निरन्तर लव-लीन होनेके कारण वे आजन्म ब्रह्मचारिणी ही रहीं; अर्थात् उन्होंने विवाह नहीं किया। प्राचीन समयमें भारतकी महिलाएँ कैसी विदुषी हुआ करती थीं। इसकी ज्वलन्त दृष्टान्तस्वरूप गार्गी हैं। इनके सम्बन्धकी एक कथा इस प्रकार है:—

विदेह-पति जनकराजने बहुदक्षिणा नामका एक यज्ञ किया था। इस यज्ञमें देश-विदेशके बहुतसे पण्डित निमन्त्रित हुए थे। सबसे कौन पण्डित विद्वान् है, यह जाननेके लिये सुवर्णसे मढ़ी हुई सींग-वाली एक हजार गायें सभामें ले आये और राजाने कहा कि, 'जो सबसे विद्वान् हो वही सब गाय ले जाय।' उस समय याज्ञवल्क्यने अपने एक शिष्यसे कहा कि, 'तुम ये सब गायें लेकर चलो।' यह सुनकर सब पण्डित लोगोंने क्रोध किया और याज्ञवल्क्यको परास्त करनेके लिये वे बहुतसे प्रश्न करने लग गये। उस समय समागत पण्डित-मण्डलीमें ब्रह्मवादिनी गार्गी भी उपस्थित थी। गार्गीने याज्ञवल्क्यसे कई प्रश्न पूछे थे। फिर वे सभास्थ पण्डितोंसे बोलीं 'मैं और दो एक प्रश्न भी याज्ञवल्क्यसे पूछूँगी। यदि याज्ञवल्क्य उन प्रश्नोंका उत्तर दे देंगे तो आप लोग उनको ब्रह्मविद्यामें पराभूत नहीं कर सकेंगे।' यह सुनकर पण्डित-मण्डलीने कहा कि, 'हे गार्गी, आप ही प्रश्न करें।' गार्गीने पूछा:—

"वीरपुत्र काशीराज वा विदेहराजने धनुषपर ज्यो चढ़ाकर जिस-तरह शत्रुनाश करनेके लिये दो बाण हाथमें लेकर शत्रुके सामने

आखड़े हुए थे उसी प्रकार मैं भी दो एक प्रश्न लेकर आपके सामने आयी हूँ। आप इन प्रश्नोंका उत्तर प्रदान करें।" याज्ञवल्क्यने कहा,-"हे गार्गी! तुम प्रश्न करो।" गार्गीने प्रश्न किया कि, 'स्वर्गके ऊपर क्या है? पृथिवीके नीचे क्या है? इन दोनोंके बीचमें क्या है? स्वर्ग और पृथ्वी क्या है? भूत, भविष्यत् और वर्तमान क्या हैं? यह तीनों वस्तुएँ किसपर हैं?"

याज्ञवल्क्यने कहाः—"स्वर्गके ऊपर जो है, पृथिवीके नीचे जो है, इन दोनोंके बीचमें जो है और भूत, भविष्यत् वर्त्तमानमें जो है—वे सब वस्तुएँ ही आकाशमें ओत-प्रोत-रूपसे खड़ी हैं।" यह सुनकर गार्गीने कहा कि, "हे याज्ञवल्क्य! मैं आपको प्रणाम करती हूं। कारण, आपने मेरे प्रश्नोंका उचित उत्तर दिया है।" इसके बाद गार्गीने याज्ञवल्क्यसे कहा कि, "दूसरे प्रश्नका उत्तर देनेके लिये आप ठीक रहें।" २य प्रश्नः—

"जो आकाशके ऊपर है, जो पृथ्वीके नीचे है, इन दोनोंके बीचमें जो है, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान जो है, वह किसपर है?" याज्ञवल्क्यने कहा कि, "वह सब वस्तुएँ आकाशके ऊपर ओत-प्रोत-भावसे ही अवस्थान कर रही हैं।" गार्गीने कहा, "आकाश किस पर ओत-प्रोत-रूपसे अवस्थित है?" याज्ञवल्क्यजीने कहा कि, "आकाश जिसके ऊपर अवस्थित है, ब्रह्मवित् पण्डितगण उसको अक्षर कहते हैं। यह अक्षर स्थूल नहीं है, सूक्ष्म भी नहीं है और ह्रस्व भी नहीं है, बड़ा नहीं है, अग्निके समान लाल नहीं है, जलके समान स्नेहमय नहीं है, वह छाया भी नहीं है, आधार नहीं है, हवा की तरह भी नहीं है, आसमान नहीं है, लाहीकी तरह गलनेवाला नहीं है, वह न रस, न चक्षु, न श्रवण, न वाक्, न मन, न प्राण, न तेज ही है; उसमें प्रवेश करनेके लिये रास्ता नहीं है, वह माप (वजन) नहीं है, उसका परिमाण नहीं हो सकता है, न किसीके अन्दर है, न

बाहर है, न किसीको नष्ट करता है और न कोई उसको नष्ट करता है। हे गार्गी! इस अक्षरके नियमसे ही चन्द्र और सूर्य्य अपने अपने स्थानपर विराजमान हैं। हे गार्गी! इस अक्षरके नियमसे ही आसमान और पृथिवी अपने अपने स्थानपर अवस्थित हैं। हे गार्गी! इसी अक्षरके शासनसे ही निमेष, मुहूर्त्त, पक्ष, महीना, ऋतु, वत्सरादि नियमितरूपसे चल रहे हैं। इस अक्षरके शासनसे ही शीत और उष्णसे पूर्ण सफेद पर्वतोंसे गंगादि नदियाँ पूर्व दिशामें प्रवाहित हो रही हैं एवं सिन्धु आदि नदियाँ पश्चिम दिशामें बह रही हैं। और और नदियाँ भी अपने अपने स्थानपर बह रही हैं। हे गार्गी! इस अक्षरके शासनसे ही लोग दान करनेवालेकी प्रशंसा करते हैं। देवता लोग यज्ञ-सम्पादन करनेवालेके वश वा अधीन रहते हैं और पितर लोग हवनकी आशा करते हैं। सारांश यह है कि, यह ब्रह्माण्ड अक्षरके शासनसे ही चलायमान है। हे गार्गी! जो इस अक्षरको न जानकर हजार हजार वर्षों तक होम, देव-पूजन, तप आदि करते हैं वे अक्षय्य मुक्ति नहीं पाते हैं। हे गार्गी! जो मनुष्य अक्षरको पहचान कर इहलोक त्याग करते हैं वे ही सच्चे ब्राह्मण हैं। हे गार्गी! यह अक्षर अदृश्य होकर भी दर्शन और अश्रुत होकर भी श्रवण करता है और ज्ञान-रहित होकर भी जानता है तथा मन-रहित होकर भी मनका काम करता है। इस अक्षरको छोड़कर और कोई नहीं देख सकता, न सुन सकता न मनन कर सकता, न जान सकता है। हे गार्गी! इस अक्षरके ऊपर ही आकाश व्याप्त है।"

गार्गीने प्रश्नोंके उत्तरोंके समाप्त हो जानेके बाद पण्डित-मण्डली से कहा कि, "आप लोग मेरी बातें सुनें और याज्ञवल्क्यको प्रणाम करें। ब्रह्मविद्यामें आप लोगोंमेंसे इनको कोई परास्त नहीं कर सकता है।" यह कह कर गार्गीने और प्रश्न नहीं किया। थोड़ी

ही देरके बाद वहाँसे विदा हो गयी। उपनिषद् ग्रन्थोंमें गार्गीके ऐसे अनेक संवाद पाये जाते हैं। जिनसे उनके चारित्र्य और ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी योग्यतापर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

मैत्रेयी और कात्यायनी।

मैत्रेयीकी अवस्था अठारह वर्षोंके लगभग है। वह अब कुमारी नहीं है। यौवनकी कमनीय कान्तिने ब्रह्मचारिणी मैत्रेयीको, वसन्तके समयमें विकसित नवमल्लिकाकी भांति सजा दिया है। तौ भी वह रूपगर्विता नहीं है। वह जानती भी नहीं कि, मैं युवती हूं अथवा बालिका। मैत्रेयी प्रेममयी है। परन्तु उसने जिस तरहके प्रेमका अभ्यास किया है, वह अलौकिक है। किसीके सुरूप या कुरूप नेत्रोंपर, अर्थात् सान्तपर उसका प्रेम नहीं, किन्तु उसका प्रेम अनन्तके साथ है;—विश्व जगत्के प्रत्येक जीवके हृदयमें भर देने योग्य उसका प्रेम है। ऐसा क्यों हुआ? गार्गीको आदर्श मान, मैत्रेयीने अब विश्वप्रेमको समझ लिया था।

मैत्रेयीके पिताका नाम मित्र था। वे षडङ्ग वेदों और शास्त्रोंके अध्यापक और राजर्षि जनकके मित्र थे। मैत्रेयीको चिर ब्रह्मचर्य्य-व्रतको पालन करती हुई, दिन रात गूढ तत्त्वोंकी चिन्तामें निमग्न देखकर, वे सोचा करते कि,—"क्या विवाहके बिना इसका यह व्रत अटूट रह सकता है? शास्त्रोंमें असाधारण स्त्रीके लिये इस प्रकारके असाधारण धर्मका वर्णन मिलता है। क्या मेरी दुहिता इस योग्य हुई है?"

ज्ञानीश्रेष्ठ याज्ञवल्क्यकी जनककी सभामें अलौकिक प्रतिभा और अद्भुत पाण्डित्यको देखकर विदुषी मैत्रेयी मुग्ध हो गयी। उसने उस समय अपने पितासे कहा—"मैं गार्गीकी तरह चिर ब्रह्मचारिणी रहूंगी, या, याज्ञवल्क्यकी सहधर्मिणी बनूंगी।" मित्र भी आज इसी बातको सोच रहे थे। चिन्ता करते हुए बीच बीचमें वे निराश भी हो जाते थे। क्योंकि कात्यकी कन्या कात्यायनीके साथ याज्ञवल्क्यका विवाह पहिले ही हो चुका था। एकसे अधिक विवाह करना यद्यपि प्राचीन समयमें प्रचलित था; तथापि कोई इस रीतिको अच्छी नहीं समझते थे। इस कारण याज्ञवल्क्यके सामने इस विषयको कैसे प्रकाश करें, इसी चिन्तामें पड़े हुए मित्र, दो क्षत्रिय देह रक्षकोंके साथ याज्ञवल्क्यके आश्रममें गये। ऋषि-श्रेष्ठ समाधिस्थ होकर बैठे हुए थे। उनका बाह्यज्ञान बिल्कुल ही विलुप्त हो गया था। आत्मानन्दमें मग्न होकर बाहरकी सारी चिन्ताओंसे अतीत अवस्थामें वे पहुंच गये थे। उनके सामने एक भीषण बाघ उनको आक्रमण करनेके लिये यत्न कर रहा था। मित्र यदि यथासमय अपने रक्षकोंके साथ वहां न पहुंचते, तो हमारे धर्मशास्त्रप्रणेता धर्मरक्षक ऋषिका चरित्र पुराणोंमें कुछ और ही लिखा हुआ मिलता। परन्तु ऐसा नहीं हुआ और न हो ही सकता था। यदि ऐसा ही हो जाता, तो संसारमें साधन, भजन, भगवान्‌की उपासना आदि कोई न करता। भगवान्‌ने स्वयं कहा है:—

"न मे भक्तः प्रणश्यति"।

मेरे भक्तका नाश नहीं होता। मित्रके देह-रक्षकोंके शस्त्रोंसे बाघ मारा गया। इस उपकारके बहानेसे याज्ञवल्क्यके निकट अपनी कन्याके विवाहका प्रस्ताव करनेका मित्रको अवसर मिला। याज्ञवल्क्यकी प्रथम पत्नी कात्यायनी, मैत्रेयी अथवा गार्गीकी भांति, विदुषी नहीं थी। वह तत्त्वज्ञानकी चर्चा भी कुछ नहीं करती थी,

न इस विषयसे परिचित ही थी। स्वामीकी परिचर्य्या, अतिथिकी सेवा आदि सांसारिक कर्म्ममें वह बड़ी ही चतुरा थी। कात्यायनीके समान सांसारिक काम करनेवाली स्त्रियां उस समय बहुत ही कम थीं। गृहकर्ममें उसकी विशेष प्रशंसा थी।

कात्यायनीको तत्वज्ञानकी अभिरुचि न रहनेके कारण, स्त्रीके साथ धर्म्मालाप करनेका सुभीता याज्ञवल्क्यको नहीं था। परन्तु सांसारिक प्रत्येक विषयमें वे बड़े सुखी और निश्चिन्त रहते थे।

कात्यायनी प्रायः प्रतिदिन पालकीमें बैठ, मैत्रेयीके और मैत्रेयी भी कभी कभी कात्यायनीके समीप आया करती थी। आपसमें दोनोंकी बड़ी घनिष्ठता हो गयी थी। दोनों ही परस्पर एक दूसरेको प्यार करती थीं। मैत्रेयी कात्यायनीसे बहुतसी तत्वज्ञानकी गहरी बातें किया करती थी। ऐसी बातोंका यथार्थ स्वरूप समझमें न आनेपर भी, संसारके कर्त्तव्य कर्म्ममें ही उनका अर्थ लगाकर कात्यायनीको सुना देती थी, जिसे सुनकर मैत्रेयी बड़ी ही आश्चर्य्यचकित होती थी। मैत्रेयीने समझ लिया कि कुछ दिन यदि इसके साथ इस विषयकी चर्चा की जायगी; तो थोड़े ही समयमें इसकी प्रतिभाका पूर्ण विकाश हो जायगा।

एक दिन कात्यायनीके आश्रममें बैठकर दोनों अनेक प्रकारकी बातें कर रही थीं। बीचमें ही कात्यायनीने मैत्रेयीसे कहा—"तुम्हारे साथ आलोचना करते हुए मुझे बहुत कुछ ज्ञानकी शिक्षा मिली है। देखना चाहिये, तुम्हारे आलोकसे यह पुण्याश्रम पूर्णरूपसे कब आलोकित होगा! न जाने कौनसा पुण्याश्रम तुम्हारे ज्ञानालोकसे उज्वल होने वाला है।"

मैत्रेयीः—"तुम्हारी—बातें मेरी समझमें नहीं, आतीं। तुम क्या कहती हो?"

कात्यायनीः—"और कुछ नहीं, इस आश्रमके समीपमें ही तुम्हारा कोई आश्रम बन जाय, तो मेरा बड़ा उपकार होगा।"

मै०—"फिर भी मैं कुछ नहीं समझी।

का०—क्यों समझोगी? यह समझ कर भी न समझने योग्य बात है।"

मै०—"क्या तुम मेरे विवाहके विषयमें बात करती हो?"

का०—"भला चित्तकी भी कभी छिपी रहती है? देखो, कैसी समझ आ गई।"

मै०—"तुम कैसे जानती हो कि, मैं विवाह करूंगी?"

का०—"क्या तुम कहना चाहती हो कि, मैं गार्गीकी तरह कुमारी रहूँगी।"

मै०—"गार्गीकी तरह कुमारी रहनेकी अपेक्षा विवाह करना ही क्या तुम अच्छा समझती हो?"

का०—"मेरी समझमें स्त्रियोंके लिये विवाहित जीवन ही अच्छा होता है।"

मै०—"क्या गृहस्थ-जीवनके उद्देश्य ब्रह्मचर्यावस्थामें पूर्ण नहीं होते?"

का०—"थोड़े बहुत, पूर्ण रूपसे नहीं।"

मै०—"गृहस्थ-जीवनका पूर्ण उद्देश्य क्या है?"

का०—"सुसन्तानोत्पत्ति। तुम्हारे जैसी सभी विदुषियाँ ब्रह्मचारिणी बनी रहना चाहें, तो मुनि ऋषियोंकी उत्पत्ति कैसे होगी?"

मै०—इस बातको स्वीकार कर लेनेपर भी कौमार्य्य-जीवनमें होने योग्य ऐसे बहुतसे कार्य्य हैं, जो गृहस्थ-जीवनमें पूरे नहीं हो सकते।"

का०—"नहीं! तुमसे मैं सहमत नहीं हूँ। मुझे एक आदर्श

जीवन चरित्र ज्ञात है, जिसमें ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास, सभीका पालन हुआ है।"

मै०—"सो कौन सा?"

का०—"बीस वर्षकी अवस्थामें ही महर्षि भृगुकी कन्या "भाव-देवी" बड़ी ही विदुषी हो गयी थी। जटावल्कलधारी तेजस्वी किसी ऋषिके साथ उसका विवाह हुआ था। जिस दिन विवाह हुआ, उसी दिन पतिने भावदेवीसे कहा:—"प्यारी! अभी तक मुझे विशेष संयमकी-ब्रह्मचर्यकी-आवश्यकता है। मैंने निश्चय किया है कि, आगामी दिनसे ही ऐसे एक व्रतका अनुष्ठान करूं, जिसको करते हुए बारह वर्षों तक मिल न सकूँगा। सूर्योदय होनेके पहिले ही मुझे आश्रम त्याग देना पड़ेगा। तुम विदुषी हो, तुम्हें अधिक कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है; प्रोषितभर्तृकाके * नियमोंके अनुसार इस सुदीर्घ समयको तुम व्यतीत करना।" पतिकी इस प्रकारकी इच्छाको सुन, बड़ी प्रसन्नताके साथ भावदेवीने सम्मति दे दी और वह प्रोषितभर्तृकाके नियमोंका पालन करती हुई दिन बिताने लगी। ठीक बारह वर्षोंके बाद जब पति आश्रममें उपस्थित हुए और भावदेवीमें प्रोषितभर्तृकाके सब लक्षण देखे, तब प्रसन्न चित्तसे उन्होंने भावदेवीसे कहा:—"मुझसे तुम इच्छानुसार एक वर माँग लो।" भावदेवीके एक ज्ञानवान् पुत्रकी प्रार्थना करने-पर "तथास्तु" कहकर, फिर ऋषिने भावदेवीसे कहा:—"प्यारी! आगामी दिनसे मुझे वानप्रस्थाश्रमका कठोर व्रत पालन करना है। तुम भी नियमितरूपसे पातिव्रत्य धर्मको पालन करती हुई तत्व-चिन्तनमें अपना पवित्र जीवन व्यतीत करो।" पतिकी

* जिसका स्वामी विदेशमें हो, उस स्त्रीको प्रोषितभर्तृका कहते हैं। इस अवस्थामें स्त्रियोंको बहुत कठिन व्रतका आचरण करना पड़ता है।

इस प्रकारकी उक्ति सुनकर भावदेवीने आनन्दके साथ अनुज्ञा दे दी।"

मै०—"वाह,-बहुत ही रोचक और आदर्श चरित्र है! परन्तु—"

का०—"समझी, तुम जो कुछ कहती, मैं समझ गयी। वास्तवमें पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंको आत्मज्ञान नहीं हो सकता। उनकी विवाहित जीवनमें ही पारलौकिक उन्नति हो सकती है"।

मै०—"पुरुषोंके लिये आत्मज्ञानका लाभ करना सरल है और स्त्रियोंके लिये क्यों नहीं? क्या आत्मा पुरुषोंमें है और स्त्रियोंमें नहीं?"

का०—"नहीं, ऐसा क्यों होगा? आत्मा पुरुष और स्त्री दोनोंमें ही है। जब हम देखती हैं, सुनती हैं, हमारी इन्द्रियोंके काम ठीक ठीक होते हैं, तब कैसे कहूं कि, आत्मा हम लोगोंमें नहीं है।"

मै०—"तो क्या स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंकी आत्मा बड़ी है?"

का०—"आत्मा स्त्री पुरुष दोनोंमें ही समान है।"

मै०—"तब पुरुष आत्मचिन्ताके अधिकारी हैं और हम क्यों नहीं?"

का०—"क्या तुम मुझसे यह कबुलवाना चाहती हो कि, आत्मचिन्तामें पुरुष और स्त्री दोनोंका समान अधिकार है? मान लिया जाय कि है, तो भी संसारके कामोंमें फँसे रहनेपर आत्मचिन्ता करनेका स्त्रियोंको अवसर ही कब मिलता है?"

मै०—"पुरुषोंको क्या संसारकी चिन्ता नहीं होती? पर वे आत्मचिन्ताके लिये समय निकाल ही लेते हैं। हम चाहें, तो हमें भी आत्मचिन्ताके लिये समय मिल सकता है।"

का०—"अस्तु, तुमने एक बार कहा था कि, जननी विदुषी न होनेसे संतान ज्ञानवती नहीं हो सकती; इसका क्या कारण है?"

मै०—"इसका कारण यह है कि, गर्भ-संस्कार न होनेसे

अशिक्षिता माताकी सन्तानको बहुत कष्टसे ज्ञानलाभ करना पड़ता है और विदुषी माताकी सन्तान अनायास ज्ञान-लाभ कर लेती है। माताके जिस तरहके संस्कार होते हैं, उसी तरहकी संतान होगी। माताके गुण संतानमें उतरते हैं। एक साधारण पुरुषमें बहुत दिनोंमें जो ज्ञानका उदय होता है, विदुषी माताकी संतानमें वह जन्मगत ही देख पड़ता है।"

का०—"गर्भकी सन्तानके प्रति माताका कर्तव्य कबसे प्रारम्भ होता है?"

मै०—"पञ्चम माससे। क्योंकि पाँचवें महीनेमें गर्भस्थ संतानमें चित्‌शक्तिका विकाश हो जाता है। अतः इसी समयसे अधिक तीती, अधिक गरम, अधिक क्षार, सड़ी आदि वस्तुओंका भोजन गर्भिणियोंको त्याग देना चाहिये। ऐसे भोजनसे गर्भस्थ संतानको विशेष दुःख होता है और वह संतान रोगी, अल्पजीवी, विकृत-मस्तिष्क होती है।"

का०—"संतान अङ्गहीन होकर क्यों जन्म लेती है?"

मै०—"ऊँची नीची जगहमें जननीके गमनागमनसे।"

का०—"गर्भमें संतानका उत्कर्ष कैसे हो सकता है?"

मै०—"यदि ज्ञानवान् पुत्रकी माताको इच्छा हो तो, गर्भावस्थासे लेकर प्रसवकालपर्यन्त ज्ञानकी चिंतामें उसे समय व्यतीत करना चाहिये। भक्तिमान् संतानकी इच्छा रखनेवाली जननीको भक्तिमें लवलीन रहना होगा। गणित, संगीत, शिल्पकला आदिमें अभिज्ञ पुत्रकी इच्छा हो, तो उन उन विषयोंकी चर्चा करना उचित है। वीर पुत्रकी इच्छा हो, तो ऐतिहासिक वीरोंके चरित्रोंका चिंतन और युद्धादिका स्मरण करना चाहिये। इसी प्रकार जननी जैसी संतानकी कामना करेगी, हिंसा, द्वेष, आलस्य, भय, क्रोध आदि त्यागकर जननीको उन्हीं गुणोंकी चिंतामें रत रहना पड़ेगा। रात्रिदिन

सत्‌चिंता और आनन्दभावसे ही दश मास व्यतीत करनेसे उत्तम संतानकी प्राप्ति हो सकती है। पुत्रोत्पत्तिके पश्चात् जननीका कर्त्तव्य इससे भी अधिक बढ़ जाता है। किसी दूसरे दिन उस विषयको कहूंगी। आज विलम्ब हो गया है, इसलिये जाती हूं।" यह कहकर मैत्रेयी पालकीमें बैठकर घर चली गयी। उसके चले जानेपर कात्यायनी, ऐसी सखीका निरन्तर सहवास हो, इस विचारसे उसी क्षणसे उसे अपनी सपत्नी बनानेके लिये प्रयत्न करने लगी।

कुछ दिनोंके बाद कात्यायनीकी इच्छाके अनुसार याज्ञवल्क्यने विदुषी मैत्रेयीसे विवाह कर लिया। विवाह हो जानेपर मैत्रेयी, याज्ञवल्क्यके आश्रममें ही रहकर धर्मचिंतामें काल बिताती थी। याज्ञवल्क्य भी प्रतिदिन अपने तपस्यागृहमें कात्यायनी और मैत्रेयीके साथ नाना प्रकारकी धर्मालोचना किया करते थे। मैत्रेयी या कात्यायनीको कोई संतान नहीं हुई। संसारधर्मका त्याग कर संन्यास-धर्म लेनेके समय याज्ञवल्क्यने जब अपनी सम्पत्तिका आधा भाग मैत्रेयीको लेनेके लिये कहा, तब मैत्रेयीके साथ याज्ञवल्क्यका जिस तरहका सम्भाषण हुआ, "बृहदारण्यक उपनिषद्" में उसका वर्णन इस प्रकार मिलता है,—

याज्ञवल्क्यकी मैत्रेयी और कात्यायनी दो स्त्रियां थीं। उनमेंसे मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी और कात्यायनी गृहकर्मकुशला थीं। संसार त्याग कर संन्यास ग्रहण करते हुए याज्ञवल्क्यने मैत्रेयीसे कहाः— "मैं इस गृहस्थाश्रमको छोड़कर संन्यास लेना चाहता हूं। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरी जो कुछ सम्पत्ति है, तुम और कात्यायनी दोनोंको समान भागमें बांट दूं।"

मैत्रेयीने कहाः—"भगवन्! विविध धन-रत्नोंसे परिपूर्ण यह पृथिवी यदि हमारी हो जाय, तो इससे क्या मैं अमृतत्वको प्राप्त कर सकूंगी?"

याज्ञवल्क्यने कहाः—"नहीं, धनसे अमृतत्व प्राप्त करनेकी आशा नहीं है। धनसे धनीका जीवन जैसा होता है, ऐसा ही होगा। उससे अमृतत्वका लाभ नहीं हो सकता।" तब मैत्रेयीने कहाः—"भगवन्! जिससे अमृतत्वका लाभ नहीं हो सकता, उससे मेरा क्या प्रयोजन है? जिससे मोक्ष लाभ हो सकता है, उसीका उपदेश दीजिये।" महर्षि याज्ञवल्क्य बोलेः—"अयि मैत्रेयि! पहिलेसे ही तुम हमारा प्रिय करनेवाली और अब भी मेरी चित्तवृत्तिके अनुकूल चलनेवाली हो। तुम यहां आसनपर बैठकर मेरी बातें सुनो।"

याज्ञवल्क्यने कहाः—"मैत्रेयि! पतिके लिये कोई पतिको प्यार नहीं करता। पतिके अन्दर जो आत्मा है, उसी आत्माके लिये ही प्यार करता है, इस लिये पति प्रिय होता है। पत्नीके लिये कोई पत्नीको प्यार नहीं करता। पत्नीके अन्दर जो आत्मा है, उसीके लिये ही प्यार करता है, इसी लिये पत्नी प्रिया होती है। इसी प्रकार पुत्र, मित्र, धन आदिके लिये कोई प्यार नहीं करता। आत्मतृप्तिके लिये ही प्यार करता है, इस लिये पुत्र द्रव्यादि प्रिय होता है। अतः आत्मा ही सबसे प्रियतम है। उसी आत्माको ही देखना चाहिये, उसी आत्माके विषयमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिये। क्योंकि आत्माको जाननेसे ही मुक्ति होती है। इसके सिवाय दुःखमय संसारसे उद्धार होनेके लिये और कोई उपाय नहीं है।"

मैत्रेयी याज्ञवल्क्यके पास रहकर ज्ञानचिंतामें लगी रहीं और कात्यायनी आश्रमधर्मका पालन करने लगीं।

सती बेहुला।

प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरीको माता बेहुलाने भी जन्म लेकर पवित्र किया था। इनके पिताका नाम साधु सौदागर था। वह लक्ष्मीदेवीके पूर्ण कृपापात्र, परम धार्मिक और भगवती दुर्गा देवीके सच्चे भक्त थे। उनकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था। वह सब प्रकारसे पतिकी अनुगामिनी थी। भगवतीकी कृपासे उन्हींके गर्भ-से भाग्यवती बेहुलाका जन्म हुआ था।

बालकपनसे ही बेहुला पढ़ने लिखने और सबसे हिलमिल कर रहनेमें जैसी कुशल थी, संगीत और नृत्यकलामें भी वह वैसी ही दीक्षित थी। नित्य प्रातःकाल सब कामोंसे छुट्टी पाकर अपनी सखियोंके साथ नदी किनारे जाती और घन्टों ध्यान लगाये दुर्गाकी पूजा किया करती थी। समय समयपर सीता, सावित्री आदि सतियोंके पवित्र चरित्र बड़े ध्यानसे पढ़ती थी। सीताकी कष्ट-कहानी पढ़ती हुई उसकी कमलसी आँखोंमें आँसू भर जाते थे और जब पढ़ती थी कि, सती सावित्रीने पतिभक्तिके बलसे मरे हुए स्वामीको भी बचा लिया था; तब उस पुण्यमयी बालिकाके हृदयमें पुण्य और पातिव्रत्यका स्रोत प्रवाहित होने लगता था। उसके मनमें अपूर्व धर्मभाव जग पड़ता था। इसके इस तरहके रहन-सहन रंग-ढंग और भक्तिभावको देखकर सभी कोई कहते थे कि, बेहुला साक्षात् भगवतीकी ही मूर्ति है।

चौदह वर्षकी अवस्थामें चम्पक नगरके एक धनी वैश्यके पुत्र लक्ष्मीन्द्रके साथ बेहुलाका विवाह हुआ था। लक्ष्मीन्द्रके पिताका

नाम चन्द्रधर सौदागर था। वे कट्टर शिवभक्त थे। परन्तु मनसा देवीके साथ उनका बड़ा विरोध था। मनसा देवीके भेजे हुए सांपोंने एक एक करके उनके छहों लड़कोंको मार डाला था। कालीदहके जलके अतल गर्भमें चन्द्रधरके व्यापारकी वस्तुओंसे भरी हुई सात नावोंको डुबा दिया था और हर तरहके अत्याचारोंसे मनसादेवीने उनकी नाकों दम कर दिया था। परन्तु यह बात प्रसिद्ध ही है कि, जो काम प्रेमसे होता है, वह वैर विरोधसे नहीं होता। मनसा देवी चन्द्रधरको जितनी ही दुःखके आँचमें तपाती थी, उतनी ही उनकी शिवके प्रति अनन्य भक्ति और हृदयकी दृढ़ता बढ़ती गयी। लाखों विपत्तियाँ वे अनायास सहन कर अपने अंगीकृत पथपर अचल होकर डंटे रहे।

छहों लड़कोंके मरनेके बाद जब लक्ष्मीन्द्रका जन्म हुआ था, तभी ज्योतिषियोंने बालककी जन्मकुण्डलीको देखभालकर कहा था कि, जिस दिन इसका विवाह होगा, उसी दिन कौतुकागारमें साँपके काटनेसे इसकी मृत्यु हो जायगी। सौदागर चन्द्रधरके हृदयमें इसी बातकी चिन्ता छायी हुई थी। इस लिये पुत्रके विवाहके पहले ही उन्होंने चम्पकनगरके निकटवर्त्ती सन्तालीपर्वतके ऊपर यमपुरीके जेलखानेकी तरह एक लोहेका बड़ा मजबूत मकान बनवाया था। उस मकानके चारों ओर सैकड़ों सन्तरी पहरेदार रक्खे गये थे। हजारों नेवले, हजारों मोर, नामी नामी ओझा और ऐसी ऐसी वृक्ष लतायें-जिनकी तीव्र गन्धिके सामने भयङ्करसे भयङ्कर साँप भी नहीं ठहर सकते थे, मकानके चारों ओर रक्खी गयी थीं। इतना प्रबन्ध करनेपर भी देवी मनसाके कहने पर इनके भयसे भीत हो, एक कारीगरने दीवारमें बहुत ही बारीक, छेद जो किसीको मालूम न पड़े, कोयलेकी राखसे बन्द करके रख छोड़ा था।

मनुष्य चाहे कितना ही बुद्धिमान् और सावधान हो, दैवसे बचनेके लिये कितने ही यत्न करे, परन्तु भवितव्यता जो होनेकी है, वह अवश्य ही होगी। दैवके सामने मनुष्यको सिर झुकाना ही पड़ेगा। इस अटूट नियमके अनुसार इतना पुरुषार्थ करनेपर भी विवाहकी रात्रिमें उसी भीषण कमरेके अन्दर उस छेदसे आकर एक काली नागिनने लक्ष्मीन्द्रको डस दिया। सुहागरातको ही चन्द्रधरके कुलका दीपक बुझ गया। प्राणपखेरू लक्ष्मीन्द्रके देह-पिंजरेको छोड़कर उड़ गये। साँपके विषसे उसका समस्त शरीर काला पड़ गया। चारों ओर करुणध्वनि गूँज उठी। लक्ष्मीन्द्रकी माता छिन्नमूल लताकी तरह धरतीपर गिर पड़ी। पुरनारियाँ रोती रोती आकाशको कम्पित करने लगीं; किन्तु वेहुला—नववधू वेहुला-गुरुजनोंके सामने खुले कण्ठसे रो नहीं सकती थी। दिल खोलकर रोना भी उसके लिये कठिन था। उसके रोम रोममें विषम वेदनाएँ मालूम होती थीं, ज्वालामयी यन्त्रणाकी आग उसके मर्मस्थलको दग्ध कर देती थी, उसीसे वह बिलकुल ही वेसुधसी हो गयी थी। उस अवस्थामें उसको कोई देखता, तो यही कहता कि, वह प्रस्तरकी बनावटी मूर्त्ति है।

जब हिन्दुओंके नियमानुसार चन्दनकी चिता बनाकर लक्ष्मीन्द्रके देहको जलानेके लिये घरसे श्मशानकी ओर ले जानेकी तैयारी हुई, तब वेहुलाने लज्जा छोड़कर कहा,—"ऐसा नहीं होगा। सांपके काटे हुए मनुष्यको जलाना ठीक नहीं। आप लोग केलेके खम्भोंको जोड़, नावसी बना, उसीपर उसको छोड़ दीजिये। सम्भव है कि, किसी वैद्यकी कृपासे उनके प्राण बच जांय। मैं भी उनके साथ ही साथ बहती चली जाऊँगी। सभोंने वेहुलाकी बात मानकर मृत देहको नहीं जलाया और उसके कहनेके अनुसार केलेके खम्भोंकी बनी हुई नावपर लक्ष्मीन्द्रके देहको छोड़ दिया। पर वेहुलाको

साथ जानेसे रोका। कौन ऐसा निर्दय और निष्ठुर होगा, जो कि ऐसी कुसुम कलिकाको इस प्रकार एक मुर्देके साथ नदीके जलमें छोड़दे! पुरनारियोंने बेहुलाको बहुत समझाया बुझाया, पुत्रशोकसे पगली बनी माताने बहुत कुछ कहा, पर अपने हठसे कोई भी बेहुलाको हटा नहीं सका। उसने मन, प्राण, शरीर सब कुछ पतिदेवके चरणोंमें उत्सर्ग कर दिया था। पति ही उसके प्राण थे, क्या प्राणको छोड़कर शरीर कभी रह सकता है? कायाके साथ ही साथ छाया भी चलती है। बेहुला सचमुच पतिव्रता थी। पतिको छोड़कर वह कैसे रह सकती? वह लाल वस्त्र पहिन कर सिन्दूर-विभूषित हो, मूर्त्तिमती सावित्रीकी तरह नावपर जा बैठी और सबसे विनयपूर्वक धीरस्वरसे कहने लगी,—"मेरे भाग्यमें जो होनेको था सो हो ही गया, मैंने जिनको शरीर, मन, समस्त सौंप दिया, उन्हींके साथ जाती हूं, इसके लिये मुझे कुछ खेद नहीं है। जिस दिन मैं इस मृतशरीरमें जीवन संचार कर सकूँगी, उसी दिन लौटूँगी, नहीं तो जो दशा स्वामीकी है, वही मेरी भी होगी। आप लोग मुझे आशीर्वाद दें कि, मैं इस परीक्षामें उत्तीर्ण होऊँ।"

उसकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि, डगमगाती हुई उस बनावटी नौकाको एक बड़े जोरकी तरङ्ग बहुत दूर बहा ले गई। बेहुला सबोंकी आंखोंसे ओट हो गई। विजयादशमीके दिन हर-पार्वतीकी प्रतिमाका विसर्जन करके, उस सती बालिकाके आत्मविसर्जनकी बातें कहते हुए सब लोग घर लौट आये। चन्द्रधरका घर शून्य हो गया। उस नगरकी अधिष्ठात्रीदेवी उस देवीके साथ चली गयी।

इसी तरह नदीके प्रबल प्रवाहमें बहती हुई सतीने न जाने कितने दिन बिताये। अब सतीकी परीक्षा आरम्भ हुई। लाश क्रमशः सड़ने लगी। उससे दुर्गन्धि निकलने लगी। जगह जगह कीड़े पड़ गये। वह यह देख फूट फूटकर रोने लगी और रो रोकर

स्वामीके शरीरसे कीड़ोंको निकालने लगी। धीरे धीरे सारी देहमें कीड़े पड़ गये और समस्त शरीरका मांस गल कर पानीमें बह गया। केवल हड्डियां ही रह गयीं। पतिव्रता सती स्वामीकी इन पवित्र हड्डियोंको अपनी छातीसे लगाकर अपने प्रियपतिकी चरणचिन्तामें लवलीन हो गई। वह अपने मन ही मन पतिदेवताके कल्याणके लिये देवी मनसाकी पूजा करती हुई आगे बढ़ी। कुछ दूर जानेपर रास्तेमें एक वैद्यराज मिले। वे बेहुलाको देखते ही उसपर मुग्ध हो गये। संसार भी कैसा रहस्यमय है! कैसे कैसे नीचोंसे यह संसार भरा हुआ है! सतीके इस कष्टको देखकर जिसका हृदय पसीजता नहीं, क्या वह मनुष्य है? ऐसी देवीके ऊपर जिनकी बुरी दृष्टि पड़ती है, क्यों न उनके ऊपर वज्र गिरे! वैद्यराजने बेहुलाको विश्वास दिलाया कि, मैं तुम्हारे पतिको जिलाकर चङ्गा कर दूंगा। पर सतीने उनके हृदयके नीचतापूर्ण भावको समझ लिया। अपनी अवस्थाको सोच और वैद्यकी नीचताको देखकर उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होने लगी। एक दीर्घश्वास लेकर घृणासे उसने वैद्यकी ओरसे दृष्टि फिरा ली और रो रो कर वह अपने हृदयका बोझ हलका करने लगी।

इसी तरह प्रायः छः मास बीत गये। रात दिन हवा पानीमें आहार-विहीन रहनेसे बेहुलाका शरीर सूख गया। शरीरका रक्त उड़ गया। वह सौन्दर्य्य अब नहीं रहा। पर उसके शरीरमें धर्म्मकी दिव्य ज्योति, पुण्यकी पवित्र प्रभा जगमगा रही थी। हर तरहके दुःख और विपत्तियोंका सामना करके कठिनसे कठिन तपस्या करती हुई, भविष्यत् सुखकी कल्पनासे प्रसन्नचित्त होकर वह धीरे धीरे बहने लगी। कुछ आगे बढ़कर उसने देखा कि, एक घाटपर एक धोबिन कपड़ा धो रही है। उस धोबिनके चेहरेपर कुछ ऐसा दिव्य प्रकाश था, जिसको देखते

ही सतीका हृदय आनन्दसे नाच उठा। सती अपनी नाव घाटकी ओर ले चली। जाते ही उसने देखा कि, धोबिनने अपने नन्हेंसे बच्चेको मार डाला; क्योंकि वह रो रो कर उसे बहुत तङ्ग कर रहा था। जब घर लौटनेका समय हुआ, तब थोड़ा सा जल लड़केके मुँहपर छिड़ककर उसने उसे जिला लिया और वह घर जानेके लिये कपड़ोंको समेटने लगी। आश्चर्य्य और विस्मयसे बेहुलाका कौतूहल लगातार बढ़ता ही गया और उसको कोई स्वर्गीया देवी समझकर वह उसके पैरोंपर गिर पड़ी।

वह धोबिन देवी मनसाकी सहेली थी। पतिव्रता सतीकी तपस्याको देखकर देवी मनसाने ही उसको भेजा था। उसका नाम था नेता। नेताने मुस्कराकर कहा,—"स्वामीके लिये इतना त्याग, ऐसी प्रीति, ऐसी अपार श्रद्धा देवलोकमें भी दुर्लभ है। जिस स्त्रीका अपने स्वामीपर ऐसा गहरा अनुराग है, उसका कभी अमङ्गल नहीं हो सकता। देवता तुम्हारे ऊपर परम सन्तुष्ट हैं। देवसभामें जाकर अपने नाच-गानसे महादेवको प्रसन्न करो, तो तुम्हारी वासना पूरी हो जायगी।"

इस बातको सुनकर बेहुलाकी आँखोंमें आनन्दके आँसू भर आये। जिसका स्वप्नमें भी होना असम्भव था, वह सम्भव प्रतीत होने लगा। बेहुलाने प्रसन्न चित्तसे कहा,—"स्वामीके लिये घोर रौरव नरकमें भी चलनेको मैं तैयार हूं। यह कहकर अपने स्वामीकी निर्जीव ठठरीको लिये वह नेताके साथ साथ चली। नेताके उद्योगसे देवसभामें एक विराट् सभा हुई। तैंतीस करोड़ देवता उस सभामें आ पहुंचे। नियमानुसार पहले किन्नर-किन्नरियों और गन्धर्व-अप्सराओंके नाच गान हुए। पीछे बेहुलाकी बारी आयी। उस समय बेहुलाकी अवस्था कुछ और ही हुई थी। अपने स्वामीके रूपके सिवाय उसको कुछ भी

अच्छा नहीं मालूम होता था। अपने स्वामीका ही रूप रह रहकर उसको याद आने लगा। उसके शरीरके रोम रोममें वही रूप रम गया। वह स्वामीमग्न हो गई। देवताओंके मुखोंपर उसे लक्ष्मीन्द्रका ही रूप झलकने लगा। वह जिधर आँखें उठाकर देखती, उधर ही लक्ष्मीन्द्रकी लोकललाम मूर्ति उसे दिखाई पड़ती थी। यही साधनाकी अन्तिम अवस्था है। इसी अवस्थामें अरूप होनेपर भी भगवान् अपने दिव्य रूपकी ज्योतिसे भक्तोंके हृदयोंको आलोकित कर देते हैं। वह सब लाज सङ्कोच छोड़कर स्वामीका नाम ले, स्वामीका रूप सर्वत्र प्रत्यक्ष देखती हुई, करुणस्वरसे अपने हार्दिक शोकको नाच-गानसे प्रकट करने लगी। उसकी करुणा-भरी वाणी सुनकर देवताओंके प्राण व्याकुल हो गये। इस करुण-दृश्यको मनसा देवीसे देखा नहीं गया। वह देवसभामें उठ खड़ी हो गयीं और करुणस्वरसे बोलने लगीं,—"बेटी! तेरा सौभाग्यसिंदूर मैं लौटा देती हूँ, तेरे सतीत्वके सामने मेरी निष्ठुरताकी पराजय हुई। तेरे सत्याग्रहके आगे मुझे हार माननी पड़ी। जो काम सती-सावित्रीने कर दिखलाया था और कभी किसीसे नहीं हुआ था, आज तूने फिर दुबारा वही दुष्कर काम सिद्ध कर दिखलाया है। धन्य है तेरी तपस्या, धन्य है तेरी पतिभक्ति! जगत्‌में तेरी अक्षयकीर्त्ति बनी रहेगी।" 'यह ले अपने प्राणपतिको'—ऐसा कहकर उस निर्जीव ठठरीको स्पर्श करके उसने लक्ष्मीन्द्रको जिला दिया। आनन्दसे, हर्षसे, उल्लाससे सतीके हृदयने जिस भावको धारण किया, उसका वर्णन करनेकी शक्ति संसारके किसी लेखककी लेखनीमें नहीं है। देवसभामें आनन्दका प्रवाह बहने लगा। सतीके लोकोत्तरचरित्रकी चमत्कारिताको देखकर अमरगण पुलकित हो गये। देवसभाके चारों ओरसे सभी लोग ऊँचे स्वरसे आनन्दाश्रु बहाते हुए पुकारने लगे—सतीत्वकी जय! मनसा देवीकी जय!! सती बेहुलाकी जय!!!

अरुन्धती ।

आकाशमें उत्तरकी ओर सप्तर्षियोंके जो सात तारे देख पड़ते हैं, वे कश्यप आदि, सृष्टिके आरम्भकालके, ऋषियोंके सात लोक हैं। कश्यप आदि सातों ऋषि नित्य हैं, अर्थात् इनका कभी नाश नहीं होता।

शास्त्रोंमें लिखा है कि, साधारण स्त्रियोंकी स्वतन्त्र रहकर मुक्ति नहीं होती; पतिमें तन्मय होकर ही होती है। पतिमें तन्मय वही स्त्री होगी, जो काया, वचन और मनसे पूर्ण पतिव्रता हो। स्त्रियोंका पातिव्रत्य काँचके समान नाजुक होता है। एक बार भङ्ग होनेपर सहस्रों प्रयत्न करनेपर भी वह जोड़ा नहीं जा सकता। थोड़ीसी असावधानीसे ही पातिव्रत्यकी हानि हो जाती है। अतः पति-व्रताओंको निरन्तर सावधान रहना चाहिये।

तपके लिये प्राचीन ऋषियोंने हिमालयको बहुत पसन्द किया था। सप्तर्षि भी अपनी पत्नियों सहित हिमालयपर ही तप करते थे। वास्तवमें भागीरथीके तटकी हिमालयकी तरहटी अत्यन्त रमणीय और तपके लिये सर्वथा योग्य है।

कार्तिक मासमें सूर्योदयके पहिले प्रति दिन गङ्गा स्नान करनेका बड़ा माहात्म्य है। सप्तर्षियोंकी सातों पत्नियाँ उषःकालमें कार्त्तिक स्नान किया करती थीं। सातों ऋषिपत्नियाँ अलौकिक सुन्दरी और पतिव्रता थीं। उन्हें देख, भगवान् अग्निनारायण उनपर मोहित हुए। यों ही कार्तिकमें शीत बढ़ जाता है, फिर हिमालयके शीतका तो कहना ही क्या है?

एक दिन गङ्गा स्नान करके ज्यों ही सब लौटीं, त्यों ही उन्होंने क्या देखा कि, थोड़ी दूर अग्नि जल रहा है। सब जाड़ेके मारे काँप रही थीं, सबके हाथ पैरकी अँगुलियाँ ठिठुरी जा रही थीं। सबने विचार किया कि, अभी सूर्योदयमें थोड़ा विलम्ब है। तब तक हम उस अग्निके पास बैठ, थोड़ी ताप लें, फिर आश्रममें चलें। उनके इस विचारसे वशिष्ठकी पत्नी अरुन्धती सहमत नहीं हुईं। उन्होंने कहा,—"चाहें तो आप छहों तापें, मैं पतिकी सेवामें जाती हूं। उनके अग्निहोत्रकी सामग्री सिद्ध करनी है। विलम्ब होनेसे वे क्रुद्ध होंगे। इसके अतिरिक्त हम पतिसे केवल स्नान करनेकी आज्ञा ले आयी हैं, इधर उधर बैठनेकी नहीं।" सबने अरुन्धतीका यह कह कर बड़ा उपहास किया कि,—"ये ही बड़ी पतिव्रता हैं, मानों हम कुछ हैं ही नहीं। ठीक है, आप जाइये; हम ताप कर ही घर लौटेंगीं। महर्षि तप कर रहे हैं, उनके लिये स्वर्गमें लोक बनेगा, उसके साथ तुम भी अपना एक लोक बनवा लेना।"

अरुन्धतीने सहेलियोंके उपहासपर ध्यान नहीं दिया। वे इतना ही कहकर चल दीं कि,—"पतिसेवाके बलसे यह होना भी असम्भव नहीं है।"

जब छहों ऋषिपत्नियाँ अग्निके पास तापने बैठ गयीं, तब अग्निनारायणको अपनी दुरभिलाषा पूरी करनेका अवसर मिल गया। अग्निने दैवीशक्तिसे छहोंको गर्भ धारण करा दिया। मतान्तरसे ये छः ऋषिपत्नियाँ छः कृत्तिकायें थीं और अग्निके द्वारा गंगाजलमें मिले हुए शिव-वीर्यसे स्नान करते समय छहोंको गर्भ रह गया। परन्तु इसका पता छहोंको नहीं था। थोड़े समयमें जब वे उठकर चलने लगीं, तो सबको गर्भका अनुभव होने लगा। इससे सब घबड़ायीं और अपनी असावधानीपर पश्चाताप करने लगीं। फिर उन्होंने अपने अपने गर्भ निकाल कर एक घड़ेमें भरे और वह

घड़ा वहीं तीरपर जमे हुए सरपतमें छोड़, वे आश्रममें पहुंचीं। यह घटना ऋषियोंको अन्तर्ज्ञानसे विदित हुई, तब वे पत्नियोंपर बहुत बिगड़े; पर अब होना था सो हो गया। ऋषिगण इस पापके प्रायश्चित्तार्थ उन्होंसे कठोर तप कराने लगे। अरुन्धतीकी साव-धानीसे वशिष्ठजी बहुत प्रसन्न हुए। अनेक ऋषियोंने आकर अरुन्धतीको प्रणाम किया।

जहाँ वह गर्भका घड़ा पड़ा था, वहींसे होकर भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले भगवान् शङ्कर पार्वती सहित निकले। पार्वतीने घड़ेको देख, शङ्करसे कहा,—"महाराज! इस घड़ेमें परम तेजस्वी ऋषि-पत्नियोंके गर्भ देख पड़ते हैं। ऐसा तेज आप या अग्निके अति-रिक्त और किसीका नहीं होता। आज्ञा हो, तो इस घड़ेको कैलाश ले चलूं।" शङ्करने स्वीकार कर लिया। पार्वती घड़ेको उठाकर घर ले गयीं। ठीक समयपर घड़ेसे एक दिव्य मूर्ति प्रकट हुई, जिसके छः मुख थे। पार्वतीने चुंबन कर उसे स्तन्य-पान कराया और उसका नाम 'षडानन' रक्खा। वे उसे अपना पुत्र मानने लगीं। कार्तिकमें या कृत्तिकाओंसे जन्म होनेके कारण उनका 'कार्तिकेय' और सरपतसे जन्म होनेके कारण 'शरजन्मा' नाम पड़ा। बड़े होनेपर वे महाप्रतापी हुए, सब देवोंमें उनसे बली कोई नहीं था। यह देख, सब देवोंने एक मत हो, उन्हें अपना सेनापति बनाया। माता-ओंकी असावधानीसे उन्हें बहुत दुःख होता था, इस कारण वे स्त्री-जातिका मुख नहीं देखते थे और निरन्तर ब्रह्मचारी ही रहे।

जब सातों ऋषियोंका तप पूर्ण हुआ, तब स्वर्गमें प्रत्येकके लिये एक एक लोक बना। सातों अपने अपने लोकोंमें जा बसे। देवोंने अरुन्धतीके पातिव्रत्यके पुण्यसे प्रसन्न होकर अरुन्धतीके लिये भी वशिष्ठ लोकके पास ही एक स्वतन्त्र लोक बना दिया, जहाँ अरु-न्धती जा बसीं और पतिचरणोंके ध्यानमें दिन बिताने लगीं।

छहों ऋषि-पत्नियोंने उपहाससे कहा था, परन्तु अरुन्धतीका सचमुच स्वतन्त्र लोक बन गया, यह देख छहों बड़ी खिन्न हुईं और अरुन्धतीकी सेवा करने लगीं। कठोर तप और पतिव्रताकी सेवासे ऋषियोंने अपनी अपनी पत्नियोंको अपने अपने लोकमें ले लिया, परन्तु उनके लिये स्वतन्त्र स्वतन्त्र लोक नहीं बन सके। सात तारोंके साथ अरुन्धतीका आठवाँ तारा अब भी आकाशमें चमकता हुआ देख पड़ता है, जिससे पातिव्रत्यकी महिमा सिद्ध होती है। हिन्दुओंके विवाहमें नववधूको अरुन्धतीका तारा दिखाया जाता है और आशीर्वाद दिया जाता है:—

"अत्रेर्यथाऽनुसूया स्याद्वशिष्ठस्याप्यरुन्धती।
कौशिकस्य यथा सती तथा त्वमपि भर्तरि॥

अर्थात् हे पुत्रि! अत्रिको जैसी अनुसूया प्यारी हुई, वशिष्ठको जैसी अरुन्धती प्यारी हुई, कौशिकको जैसी सती प्यारी हुई, वैसी तू भी पतिकी प्यारी हो।

आर्यमहर्षियोंने आर्यमहिलाओंके आचार-व्यवहारके नियम ऐसे अच्छे और सोच विचार कर बनाये हैं कि, उनके अनुसार चलनेसे कभी पतन नहीं होता। उन नियमोंके प्रति असावधान होना भयङ्कर है। अत्यन्त तपस्विनी पतिप्राणा छः ऋषिपत्नियोंकी थोड़ीसी असावधानीसे कितनी हानि हुई और सावधान अरुन्धतीका कितना उत्कर्ष हुआ, इसका विचार प्रत्येक पतिप्राणा स्त्री अपने हृदयमें ही कर देखे। इस कथासे हमारी अल्हड़ बहिनोंको पातिव्रत्य रक्षार्थ अत्यन्त सावधान रहनेकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

सती-पञ्चक।

(१)

सुनीति।

—:*:—

सुनीति उत्तानपाद राजाकी प्रधान रानी और भक्तवर ध्रुवकी माता थीं। ध्रुवको विमाता सुरुचि राजाको अधिक प्रिय होनेके कारण सुनीतिका निरन्तर अनादर हुआ करता था। यहां तक कि, सुरुचिने ध्रुवको राजाकी गोदमें नहीं बैठने दिया और झिड़क कर निकाल दिया। सुनीतिको रहनेके लिये राजप्रासादके बाहर एक झोपड़ी बना दी गई थी और उन्हें वर्षों पतिके दर्शन नहीं होते थे। तो भी वे सुरुचिके पुत्र उत्तमको ध्रुवसे अधिक प्यार करती, सुरुचिके प्रति आदर करती और पति-चरणोंमें अनन्य भक्ति रखती थीं। उन्होंने पति या सौतको कभी भूलकर भी अनुचित शब्दोंसे नहीं दुखाया। अनादरसे दुःखित हो, जब ध्रुव उनके पास आकर इस अपमानके प्रतीकारका उपाय पूछने लगा, तब उन्होंने यही उपदेश दिया कि,—"तुम्हारी विमाता या पिताका इसमें दोष नहीं है। मनुष्यके प्रारब्ध कर्मोंके अनुसार ही उसे सुख दुःख भोगने पड़ते हैं। सुखसे सुखी या दुःखसे दुःखी नहीं होना चाहिये। परमात्माके सङ्कल्पोंका मनुष्य पता नहीं पा सकता। दुःख पड़नेपर मनुष्यको समझना चाहिये कि, यह दुःख सुखके लिये है। विना तपाये सोनेका रङ्ग नहीं चमकता, विना मर्दन किये कस्तूरीकी और विना जलाये या घिसे चन्दनकी सुगन्धि नहीं फैलती। दुःखोंसे ही मनुष्यका महत्व बढ़ता है। पुत्र! तुम

दुःखित न हो और जगन्नियन्ताकी उस गोदमें जा बैठनेका यत्न करो, जहांसे च्युत होनेका भय न हो।" माताके इस उपदेशसे ध्रुवकी कितनी उन्नति हुई, सो सभी जानते हैं। सुनीतिकी सहेलियां जब उनकी दशापर शोक करती, तब वे उलटी उन्हींको समझाती हुई कहती थीं कि,—"राजविलासमें पड़े रह कर भगवद्भक्ति नहीं हो सकती। मेरे भगवान् पतिदेव जिससे प्रसन्न रहें, वही हम आर्यस्त्रियोंका प्रधान कर्तव्य है। मेरे पतिदेवके सुखसे ही मुझे जितना सुख होता है, उतना राजविलासमें पड़े पड़े नहीं होता। मेरी सुरुचि, मेरा उत्तम, सुखी रहे, इसीमें मुझे आनन्द है। इस झोपड़ीमें बैठकर पतिचरणमें लौ लगानेका मुझे अवसर मिलता है, वह राजप्रासादमें नहीं मिलेगा; इसीसे मैं अपनेको सौभाग्यवती समझती हूं। आप शोक न करें, मुझे किसी प्रकारके कष्ट नहीं हैं।" सौतिया डाहके कलहके उदाहरण इतिहास और व्यवहारमें जहां तहां देख पड़ते हैं। उनसे जो अनर्थ होते है, सो भी सबको विदित हैं। आजकलकी कृत्या स्त्रियोंकी तरह सुनीतिने पतिपर अर्थ या मानके लिये नालिश नहीं की। पतिके विरुद्ध कोई बात भी मनमें लाना वे पाप समझती थीं। उनकी शान्तिमयी नीतिसे कितना उपकार हुआ और अन्तमें उनकी विजय होकर सुरुचि और उत्तानपादको कैसा लज्जित होना पड़ा, सो देखकर पातिव्रत्य धर्मकी शिक्षा हमारी बहिनोंको ग्रहण करनी चाहिये। कहा भी है,—"अन्त भलेका भला।"

कयाधू ।

—*—

कयाधू दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी स्त्री और वैष्णवशिरोमणि प्रह्लादकी माता थी। एक ओर भगवान्‌का विरोधी पति और दूसरी ओर परम भगवद्भक्त पुत्र, इन दो पातोंकी कैंचीमें पड़कर उसकी बड़ी करुणास्पद दशा हो गयी थी। यदि वह पुत्रका पक्ष लेती, तो पतिके असन्तुष्ट होनेसे पातिव्रत्यधर्ममें हानि पहुंचती और पतिका पक्ष लेती, तो प्राणसे प्यारे पुत्रके जीवनसे हाथ धो बैठना पड़ता। अन्तमें सब प्रकारके मोहोंको हृदयसे हटा कर उसने पतिकी आज्ञाके वशवर्त्ती रहना ही उचित समझा। कोड़े मारने, तोपसे उड़ाने, पहाड़से लुड़काने, अग्निमें जलानेसे भी जब प्रह्लादकी मृत्यु नहीं हुई, तब हिरण्यकशिपुने प्रखर विष बनवाकर कयाधूके आगे रखकर कहा,—"मुझे और किसीका विश्वास नहीं है। तुम पतिव्रता हो, मुझसे मिथ्या व्यवहार नहीं करोगी। कोई सेवक यह विष प्रह्लादको पिलानेको तैयार नहीं है, तुम यह अपने हाथों उसे पिला दो।" इस आज्ञाको सुन कयाधूके अन्तःकरणकी क्या दशा हुई होगी, सो हृदयवान सज्जन ही जान सकते हैं। पतिचरणोंका भक्तिभावसे स्मरण कर और 'मैं सच्ची पतिव्रता होऊँ तो यह विष अमृत हो जाय,' ऐसा मनमें सङ्कल्प कर, आँखोंमें आँसू भर कयाधूने प्रह्लादको विष पिला दिया। पातिव्रत्यका कयाधूको कैसा विश्वास था! उसीके प्रतापसे विष पीकर भी प्रह्लादका बाल भी बाँका नहीं हुआ। पतिकी आज्ञाके आगे पुत्र-परिवार आदिको किस प्रकार गौण समझना चाहिये, इसकी शिक्षा कयाधूके चरित्रसे मिलती है।

———

शैव्या।

—:—

शैव्या राजा हरिश्चन्द्रकी रानी थीं। हरिश्चन्द्रने अपना सब राजपाट दान कर दिया और पुत्र सहित शैव्याको भी बेच डाला। सो सब सहन कर, शैव्याने पतिको किसी प्रकार दोष न देकर उन्हें सत्यसे भ्रष्ट नहीं होने दिया। विश्वामित्रके द्वारा सताये जानेपर उद्विग्न हो, जब जब हरिश्चन्द्रको सत्यसे विचलित होते हुए वह देखती, तब तब बड़ी गम्भीरतासे उन्हें धैर्य दे, यह कहकर समझाती कि,—"महाराज! आप चिन्ता छोड़ सत्य-प्रतिज्ञाका पालन कीजिये। हम लोगोंके दुःख कष्टोंका विचार न कीजिये। हे पुरुषसिंह! पुरुषके लिये सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। इस नश्वर संसारमें सब कुछ नष्ट हो जाता है, किन्तु सत्य धर्म ही अटल बना रहता है। सत्य ही संसारसागरसे मनुष्यको तार सकता है। आपने अनेक अश्वमेध और राजसूय यज्ञ कर पुण्य संपादन किया है। सारा समुद्र पारकर अब किनारेपर डूब जाना उचित नहीं है।" शैव्याके इस प्रकारके धैर्य-दानसे ही हरिश्चन्द्र सत्य-संग्राममें विजयी हो सके थे। पतिके विपत्तिमें पड़ते ही मायके भाग जानेवाली कर्कशाएँ घर घर देख पड़ेंगी, पर पतिकी सत्य-रक्षाके लिये पुत्र सहित बिकजानेवाली एक शैव्या ही थी। इसीसे शास्त्रोंमें भक्तोंने जगदम्बासे यह वर माँगा है कि,—

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्॥

अर्थात्—"मा ! मुझे तुम ऐसी पत्नी दो, जो अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई हो, मनको लुभानेवाली हो, आज्ञापालन करनेवाली हो और दुस्तर संसारसागरसे तारनेवाली हो। दुस्तर संसारसागर-से पतिको कैसा तारना चाहिये, इसकी शिक्षा शैव्याके चरित्रसे मिलती है।

---

(४)

सुलोचना अथवा प्रमिला ।

सुलोचनाको कहीं कहीं प्रमिला भी कहा है। यह पातालके राजा नागराजकी कन्या और रावणके पुत्र इन्द्रजित अथवा मेघनादकी पत्नी थी। रावणकी स्त्री मन्दोदरी भी उच्च कोटिकी पतिव्रता होनेके कारण उसकी शिक्षासे सुलोचनाके हृदयमें भी पातिव्रत्यकी ज्योति पूर्णरूपसे प्रकाशित हो गयी थी। राक्षसोंके घरमें रहकर भी मन्दोदरी और सुलोचना पातिव्रत्यके तेजसे लक्ष्मी-सरस्वती जैसी शोभा पा रही थीं।

राम-रावणके युद्धमें मेघनाद जब लक्ष्मणके हाथों मारा गया, तब उसकी भुजा कटकर घरमें वहाँ आकर पड़ी, जहाँ प्रमिला बैठी हुई पतिकी प्रतिमाकी पूजा कर रही थी। उसने पतिकी भुजा पहिचान ली। अचानक पतिकी कटी भुजाको देखकर, जैसे किसीपर वज्राघात हो, वैसी वह मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़ी। दासियाँ अनेक उपचार कर उसे सुधमें लायीं और कहने लगीं,-"यह भुजा राजकुमारकी नहीं है। आप क्यों व्यर्थ शोक करती हैं? श्रीशङ्करकी कृपासे कुमारका अमङ्गल नहीं हो सकता।" प्रमिलाको पक्का विश्वास था कि, यह पतिकी ही भुजा है। बहुत विवाद होनेपर यह निश्चय हुआ कि, यदि यह मेघनादकी भुजा है, तो

प्रमिलाके पातिव्रत्यके प्रतापसे वह लिख दे कि, कुमारकी कैसी मृत्यु हुई है। प्रमिलाने तुरन्त उस कटी भुजाको खड़िया दे दी। भुजा भूमिपर लिखने लगी,—"पतिव्रते! मेरा शिर लक्ष्मणने भगवान् रामचन्द्रके चरणोंमें भेंट कर दिया और भुजा तुम्हारे पास भेज दी है।"

इस चमत्कारको देख सभी विस्मित हुए। पतिकी लोथके साथ अपने देहको जलानेका उसने निश्चय किया। पर वह मिले कहाँ? प्रमिलाने श्वशुरसे कहा कि, आप महाप्रतापी हैं, अपने बाहु-बलसे मेरे पतिकी लोथ मुझे ला दीजिये। एकओर पुत्रशोक और दूसरी ओर पुत्रवधूकी यह माँग होनेसे रावण हक्का बक्का हो गया। रावणके मन्त्रियोंने उससे कहा,—"देवि! तुम्हारे पिता (नागराज) के पास मृतसंजीवनी है, उनसे कहकर अपने पतिको क्यों नहीं जिला लेतीं?" प्रमिलाको सतीत्वके प्रतापसे दिव्य ज्ञान हो गया था। वह बोली,—"पिताने ही तो मुझे विधवा कर मेरे सतीत्वकी परीक्षा ली है, अब मैं उनके पास क्यों जाऊँ? परीक्षामें उत्तीर्ण होना ही इस समय मेरा कर्त्तव्य है।" वास्तवमें लक्ष्मण शेषावतार थे और प्रमिला शेष (नाग) कन्या थीं। इस रहस्यको जानकर ही प्रमिलाने ऐसा उत्तर दिया था। रावण और मन्दोदरीने पति-सहगमन न करनेके लिये प्रमिलाको बहुत समझाया, परन्तु उसने किसीकी न सुनी। मन्दोदरीसे केवल यह कह कर कि,—"मा! तुमने ही मुझे सतीधर्म सिखाया है, उसका पालन मैं अवश्य करूँगी।" वह वहाँसे चल दी और सीधी रामके पास पहुंची। रणभूमिमें उसे पतिकी लोथ मिल गयी थी और कटी भुजा उसने छातीसे बांध ली थी। केवल शिर रामके पास था, वह उसने प्रणामपूर्वक विनीत भावसे रामसे माँगा। दयाघन रामचन्द्र भी उसकी करुणाजनक दशा देख सेहर उठे। प्रेमपूर्वक आशीर्वाद

दे, उन्होंने उससे कहा,—"पुत्रि! शोक न करो, तुम कहो, तो मैं तुम्हारे पतिको जीवित कर दूँ और विपुल राज्य, धन, ऐश्वर्य दे तुम्हें सुखी करूँ।" सुलोचना बोली,—"प्रभो! आपकी ही इच्छा मात्रसे सृष्टिके सब कार्य होते हैं। मेरे पतिदेवकी शय्यापर पड़े पड़े नहीं, किन्तु रणमें मृत्यु हुई है, इससे मैं वीरपत्नी हूं। वे सूर्यमण्डलको भेदन कर स्वर्ग गये हैं। हे राम! वीरोंका यह धर्म नहीं कि, दिया हुआ दान लौटा लिया जाय। मेरे पतिदेव आपके चरणोंमें अर्पित हो चुके और आपने भी उन्हें अपना लिया। अब मुझे अपनाकर आशीर्वादके साथ ऐसी सहायता दीजिये, जिससे मैं अपना धर्म-पालन कर सकूँ।" सतीके ये हृदयस्पर्शी वचन सुन, रघुनाथजीके भी लोचनोंमें नीर भर आया। वानरोंको आज्ञा दे, तुरन्त मेघनादका शिर मँगवाकर वह उन्होंने प्रमिलाके हवाले किया। प्रमिलाने उसे छातीसे लगाया, उसका चुम्बन किया, उसकी धूल पोंछी। वह प्रेमोन्मत्त हो, जाने लगी। बन्दरोंने रामसे पूछा,—"महाराज! आपने इसका इतना गौरव क्यों किया?" रामचन्द्र बोले,—"यह सती है।" बन्दरोंने कहा,—"हम तब इसे सती समझेंगे, जब यह इस कटे मुण्डको हँसा दे।" इस सम्वादको सुनते ही सती लौटी और पतिका मुण्ड गोदमें रख, बोली,— "नाथ! यदि इस दासीपर आपका कुछ भी प्रेम हो, तो एक बार हँस दीजिये।" मुण्ड खिलखिला कर हँस पड़ा। बन्दर और उपस्थित देवताओंने प्रमिलाका जयजयकार किया। चन्दनादिकी चिता बनायी गयी। देव-दानव-यक्ष-गन्धर्व-किन्नर आदि सभी वहाँ आये। सबको प्रणाम कर, पतिकी लोथको गोदमें रख; सम्मुख श्रीभगवान् रामचन्द्रका दर्शन करती और पतिमें तन्मय होती हुई सुलोचना देखते देखते भस्म हो गयी। सुलोचनाके सतीत्वको देख, साक्षात् भगवान्‌की भी आंखें डबडबाईं, इससे अधिक सतीत्वका प्रताप

क्या हो सकता है? दानवोंकी स्त्रियोंमें इतना सतीत्व था, तो देव-तुल्य आर्योंकी महिलाओंमें कितना होना चाहिये? पतिमें तन्मय होनेकी ही यह महिमा है कि, कटी भुजाने लिखा और कटा मुण्ड हँसा। प्रमिलाके दृष्टान्तसे हमारी बहिनोंको पतिमें तन्मय होना सीखना चाहिये।

(५)

गान्धारी।

—*—

पतिमें तन्मय हुई सती स्त्रियोंमें गान्धारीका चरित्र भी ध्यान देने योग्य है। गान्धारी महाराज धृतराष्ट्रकी पत्नी और दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ वीर पुत्रोंकी जननी थीं। पाण्डवोंकी माता कुन्तीसे इनका घनिष्ठ प्रेम सम्बन्ध था। कुन्ती दुर्योधन आदिको जितना चाहती थीं, गान्धारी उससे अधिक पाण्डवोंको प्यार करती थीं। गान्धारीके अनेक सद्गुणोंमें सबसे बढ़ा चढ़ा यह गुण था कि, वे आदर्श पतिप्राणा थीं।

उन्होंने अपने बच्चोंको ऐसी अच्छी धर्मशिक्षा दी थी कि, स्वार्थ-वश कौरव-पाण्डवोंमें इतना युद्ध होनेपर भी जब तक दुर्योधन राज्य करता था, तब तक प्रजाको कोई दुःख नहीं होने पाया। दुर्योधन-की प्रजा दुर्योधनसे सन्तुष्ट थी, इसका कारण मातृशिक्षाके प्रभावके अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता। गान्धारीने बन्धुकलह न करनेके लिये पुत्रोंको बहुत रोका, समझाया, पर सब प्रकारसे मातृ-पितृभक्त होनेपर भी दुर्योधन आदिने उनकी एक न सुनी। इससे जो कौरवोंका सत्यानाश हुआ, सो सबको विदित ही है।

पति जिस अवस्थामें हो, उसी अवस्थामें रहना पतिव्रताका

धर्म है। गान्धारी प्राणपणसे आजन्म इस धर्मको निबाहती रहीं। "पति कुछ भी खावे, चाहे भूखा रहे; हमें मिष्टान्न चाहिये।" "पतिके शरीरपर चाहे फटे कपड़े ही क्यों न हों, हमें तीजकी नयी धोती चाहिये।" इस प्रकारकी कलियुगकी कर्कशाओंकी तरह गान्धारीमें प्रवृत्ति नहीं थी। महाराज धृतराष्ट्र अन्ध थे। उनकी सेवा, चाकरी, महारानी होनेपर भी, स्वयं गान्धारी करती थीं; सेवकों द्वारा नहीं कराती थीं। यही नहीं, किन्तु पतिदेव अन्ध होनेसे वे सृष्टिसौन्दर्य-के देखनेसे वञ्चित रहते हैं, यह जान, वे स्वयं अपनी आंखें वस्त्रसे बाँधे रहती थीं। मनमानी प्रकृतिकी शोभा देखना नहीं चाहती थीं। पतिदेवके सुखसे सुख और दुःखसे दुःखका अनुभव करनेवाली गान्धारी धन्य हैं। उनकी पतिप्राणताका अनुकरण आर्यमहिलाओं-को करना चाहिये।

दमयन्ती।
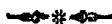
विदर्भ (बरार) देशके महाराज भीमकी कन्याका नाम दमयन्ती था। दमयन्तीसी सुन्दरी स्त्री उस समय देशमें दूसरी नहीं थी। यहाँ तक कि, उसके सौन्दर्यपर मोहित हो, इन्द्रादि देवता भी उसे व्याहलेना चाहते थे। परन्तु घटना-चक्रसे निषध देशके प्रतापी, रूपवान् और गुणवान् राजा नलसे उसका विवाह हो गया। वह घटना इस प्रकार हुई:—

नलका राज्य बड़ा ही मनोहर और सुखकर था। वह प्रजाको ही नहीं, किन्तु पशुपक्षियोंको भी इतना प्यारा लगता था कि,

निरन्तर मानस सरोवरपर रहनेवाले राजहंस उसके राज्यकी पुष्करिणियोंमें आकर क्रीड़ा करते थे। कहते हैं कि, राजहंस मनुष्योंकी बोली जानता है और मनुष्योंकी तरह बुद्धिके कार्य कर सकता है। एक दिन नलके शृंगारवनके सरोवरपर बहुतसे राजहंस आये। उनमेंसे नलने एकको पकड़ लिया। हंसने कहा,—"महाराज! आप मुझे छोड़ दें, तो आपका मैं एक हित करूँगा। परम सुन्दरी दमयन्तीसे आपका विवाह करा दूँगा।" राजाने हंसको छोड़ दिया। हंसने दमयन्तीके पास जाकर नलका गुणवर्णन कर कहा,—"आपके लिये नल ही उपयुक्त वर हैं।" हंसने गुप्तरूपसे एक दिन नलको भी दमयन्तीसे मिला दिया। दोनों परस्परके रूप-गुणोंपर मुग्ध हुए। दमयन्तीने स्वयंम्वर रचा। सब देवता स्वयंम्वरमें आये; परन्तु दमयन्तीने अपने मनोनीत पति नलके ही गलेमें वरमाला पहिनाई। दोनोंका विवाह बड़े उत्साह और ठाठसे हो गया।

कुछ वर्षोंतक नल-दमयन्तीके दिन बड़े आनन्दसे कटे। इस अवसरमें उन्हें एक पुत्र और एक कन्या भी हुई। परन्तु उनका उत्कर्ष देख, देवता मन ही मन कुढ़ा करते थे। क्योंकि स्वयंवरमें दमयन्तीके नलको वरनेसे देवताओंका अपमान हुआ था। उसका बदला लेनेके विचारसे देवोंने कलिको भेजा। कलिने नलके चचेरे भाई पुष्करके शरीरमें प्रवेश किया। नलको द्यूतका बड़ा व्यसन था। कलि-प्रभावसे पुष्करके साथ द्यूत खेलकर नल अपना सब राजपाट हार गये। एक धोतीसे नलको पुष्करने राज्यसे खदेड़ दिया और घोषणा कर दी कि,—"नलका राज्य मेरा है। अब जो नलको सहायता देगा, उसे मैं अपना शत्रु समझ कठोर दण्ड दूँगा।" नल विपत्तिमें पड़ गये।

पुत्र और कन्याको ननिहालमें भेजकर नल वनकी ओर चले।

दमयन्तीसे वनके कष्टोंको समझा कर, नैहर चले जानेका नलने बहुत अनुरोध किया, पर वे सच्ची पतिव्रता थीं, पतिको कब छोड़ सकती थीं? वे नलके साथ हो लीं।

क्षुधा-तृषासे व्याकुल दम्पती, वनके कठिन कष्टोंको सहते हुए जा रहे थे, इतनेमें उन्हें सोनेके पंखके कुछ पक्षी देख पड़े। उन्हें पकड़कर खानेके विचारसे नलने अपनी धोती उनपर फेंकी। उस धोतीको लेकर पक्षी यह कह कर उड़ गये कि,—"राजा हम द्यूतके पासे हैं। तुम्हारा सर्वस्व हरण करनेपर भी एक धोती तुम्हारे शरीरपर रह गयी, सो हमसे नहीं देखी गयी; इससे यह हम ले जाते हैं।" नल नङ्गे हो गये। यह देख, दमयन्तीने अपनी आधी साड़ी फाड़कर उन्हें पहिननेको दी। आगे चलकर सरोवरसे कुछ मछलियाँ पकड़कर घास फूसमें भूंजनेके लिये नलने दमयन्तीको दीं और वे नगरमें अन्न खोजने चले गये। दिनभर भटक कर सन्ध्या समयमें नलको एक परोसी पत्तल मार्गमें पड़ी मिली। उसे उठाकर वे ले आ रहे थे कि, ऊपरसे चीलने आकर पत्तल छीन ली। भातके कुछ दाने नलकी मोछोंपर गिर गये। उदास हो, नल लौट आये। इधर दमयन्तीने मछलियाँ भूँज रक्खीं। परन्तु ज्यों ही उन्हें उठा कर वे पत्तेमें लपेटने लगीं, त्यों ही सब मछलियाँ जीकर जलमें जा गिरीं। क्योंकि दमयन्तीकी अँगुलीमें अमृत था, उसीने इस समय विषका काम किया। नल समझे, दमयन्ती मछलियाँ खा गयीं और दमयन्ती समझीं, जब कि, नलकी मोछोंमें भात लगा है, तब ये भोजन कर चुके। पर दोनों भूखे थे। वहाँसे चलकर, दोनों रातभरके लिये एक राजाके घर जा टिके। जहाँ वे टिके थे, वहाँकी एक खूँटीपर रत्नहार लटक रहा था और पास ही भींतपर काजलका मोर लिखा था। रात्रिमें दोनों देखते क्या हैं कि, काजलका मोर उस रत्नहारको निगल गया। इसकी सूचना दोनोंने

सन्तरीको दी। राजाने उन दोनोंको चोर समझा और रातमें ही मारपीट कर भगा दिया; क्योंकि काजलके मोरका रत्नहार निगल जाना किसीको सम्भव नहीं जान पड़ा। दोनों पुनः मध्यरात्रिमें जङ्गलमें आकर थके हुए और भूख प्याससे व्याकुल होनेके कारण तुरन्त सो गये।

बहुत समझानेपर भी दमयन्ती मायके नहीं जातीं, यह देख नलने दमयन्तीको छोड़ जानेका निश्चय किया। मनमें यह सोचा कि, जब ये मुझे नहीं पायँगीं, तो आप ही नेहर चली जायँगीं और मैं अकेला ही कष्ट सहूंगा। नल, दमयन्तीको छोड़ चल दिये। प्रातःकालमें दमयन्तीकी जब आँख खुली और उन्होंने नलको नहीं पाया, तब वे बड़ा विलाप करने लगीं। नलको खोजती हुई वे इधर उधर भटक रही थीं, इतनेमें एक अजगरने उन्हें पकड़ लिया। इससे छुड़ानेके लिये वे रोती चिल्लाती थीं। उनकी चिल्लाहट सुन, अनायास वहाँ एक व्याध आया और उसने अजगरको मार दमयन्तीको छुड़ा लिया। एक संकटसे छूट, वे दूसरे संकटमें पड़ीं। उस व्याधने उनपर बलात्कार करनेकी इच्छा की। दमयन्तीने पतिचरण और भगवान्‌का स्मरण कर कहा,—"यदि मैं सच्ची पतिव्रता होऊँ, तो यह व्याध मर जाय!" पातिव्रत्यके प्रतापसे व्याध मर गया।

चेदि देशकी ओर व्यापारियोंका एक दल आ रहा था, उसके साथ दमयन्ती चल पड़ीं। परन्तु दुर्भाग्यवश रात्रिमें वनहाथियोंके झुण्डने सब व्यापारियोंको कुचलकर मार डाला। अब दमयन्ती अधिक घबड़ायीं। प्रभातमें उन्हें कुछ वेदपाठी ब्राह्मण मिले। उन्होंने चेदिदेशमें उन्हें पहुँचा दिया। जब वे चेदिदेशाधिपति सुबाहुकी विशाल नगरीमें आकर राजमन्दिरकी ओर चलीं, तो एक वस्त्रसे होनेके कारण मार्गके लड़के उनके पीछे लगे। किसी

प्रकार राजभवनमें पहुंच कर वे रानी सुनन्दासे मिलीं। रानीने उन्हें दासीरूपमें अपने पास रख लिया।

इधर नल वनमें भटक रहे थे। उन्होंने एक ओर देखा कि, दावानल जल रहा है और सुना,—"हे पुण्यश्लोक नल! मुझे बचाओ।" कोई परिचित सज्जन अग्निमें जल रहा है, जान कर उसे बचानेके लिये नल अग्निमें घुसे। वहां नागाधिपति कर्कोटक जल रहा था। नारदको उसने किसी समय छकाया था, इससे मुनिका शाप हुआ कि,—"तू पाषाणकी तरह पड़ा रहेगा। हिल डोल नहीं सकेगा।" नलको उसकी दया आयी। उन्होंने उसे उठाकर निरापद स्थानमें रक्खा। इस उपकारके बदलेमें कर्कोटकने नलको तुरन्त काट खाया, जिससे नल बड़े कुरूप हो गये। इस विचित्र प्रत्युपकारका कारण पूछनेपर कर्कोटकने कहा कि,—"राजन्! मैंने विषके दाँतोंसे आपको नहीं काटा है। केवल आपका रूप बदलनेके लिये यह काम किया है। अब आपको कोई पहचान नहीं सकेगा। आप अयोध्याके राजा ऋतुपर्णके पास जाकर उसके सारथी होकर रहें और उसे अश्वविद्या सिखलाकर उससे अक्ष-विद्या (द्यूत) सीख लें। जैसे आप अश्व-विद्यामें कुशल हैं, वैसा ही वह अक्ष-विद्यामें निपुण है। जब आपके कुदिन फिर जायँगे और आपको पूर्वरूप पानेकी आवश्यकता होगी, तब मैं देता हूँ, इन दो वस्त्रोंको पहिन कर मेरा स्मरण कीजियेगा। तत्काल आप पहिले जैसे हो जायँगे।" नल ऋतुपर्णके यहाँ रहने लगे। उन्होंने अपना नाम 'बाहुक' रख लिया।

दमयन्तीके पिता विदर्भपति भीमको जब नल-दमयन्तीके राज्य-हरणका पता लगा, तब उन्होंने कन्या और जामाताको खोजनेके लिये देश देशान्तरोंमें अनेक दूत भेजे। 'सहदेव' नामक ब्राह्मणसे उन्हें पता लगा कि, दमयन्ती चेदि देशकी रानीके पास हैं। भीमने

सेवक भेज कर उन्हें बुला लिया। जब सुनन्दा भी जान गयी कि, यह मेरी बहिनकी पुत्री है, तब उसे बहुत आनन्द हुआ। उसने भाँजीका बड़ा आदर किया।

दमयन्तीके विदर्भ पहुंचनेपर 'पर्णाद' नामक ब्राह्मणसे उन्हें पता लगा कि, नल ऋतुपर्णके यहाँ हैं। बहुत विचार कर नलको बुलानेकी एक युक्ति सोची गयी। भीमने घोषणा करा दी कि, दमयन्ती पुनः स्वयम्वर करेगी। जब इस समाचारको लेकर दूत ऋतुपर्णके पास पहुंचा, तब स्वयम्वरकी अवधि केवल एक दिनकी रह गयी थी। ऋतुपर्णके पूछनेपर वाहुकने एक दिनमें विदर्भ पहुंचा देनेकी प्रतिज्ञा की। रथमें बैठकर दोनों विदर्भकी ओर चले। आकाशमें उड़नेवाले पक्षीकी तरह रथका वेग देखकर ऋतुपर्ण बड़े प्रसन्न हुए और वाहुकसे अश्वविद्या सीखने और इच्छित पुरस्कार माँगनेके लिये कहने लगे। दोनोंमें विद्या-विनिमय हुआ। अर्थात् ऋतुपर्णने नलसे अश्वविद्या और नलने ऋतुपर्णसे अक्षविद्या सीख ली। दोनों आनन्दसे एक दिनमें ही विदर्भ पहुंच गये।

स्वयम्वर यज्ञ आरम्भ हुआ। नल-दमयन्तीकी इतनी दुर्दशा करनेपर भी देवताओंको सन्तोष नहीं हुआ। दमयन्तीके पाति-व्रत्यकी परीक्षा लेनेकी उनकी साध अब भी नहीं मिटी। इन्द्रादि सब देवता नलका रूप धारण कर स्वयंवरमें आ डटे। कर्कोटकके वस्त्रों और स्मरणके प्रतापसे नल भी पहिले जैसे हो गये थे। वर-माल लेकर जब दमयन्ती मण्डपमें आयीं, तब अनेक नलोंको देख, चकरा गयीं। उनकी विचारी हुई युक्ति विफल हुई, जान कर करुणासे उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये। सौभाग्यकी अधिष्ठात्री देवता जगदम्बा गौरीकी मन ही मन स्तुति कर उन्होंने कहा,—"मा! यदि मैं काया, वाणी और मनसे सच्ची पतिव्रता होऊँ, तो

मुझे मेरे सच्चे पतिदेवको पहिचनवा दीजिये।” सच्चे नलके पीछे खड़ी हुई तेजोमयी जगज्जननीकी मूर्ति दमयन्तीको देख पड़ी। नलके गलेमें उन्होंने वरमाल पहिना दी। देवता बड़े फिट्टे पड़े। सबने दमयन्तीके पातिव्रत्यको मुक्तकण्ठसे सराहा। सबने दमयन्ती-का जयजयकार किया।

इस घटनासे कलि बड़ा घबड़ाया। वह प्रकट होकर नलके आगे हाथ जोड़, काँपता हुआ खड़ा रहा। नल उसे शाप देना चाहते थे, किन्तु देवताओंके समझानेसे उन्होंने ऐसा नहीं किया। केवल उसे यही आज्ञा दी कि,—“तुम वेश्या, मद्यालय, जुआड़ी और चोरोंके घर रहा करो। सज्जनोंको भूल कर भी कष्ट नहीं देना।” देवताओंने नल-दमयन्तीसे क्षमा माँगी और कहा,—“मछलियाँ, पक्षी, चील, काजलका मोर आदिके रूपमें हम ही आपकी परीक्षा लेने आये थे। आप और सती दमयन्ती दोनों परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हो। आजसे आप ‘पुण्यश्लोक’ कहावेंगे और दमयन्ती पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ कहावेंगीं।” स्त्री, पुत्र कन्यासे मिल-कर राजा नल अत्यन्त आनन्दित हुए। अक्षविद्याके प्रभावसे पुष्करसे उन्होंने अपना राज्य लौटा लिया। सब दुःख दूर होकर वे आनन्दसे रहने लगे। उनके राज्यमें आनन्दकी वर्षा होने लगी।

कठिनसे कठिन विपत्ति पड़नेपर भी राजपुत्री दमयन्तीने पतिका साथ नहीं छोड़ा और पातिव्रत्यके तेजसे दुष्टोंसे आत्मरक्षा कर, अन्तमें देवताओंको भी विफल-मनोरथ कर, निज पति प्राप्त किया था। दमयन्तीके चरित्रसे हमारी बहिनोंको पातिव्रत्य तथा पतिदेवके लिये कष्टसहिष्णुता और दृढ़ताकी समुचित शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

———०———

मदालसा।

—:*:—
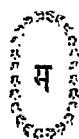
मदालसा विश्वावसु गन्धर्वकी कन्या थी। संसारकी सुन्दरियोंको गन्धर्व-कन्याओंकी उपमा देते हैं। फिर सर्वश्रेष्ट रूपवान् विश्वावसुकी कन्या मदालसाके रूपका कहना ही क्या है? उसके स्वरुपको देख, अप्सराएँ ही नहीं, किन्तु रूपकी खान इन्द्राणी भी लज्जित होती थी। मदालसा जैसी रूपवती थी, वैसीही असाधारण विदुषी भी थी। वह दर्शनशास्त्र और सब विद्या-कलाओंमें पारङ्गत थी, योगसाधनमें निपुण थी और नीति-शास्त्रको भली भांति जानकर काममें लानेवाली थी। विशेषतया वर्णाश्रम सदाचारादिके पालनमें निरन्तर निरत रहती थी। उसे आत्मानात्म ज्ञान पूर्ण रूपसे हो चुका था। वह अपना समय शास्त्राभ्यासमें ही विताती थी। एक दिन मदालसा अपनी वाटि-कामें खेल रही थी कि, उसके रूपपर मुग्ध हो, पातालका दैत्य-राजा पातालकेतु उसे चुपकेसे उठा ले गया। यद्यपि उसने उसे स्वर्णरत्नोंसे सजे सुरम्य प्रासादमें बड़े सुखसे रक्खा था, तथापि वह उसकी बन्दीमें पड़ी पड़ी व्याकुल हो उठी। नीच दानव उससे विवाह करना चाहता था, पर वह उसका मुख भी नहीं देखना चाहती थी। एक दिन तो निराश हो, वह आत्महत्या करनेको उद्यत हुई, परन्तु भगवती सुरभिने प्रकट हो, उसका हाथ पकड़ लिया और कहा,—"पुत्रि! घवड़ाओ नहीं। शीघ्र ही एक महा-पराक्रमी राजकुमारके हाथों यह दुष्ट मारा जायगा और उसीसे तुम्हारा विवाह होगा। वह तुम्हारे अनुरूप वर है।" मदालसा उस राजपुत्रके आनेकी वाट जोहती हुई दिन काटने लगी।

पातालसे कई दैत्य भारतवर्षमें आकर अनेक रूप धारण कर ऋषि-मुनियोंको बहुत कष्ट दिया करते थे। एक दिन गालव मुनि असुरोंके अत्याचारोंसे बहुत उद्विग्न हो, ब्रह्माकी स्तुति करने लगे। स्तुतिसे प्रसन्न हो, ब्रह्माने 'कुवलय' नामका एक घोड़ा मुनिको लाकर दिया और कहा,—"यह घोड़ा स्वर्ग आकाश, पाताल सबभर जा सकेगा और दिन रात चलकर भी थकेगा नहीं। इसे लेकर आप जम्बुद्वीपके राजा महाबली शत्रुजित्‌के पास जाइये। उस राजाके पुत्र ऋतुध्वज इसपर चढ़कर पाताल-विजय कर आवेंगे और असुर-संहार कर, ऋषि-मुनियोंके आश्रम निरापद करेंगे।"

ऋतुध्वज बड़े सुन्दर, पराक्रमी और वीर पुरुष थे। पिताकी आज्ञासे गालवमुनिके दिये हुए घोड़ेपर सवार हो, वे पाताल पहुंचे। वहीं मदालसासे उनकी भेंट हुई। पातालकेतु आदि दैत्योंको मार कर उन्होंने मदालसाको छुड़ाया और स्मरणगामी गन्धर्वोंके पुरोहित तुम्बरूको बुलाकर मदालसासे विवाह कर लिया। नव वधू सहित लौट आये हुए विजयी पुत्रको देख शत्रुजित्, महारानी सहित बड़े प्रसन्न हुए। दोनोंने उन्हें गले लगा लिया।

मदालसा और ऋतुध्वज रति-मन्मथके समान सुन्दर, मैत्रेयी-बृहस्पतिके समान विद्वान् और लक्ष्मी-नारायणके समान श्रीमान् होनेपर भी दोनोंको रूप, विद्या अथवा धनका गर्व नहीं था। शास्त्रोंके विभिन्न विषयोंपर दोनों चर्चा करते और एक दूसरेके ज्ञानसे मुग्ध हो जाते थे। दोनों ऊँचे ज्ञानमें डूबे हुए होनेपर भी काव्य, संगीत, शस्त्रचालन आदि ललित कलाओंके भी मर्मज्ञ थे। इस जोड़ेको देख, नगरके स्त्री-पुरुषोंको बड़ा सन्तोष होता था और वे दोनोंको हृदयसे आशीर्वाद देते थे।

बहुत दिन उनके इस प्रकार आनन्दसे कटनेपर एक दिन शत्रुजित्‌ने ऋतुध्वजसे कहा कि,—"तुम एक बार फिर पृथ्वी-

प्रदक्षिणा कर देख आओ कि, कहीं ऋषि-मुनियोंको कष्ट तो नहीं है।" ऋतुध्वज पिताकी आज्ञासे 'कुवलय' पर चढ़, चारों दिशाओंमें घूम आये। सर्वत्र शान्ति थी, कहीं दानवोंका उपद्रव उन्हें देख नहीं पड़ा। घर लौटते समय यमुनातटपर बैठा हुआ उन्होंने एक मुनि देखा। दोनोंमें इधर उधरकी बहुत बातें होनेपर मुनिने कहा,—"राजकुमार! मैंने एक यज्ञ किया है। उसकी दक्षिणाके लिये मेरे पास, धन नहीं है। यदि तुम अपना यह गलेका हार दे सको, तो मैं ब्राह्मणोंकी दक्षिणा चुका दूं।" ऋतुध्वज ब्राह्मणभक्त तो थे ही, तुरन्त उन्होंने अपना हार उतार दिया। मुनिने आश्रम-रक्षार्थ कुछ समय तक उन्हें वहीं बैठे रहनेको कहा। वे मुनिकी आज्ञाको शिर चढ़ा कर आश्रममें बैठे रहे और मुनि यमुनामें डुबकी मारकर अदृश्य हो गया।

वह मुनि सच्चा मुनि नहीं, किन्तु कपट मुनि था; पातालकेतुका सहोदर भाई तालकेतु था; जो अपने भाईके वधका ऋतुध्वजसे बदला चुकानेपर तुला हुआ था। राजपुत्रसे कण्ठा लेकर वह सीधा उनके घर शत्रुजित्के पास गया और बोला—"राजन्! दुःखकी बात है कि, ऋतुध्वज दानवोंके हाथों मार डाले गये। बड़ी वीरतासे बहुत समय तक लड़े, पर अन्तमें अकेले लड़ते लड़ते थक गये और कालके कवल बने। मुझे यह हार देकर उन्होंने आपसे मृत्यु-समाचार कहने यहाँ भेजा है कि, नश्वर संसारका विचार कर आप दुःख न करें, मदालसाको भी समझावें और यह अपना हार ले लें। मैं अपने पास रखकर इसको क्या करूँगा।" मुनि चला गया। राजा-रानीके दुःखकी सीमा न रही। वृद्ध दम्पतीकी मानो अन्धेकी लकड़ी छिन गयी। मदालसा तो इस समाचारके सुनते ही मूर्छित हो गयी और थोड़े ही समयमें उसके प्राण देहसे कूच कर गये। राज्य भरमें दोनोंकी मृत्युके सम्वादसे हाहा कार-

मच गया। कपटमुनि आश्रममें पहुंचा। ऋतुध्वज घर लौटे। नगरमें उन्हें आते देख, प्रजामें आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा। राजारानी भी पुनः पुत्र-प्राप्तिसे फूले नहीं समाते थे। ऋतुध्वजने जब सारी कथा सुनायी, तब सब जान गये कि, यह तालकेतुका ही कपट था। सब कुछ हुआ, पर मदालसाके अकालिक देहावसानका काँटा राजा-रानी, विशेषतया ऋतुध्वजके हृदयमें चुभता ही रहा। वे सदा अनमनेसे रहते थे, पर करते क्या? मृत मनुष्यका लौट आना असम्भव था।

पृथ्वी-प्रदक्षिणाके प्रवासमें ऋतुध्वजकी नागलोकके राजा नागराजके दो कुमारोंसे घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी। दोनोंको ऋतुध्वजने अपने पास बुला लिया और उनके साथ वे साहित्य-सङ्गीतकी चर्चामें दिन बिताने लगे। कुछ दिनोंके पश्चात् जब नागकुमार घर गये, तो उनसे उनके पिताने पूछा,—"मृत्युलोकके एक राजकुमारसे तुम्हारी मित्रता हुई है। इसीसे बार बार तुम मृत्युलोकमें जाते हो; परन्तु यह तो कहो कि, तुमने अपने मित्रको प्रेमके उपहारमें क्या दिया?" कुमारोंने कहा,—"पिताजी! हमारे मित्र ऋतुध्वजके पास ऐसे ऐसे धन रत्न आदि हैं कि, उनके आगे पातालकी सब सम्पत्ति तुच्छ है! हम उसे दे ही क्या सकते हैं? उसे कोई अपेक्षा भी नहीं है और जो अपेक्षा है, वह हम पूरी नहीं कर सकते। उसकी स्त्री मदालसाका धोखेसे देहान्त हो गया है, जिसका लौट आना असम्भव है। उसीके बिना वह उदास रहता है।"

नागराजने कहा,—"कुमारो! पुरुषार्थियोंके लिये असम्भव कुछ भी नहीं है। उद्योग पूरा होना चाहिये। यदि तुम्हारी यही इच्छा है कि, ऋतुध्वजकी सहधर्मिणी पुनः उसे मिले, तो मैं यत्नकर वह उसे दिला दूँगा।" पिताके ये वचन सुन, दोनों कुमार बड़े प्रसन्न हुए।

इधर नागराज अपने भाई कम्बलके साथ सरस्वती देवीकी अराधनामें लग गये। जब देवी प्रसन्न हुई, तो उन्होंने उनसे सङ्गीत-विद्या माँग ली। सङ्गीत विद्या पाकर दोनों कैलाश पर्वतपर गये और वहाँ गा कर उन्होंने भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया। शङ्करके 'वरं ब्रूहि' कहनेपर उन्होंने वर माँगा कि,—"मदालसाका जितनी बड़ी अवस्थामें देहान्त हुआ था, वह उतनी ही बड़ी, उसी रूप-रङ्गकी, वैसी ही विद्याकलाओंमें प्रवीण होकर हमें प्राप्त हो।" शङ्करके "तथास्तु" कहते ही मदालसा वहाँ प्रकट हुई। दोनों शङ्करको प्रणाम कर, मदालसाको लेकर अपने लोकमें पहुंचे। वहीं उन्होंने ऋतुध्वजको बुलाकर प्रेमपूर्वक मदालसा अर्पण कर दी। मृत्युलोक और नागलोकमें इस घटनासे आनन्द बरसने लगा। शत्रुजित्, उनकी रानी, ऋतुध्वज, दोनों नागकुमार आदिके आनन्द-की सीमा न रही। सबने नागराज और कम्बलको कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम किया। नागलोक और मृत्युलोकमें प्रेमसम्बन्ध स्थापित हुआ।

कुछ कालके उपरान्त ऋतुध्वजको चार पुत्र हुए। जिनके नाम रक्खे गये,—सुबाहु, विक्रान्त, शत्रुमर्दन और अलर्क। पहिले तीन पुत्र जब पढ़ लिख चुके, तो मदालसाने उन्हें अध्यात्म विद्याका ऐसा उपदेश दिया, जिससे वे गृहस्थी त्याग कर बिना विवाह किये वनमें तपस्या करने चले गये। अलर्कके सुयोग्य होने पर उसे भी मदालसा वेदान्त-वैराग्यका उपदेश करने लगी। यह देख, ऋतुध्वजने कहा,—"प्रिये! तुम्हारे उपदेशसे तीन पुत्र वैरागी हो गये। यदि इसे भी वैरागी बना दोगी, तो राज्य कौन करेगा और प्रजाका सुख दुःख कौन देखेगा? मेरा कहना मानो, तो इसे व्यवहारकी शिक्षा दो।"

मदालसाको प्रथम पुत्र हुआ, उसी समय शत्रुजित् और उनकी

रानीका देहान्त हो गया था। उनके पश्चात् बहुत वर्षों तक ऋतुध्वजने योग्यताके साथ राज्य किया। जब अलर्क राज्य सम्हालने योग्य हुआ, तो मदालसा और ऋतुध्वज भी उसे राजगद्दीपर बैठाकर तपके हेतु वनमें चले गये। मदालसाने अलर्कको राजनीति, वर्णाश्रम, सदाचार आदिकी ऐसी अच्छी शिक्षा दी थी कि, उनके राजत्वकालमें विना युद्धके कितने ही राजा माण्डलिकरूपसे उनकी अधीनतामें हो गये और क्रमशः उनकी सार्वभौम सत्ता स्थापित हुई। उनके राज्यमें दुःखका नाम भी न रहा। अलर्क राज्यकार्य्यमें इतने अधिक रम गये कि, आत्मानात्म विचार करनेको उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता था।

अलर्कको पुत्र-पौत्र हुए। सर्वत्र उनकी कीर्तिकौमुदी फैली। उनकी असीम धन सम्पत्तिको देख, कुवेर भी लज्जित होता था। संसारमें उनके करने योग्य कोई कार्य नहीं बच रहा था। उन्होंने बहुतसे यज्ञ किये और अब उनकी अवस्था भी ढल गयी थी। तौ भी उनमें विषय-वैराग्य नहीं उपजा। यह देख, उनके भाई तपस्वी सुबाहुको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सोचा,—"अब तक अलर्क पर कोई सङ्कट नहीं पड़ा है। विना सङ्कटके मनुष्यको विराग नहीं होता। अतः ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे वह मीठे सङ्कटमें पड़े और उससे लाभ उठाकर आत्मोद्धार करले।"

सुबाहुने काशिराजके पास जाकर कहा कि,—"मेरा भाई अलर्क अकेला राज्य भोग रहा है, आप बलवान् हैं, कृपा कर आप बिचवई होकर हमारे पैतृक राज्यका बँटवारा कर दीजिये।" काशिराजने अलर्कसे आधा राज्य सुबाहुको देनेके लिये दूत द्वारा कहला भेजा, पर धमकीमें आकर राज्य दे देना अलर्कने राजनीतिके विरुद्ध समझा। उन्होंने उत्तर दिया कि,—"सुबाहु प्रेमपूर्वक मुझसे राज्य माँगे, तो मैं दे दूँगा।" सुबाहु सरलतासे राज्य क्योंकर मांगने लगे! विवश

हो, काशिराजने अलर्कके राज्यपर चढ़ाई कर दी। अलर्क बहुत दिनों तक वीरतासे लड़े, परन्तु हारते ही गये। इससे हताश हो वे सोच रहे थे कि, एकाएक उनको एक बातका स्मरण हो आया। मदालसा जब वनमें जाने लगी, तब उसने बन्द लिफाफेमें एक अनुशासन पत्र देकर कहा था कि, जब कोई भारी सङ्कट पड़े, तब इसको पढ़ना। तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा। अलर्कने इस समय उसे खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

"सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥
कामः सर्वात्मना हेयः त्यक्तुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यः सैव तस्यापि भेषजम्॥"

अर्थात् "सबका सङ्ग छोड़ दो। यदि नहीं छोड़ सकते, तो सत्सङ्ग करो। सब इच्छाओंको भी त्याग दो। यदि नहीं त्याग सकते, तो मोक्षकी इच्छा करो।" इस मातृ उपदेशसे अलर्ककी आँखें खुल गयीं। उनको अपने कल्याणका मार्ग सूझ गया। वे तुरन्त गुरु दत्तात्रेयकी शरणमें जा, उनसे उपदेश पाकर कृतार्थ हुए। उन्होंने समझ लिया कि,—"संसार मिथ्या है। परमात्माकी प्रेरणासे जगत्‌के सब कार्य्य होते हैं। मनुष्य तो केवल निमित्त-मात्र होता है। आत्मज्ञान ही सर्व श्रेष्ठ है।" जो अलर्क कुछ काल पहिले चिन्तातुर होकर घरसे निकले थे, वे ही सद्गुरुसे ज्ञानलाभ कर प्रसन्न चित्तसे घर लौट आये। उन्होंने काशिराजसे कहला भेजा कि,—"मुझे राज्यसे अब मोह नहीं रहा है। सुबाहु आकर आधा ही क्यों, मेरा सम्पूर्ण राज्य लेलें।"

इस सन्देशसे काशिराज आश्चर्यचकित हुए। सुबाहु भी अलर्कके हृदयमें वैराग्य उपजा है, जानकर प्रसन्न हुए। दोनों भाई गलेसे गले लगकर मिले। सबने अलर्कके ज्येष्ठ पुत्रको राज्याभिषेक

किया। अलर्क सुबाहुके साथ वनमें तप करने चले गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि,—

"अहो कष्टं यदस्माभिः पूर्वं राज्यमनुष्ठितम्।
इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम्॥"

अर्थात्—"दुःख है कि, आज तक मैं राज्यमें आसक्त था। अब मैंने जाना कि, योगसे बढ़कर कोई सुख नहीं है।"

बच्चोंका दुलार करनेवाली सहस्रों माताएँ हैं, परन्तु उनका पारलौकिक कल्याण चाहनेवाली मदालसा ही थी। बच्चोंके ऐहिक सुखकी अपेक्षा पारलौकिक सुखकी चिंता ही माताओंको विशेषरूपसे करनी चाहिये। यही शिक्षा मदालसाके चरित्रसे मिलती है।

सती अनुसूया।

अनुसूया सती-शिरोमणि थी। वैसी आदर्श सती न कोई हुई न होगी। सीता जैसी त्रिभुवन-पावनी सतीको भी अनुसूयाने सती धर्मका उपदेश दिया था।

सप्तर्षियोंमें अत्रि ऋषिका ऊँचा स्थान है। उन्हींकी पत्नी अनुसूया थीं। एक बार सौ वर्षों तक अनवर्षण हुआ, उस समय अत्रि समाधि लगा कर बैठे थे। जब उनकी समाधि उतरी, तो तृषासे व्याकुल हो, उन्होंने अनुसूयासे कहा कि,—"कहींसे पीने योग्य जल ले आओ।" अवर्षणके समयमें अनुसूया जल कहांसे लाती? वह इधर उधर बहुत भटकी, परन्तु उसे कहीं जल दिखायी नहीं दिया। तब उसने भागीरथीकी स्तुति की। सतीकी स्तुतिसे

भागीरथी प्रकट हुईं। उन्होंने मुनिकी तृषा शान्त की और जगत्का अवर्षण भी दूर किया।

अनुसूयाकी एक सखीका नाम नर्मदा था। वह अनुसूयासे वेदान्त और योग शास्त्रको पढ़कर दोनों विषयोंकी अत्युग्र साधनासे सदेह स्वर्ग पहुँच गयी और वहां देवोंसे वेदान्तकी चर्चा करती हुई समय बिताने लगी। एक दिन उसने देखा कि, उसके उठ जानेपर वह स्थान देवदूत धो डालते हैं। इसका कारण पूछने-पर उसे देवोंने कहा,—"यद्यपि तुम योगवलसे यहाँ पहुंच गयी हो, तथापि तुम्हारी देह अपवित्र है। क्योंकि भूल कर भी तुमने कभी पतिकी सेवा नहीं की, उलटे अपने ही ज्ञानके घमण्डमें पतिकी उपेक्षा करती रहीं। स्त्रीशरीर पतिसेवासे ही पावन होता है। यदि तुम पुनः भूलोकमें जाकर पतिसेवा करो और पतिमें तन्मय हो कर यहाँ आओ, तो तुम्हारा उचित आदर हो सकता है।"

खिन्न होकर नर्मदा लौट आयी और अपने पतिकी सेवा तन मनसे करने लगी। नर्मदाका पति कौशिक बड़ा ही दुराचारी मूर्ख और कोढ़ी था। वह एक वेश्यापर आसक्त था। नर्मदा प्रतिदिन उसे पीठपर लादकर वेश्याके घर पहुंचा देती और सवेरे पुनः ले आती थी। एक दिन स्त्रीपर लदकर चले हुए कौशिकका पैर मार्गमें माण्डव्य मुनिको लगा। मुनिने तुरन्त शाप दिया कि, कौशिक सूर्योदयके पहिले मर जाय। यह सुन पतिपरायणा नर्मदाको बड़ा दुःख हुआ। उसने हृदयमें पतिका ध्यान कर, सङ्कल्प किया कि, यदि मैं सच्ची पतिव्रता होऊँ, तो सूर्योदय ही न हो। सूर्य्यदेव रुक गये, संसार अन्धकारमय हो गया। इन्द्र भयभीत हुए। सब देवता अनुसूयाके पास जाकर नर्मदाको समझानेकी प्रार्थना करने लगे। अनुसूयाने सखीको समझा कर कहा कि, सूर्यको तुम न रोको। मैं तुम्हारे पतिको जिला दूँगी। नर्मदाकी आज्ञासे सूर्योदयके होते

ही इधर कौशिकका देहान्त हो गया। अनुसूयाने पातिव्रत्यके प्रतापसे कौशिकको जिला दिया। नर्मदाका और उससे बढ़कर अनुसूयाका यश सबभर फैल गया। बहुत दिनोंतक दम्पती आनन्दसे रहे। अन्तमें नर्मदाके पुण्यसे कौशिकको भी स्वर्गलाभ हुआ। दोनोंका देवोंने यथोचित सत्कार किया।

एक बार नारदने उमा, रमा और सावित्री शिव, विष्णु और ब्रह्माजीकी स्त्रियोंसे अनुसूयाके पातिव्रत्यकी बड़ी प्रशंसा की। सो उनसे स्त्रीबुद्धिके अनुसार सही नहीं गयी। उन्होंने उसकी परीक्षा लेनेकी ठान ली। तीनोंने अपने अपने पतिदेवसे अनुसूयाकी परीक्षा लेनेको कहा। प्रथम तो ब्रह्मा, विष्णु, महेशने आनाकानी की; परन्तु स्त्री-हठकी मात्रा बढ़नेपर उन्हें विवश हो, सतीकी परीक्षा लेनेको जाना ही पड़ा। तीनों साधुका वेष बनाकर अत्रिके आश्रममें पहुंचे और अनुसूयासे इच्छाभोजन माँगने लगे। अनुसूयाने इच्छाभोजन देना स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह जानती थी कि, पतिव्रताके लिये संसारमें दुर्लभ कुछ भी नहीं है।

भोजनकी सामग्री सिद्ध होनेपर तीनोंने अनुसूयासे नग्न होकर परोसनेकी इच्छा प्रकट की। इस विचित्र इच्छाको सुन, अनुसूया सहम गई। उसे साधुओंपर सन्देह हुआ। उसने अन्तर्दृष्टिसे (पतिव्रताओंको अन्तर्दृष्टि होजाती है) देखा कि, ये तीनों साधारण साधु नहीं, साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। वह बड़े सोचमें पड़ी। यदि वह इच्छाभोजन नहीं देती, तो वचनभङ्ग होता है और देती है, तो सतीत्वभङ्ग होता है। इस दुविधेमें पड़कर उसने पतिचरणोंका स्मरण किया। उसे एक युक्ति सूझी। उसकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर एक बार तीनोंने उसे वर दिया था कि, "हम तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट होंगे।" उस वरका स्मरण दिलाकर अनुसूयाने हाथमें जल लेकर उनसे कहा,—"मैं यदि मन, कर्म और

वचनसे सच्ची पतिव्रता होऊं और यदि आपका वर-वचन सत्य है, तो आप तीनों मेरे बालक हो जायँ और मेरा स्तन्य पानकर अपनी इच्छा पूरी करें।" यह कहकर उनपर जल छिड़कते ही तीनों समान रूपके बालक हो, रोने लगे। अनुसूयाने तीनोंको गोदमें उठाकर आकण्ठ दुग्ध पान कराया। वह उन्हें पलनेमें सुलाकर गाती, नहलाती, खिलाती और बच्चोंके समान प्यार कर मन ही मन आनन्दित होती थी। यह देख अत्रि भी बड़े प्रसन्न होते थे। त्रिलोकीनाथ ब्रह्मा, विष्णु, महेश जिसकी कुटीको बालरूप धारण कर आलोकित करते हों, उस पतिव्रताकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है?

इधर ब्रह्मा, विष्णु, महेशके अपने अपने लोकमें न होनेसे जगत्‌का सृष्टि-स्थिति-प्रलयकार्य रुका, जिससे इन्द्रासन डोल गया और देव, दैत्य, मनुष्य, गन्धर्वादि व्याकुल हो गये। उधर सावित्री, रमा, उमा भी बहुत दिनों तक पतिदेवोंके लौट न आनेके कारण चिन्तामें पड़ गयीं। तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेशको ढूँढ़ने निकलीं। कहीं पता न पाकर उन्होंने नारदसे पूछा, क्योंकि नारद सर्वगामी हैं। नारदने कहा,—"मैंने पहिले ही कहा था कि, अनुसूया जैसी पतिव्रता त्रिभुवनमें नहीं है। आप उसकी परीक्षा लेने गयीं। अब लेनेके देने पड़े। जैसा किया, वैसा भोगो। करने गयीं कुछ और हुआ कुछ और ही। अनुसूयाके घर बालक बनकर आपके पतिदेव पलनेमें 'म्याउँ, म्याउँ' कर रहे हैं। यदि अनुसूयाको मना सको, तो उससे माँग लाओ, नहीं तो अपने सतीत्वके गर्वमें अपनासा मुँह लिये बैठी रहो।"

नारदके वचन-बाणसे विद्ध हो, तीनों अनुसूयाके पास गयीं और अपने अपने पति मांगने लगीं। अनुसूयाने कहा,—"वे पलनेमें आपके पति सोये हैं। पहिचान लो और ले जाओ।" तीनों देवोंके

रूप समान होनेसे अमुक ब्रह्मा हैं, अमुक विष्णु, इसका उन्हें ज्ञान नहीं हुआ। तब तीनोंने अनुसूयासे क्षमा मांग, ब्रह्मा, विष्णु, महेशको पूर्वरूपमें परिणत कर देनेकी प्रार्थना की। अनुसूयाने पातिव्रत्यके बलसे पुनः बालकोंपर जलसिञ्चन कर, पूर्वरूपमें परिणत किया। उमा, रमा, सावित्रीने प्रसन्न होकर अनुसूयाकी कृतज्ञतापूर्वक बड़ी प्रशंसा की और ब्रह्मा, विष्णु, महेशने भी उसे बहुत सराहा।

जब तीनों अपने अपने लोकको जाने लगे, तब अनुसूयाने हाथ जोड़कर कहा,—"प्रभो! आप जा रहे हैं, मेरा पुत्रहीन कुटीर सूना हो जायगा। आपने वर दिया था कि, 'हम तेरे पुत्र होकर रहेंगे' फिर ऐसे निष्ठुर क्यों हो रहे हैं?" इस पर तीनोंने कहा—"मा! यद्यपि जगत्‌के कार्यके लिये हमें जाना पड़ता है, तथापि अंशरूपसे हम तुम्हारे पास रहेंगे।" तीनोंने अपना अपना तेज एकत्र किया, जिससे एक तेजोमयी मूर्ति बनी। जिसके तीन मुख और छः हाथ थे। उस बालमूर्तिको अनुसूयाके उठाते ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी दी हुई होनेके कारण 'दत्त' और अत्रिकी सन्तान होनेके कारण 'आत्रेय' नामसे वह मूर्ति अभिहित हुई। आगे चलकर लोग उसे 'दत्तात्रेय' कहने लगे। इन्होंने ज्ञानोपदेशसे त्रिभुवनका उद्धार किया था। वैराग्यकी महिमा इसी अवतारके द्वारा भूलोकपर फैली। ये स्मरणगामी हैं, स्मरण करते ही दत्तात्रेय भक्तोंकी सङ्कल्पसिद्धि करते हैं।

कहीं ऐसा भी लिखा है कि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपना वरदान पूर्ण करनेके लिये अनुसूयाके उदरसे ही उत्पन्न हुए। ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय और शिवके अंशसे दुर्वासा हुए। तीनों अत्रिके ही पुत्र कहाते हैं। जो हो, नर्मदाके चरित्रसे स्पष्ट होता है कि, चाहे कोढ़ी या चरित्रहीन ही पति

क्यों न हो, उसकी सेवासे पतिव्रता सूर्यकी गतिको भी रोक सकती है। अनुसूयाके सतीत्वकी तुलना ही नहीं है। अवर्षणमें भागीरथी-को प्रकट कर जगत्को सुखी करना, मृत कौशिकको जिला देना, उमा, रमा, सावित्रीका गर्व खर्व करते हुए सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारी ब्रह्मा, विष्णु, महेशको भी बालक बना लेना, ये एकसे बढ़कर एक घटनाएँ पातिव्रत्यकी महिमाको उज्वल करती हैं। हमारी आर्य बहिनें—जिनके रक्तमें ही सतीभाव भरा है—यदि चाहें, तो नर्मदा या अनुसूया बन सकेंगी, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है।

सती सुकन्या।

भगवान् वेदव्यास राजा जनमेजयसे कहते हैं, राजन्! एक समयमें वैवस्वत मनुका पुत्र राजा शर्याति बहुत ही प्रसिद्ध था। उसे बहुतसी स्त्रियाँ थीं, परन्तु सन्तान केवल एक रूप-गुण-सम्पन्न 'सुकन्या' नामकी कन्याके अतिरिक्त और कुछ नहीं था। एक दिन राजा शर्याति अपनी स्त्रियोंके साथ एक सुन्दर सरोवरमें जलक्रीड़ा करनेके लिये गया। वहाँका दृश्य बहुत ही मनोहर था। सरोवरके चारोंओरकी स्वाभाविक शोभा कदम्ब, कदली, निम्बू, आम, अशोक, अमरूद, दाख, बेला, मालती, चमेली आदि अनेक वृक्ष एवम् लताकुञ्जोंसे और भी बढ़ गई थी। सुकन्या बाल्यावस्थाकी स्वाभाविक चपलताके कारण वहांकी उस वनशोभाको देखती, फूल पत्तियोंको तोड़ती और वृक्षलताओंसे खेलती हुई अपनी सहेलियोंके साथ बहुत दूरके एक मिट्टीके टीलेके पास जा पहुंची। भृगु ऋषिके पुत्र महात्मा च्यवन इसी वनमें

जगदम्बाका ध्यान करते हुए एकाग्र चित्तसे समाधि लगाकर बैठे थे, परन्तु उनको समाधि लगाये बहुत काल बीत चुका था, इससे उनके शरीरपर लताओंसे वेष्टित एक वल्मीकशिखर बन गया था, वही यह टीला था। सुकन्या खेलती हुई टीलेके पास आकर क्या देखती है कि, टीलेके नीचे लताओंकी जड़ोंके पास झुरमुटके मध्यमें दो छेद हैं और उनसे प्रकाश आ रहा है। यह क्या आश्चर्य है! इस बातको जाननेके लिये उसने एक तीखा कांटा लेकर दोनों छेदोंमें भोंक दिया, जिससे च्यवन ऋषिकी दोनों आँखें फूट गईं। च्यवन ऋषिने उसे इस कामके करनेसे रोका था, परन्तु एक तो वे टीलेके भीतर थे और दूसरे तपश्चर्यासे उनकी आवाज क्षीण हो गयी थी, इससे उनके शब्दोंको सुकन्या सुन न सकी।

यद्यपि सुकन्या फिरसे खेलकूदमें लग गयी, तथापि उसके मनमें उसी बातके विचार बार बार आ रहे थे। वह सोचती थी, मैंने किसी महात्माको कष्ट तो नहीं पहुंचाये? मैंने किसी जीवकी हिंसा तो नहीं की? जो हो, देखा जायगा। च्यवन ऋषिकी आंखें फूट जानेसे उनकी वेदनायें असह्य हो उठीं, पर क्या करें? मन ही मन जलकर रह गये। सुकन्या अपने स्थानपर आकर क्या देखती है कि, उसके पापसे राजा (पिता) दल-बल सहित रोगग्रस्त हो गया है। जांच करनेसे मालूम हुआ कि, च्यवन ऋषिका किसी दुष्टने छल किया है, इसीसे यह राग फैला है। परन्तु सैन्यके हरएक सैनिकसे पूछनेपर भी किसीने अपराध स्वीकार नहीं किया। अब क्या करना चाहिये? राजा इसी सोचमें था कि, इतनेमें अपने कियेको समझ और दल-बल सहित राजाको दुःखित दशामें देख, पछताती हुई सुकन्या राजाके आगे आकर हाथ जोड़कर बोलीः—"महाराज, जहाँतक मैं समझती हूं, इस अपराधका कारण यह अभागिनी

आपकी कन्या ही हुई है। आज मैं बगीचेमें खेलती थी। वहाँपर मैंने एक टीलेके नीचे दो प्रकाशमय छेद देख कर उन्हें जाँचनेके लिये उनमें एक काँटा छेद दिया। बस, प्रकाश बन्द हो गया परन्तु काँटा निकलने पर मैंने देखा कि, उसमें पानी लगा था और साथ ही साथ छेदोंसे हलकीसी और अस्पष्ट 'आह!' 'हाय हाय!!' की ध्वनि आई थी। मैं समझ न सकी कि, यह क्या है? परन्तु अब मालूम हुआ कि, वे महात्मा च्यवन ही थे।"

यह बात सुन, राजा शीघ्र ही उस स्थानपर गया और उसने टीलेको साफ करवाकर महात्माको प्रणाम किया तथा नम्रतासे कहा कि,—"हे तपस्विन्! यह अपराध मेरी कन्यासे हुआ है, पर उसने यह काम जानबूझकर नहीं किया है। महात्मा उदारचेता, शान्त एवम् अक्रोध हुआ करते हैं, फिर आपने उसपर रुष्ट होकर हम लोगोंको क्यों कष्ट पहुंचाये? बालकोंके अपराधोंपर आपको क्षमा करना उचित है।" महात्मा च्यवन बोले,—"राजन्! मैं कभी क्रुद्ध अथवा रुष्ट नहीं होता और न मैंने शाप ही दिया है। मुझ निरपराधको दुःख पहुंचाया, उसी पापका यह फल है! अब मैं अन्धा हूँ। जबतक मेरी सेवा करनेके लिये मेरे पास दूसरा कोई न होगा, तबतक मैं तप कैसे कर सकूंगा? इस लिये इस कामके लिये तुम अपनी कन्या मुझे प्रदान करो, इससे तुम्हारा रोग छूट जायगा।" इस बातको सुनकर राजाको बड़ा दुःख हुआ और वह चिन्ता करने लगा। जब यह बात सुकन्याने सुनी, तब वह राजासे कहने लगी,— "पिताजी, आप कुछ चिन्ता या दुःख न करें। आप आनन्दसे मुनिको कन्यादान करें, मैं परम भक्तिसे उनके पवित्र चरणोंकी सेवा करूँगी।" विवश हो, राजाको अपनी कन्या ऋषिके चरणोंपर अर्पण करनी पड़ी, परन्तु इकलौती कन्या अन्धपतिको अर्पण कर दी, इस बातको सोचकर वह व्याकुल रहा करता था।

मुनिने जबसे सुकन्याका पाणिग्रहण किया, तबसे वह पतिव्रत धर्मसे रहने लगी। वह प्रतिदिन पतिके लिये पूजा, अग्निहोत्र आदिकी सामग्री तैयार करती, पतिको पहिले खिला पिलाकर और उत्तम आसनपर बैठाकर फिर उसकी आज्ञासे आप भोजन करती, मृदु शय्यापर उसे लेटा कर स्वयं पादसेवा करती हुई उससे पति-व्रताका धर्म पूछती और जब वह सो जाता, तब सोती और उसके उठनेसे पहिले उठती थी।

इसी प्रकार कुछ दिन बीतनेपर एक दिन क्रीड़ा करते हुए सूर्यके दो पुत्र—अश्विनीकुमार-च्यवनमुनिके आश्रमके निकट आ निकले। उस समय सुकन्या स्नान कर आश्रमकी ओर जा रही थी। सुकन्या परम सुन्दरी थी। उसका वह अद्वितीय रूप देखकर वे दोनों उसपर मोहित हो गये। उन्होंने उसका परिचय पूछकर उससे कहाः—"सुन्दरि, तुमने अन्ध पतिको स्वीकार कर अपने रूप और यौवनको मिट्टीमें मिला दिया है। इसलिये इन ईश्वरदत्त गुणोंका पूर्ण उपभोग लेनेके हेतु उसे छोड़कर तुम हम दोनोंमेंसे जिसे चाहो उसे वर लो।" इन बातोंको सुनकर सुकन्या घबरा गई और लज्जावनत होकर क्रोधसे बोलीः—"महात्माओं! जो स्त्रियाँ कुलवती हैं, वे अपने पतिको छोड़ दूसरेकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखतीं। तुम देवताओंके अंश हो, पतिव्रताधर्म जानते हो, फिर ऐसी बातें मुझसे क्यों करते हो? यदि तुम अपना भला चाहो, तो अभी यहाँसे चले जाओ, नहीं तो शाप देकर भस्म कर डालूँगी"।

उसकी क्रोधभरी बातें सुन, शापके भयसे भयभीत होकर उन्होंने कहाः-"पतिव्रते! तुम्हारे पतिव्रत धर्मको देखकर हम प्रसन्न हुए हैं। इसलिये हम तुम्हारे पतिको अपने ऐसा रूपवान् और तरुण बना देंगे। फिर तीनोंमेंसे तुम जिसे चाहो, वरलो।" सुकन्याने इस बातको अपने पतिसे कहा और उनकी आज्ञा पाकर सूर्यपुत्रोंका

कहना स्वीकार कर लिया। पश्चात् च्यवन ऋषिके साथ सूर्य्यकुमारों-के स्नान करते ही तीनों एकसे सुन्दर, सुडौल और तरुण हो गये। तीनोंने कहा कि, अब तुम जिसे चाहो, वरलो। सुकन्याने जब तीनों-को एकसा देखा, तब पहिले तो वह भयभीत हुई, परन्तु जब उसने जगदम्बाका स्मरण कर कहा कि,—"मा, अब मैं घोर संकटमें हूं, इस समय तुमही मेरे पतिव्रतकी रक्षा कर सकती हो।" तब जगदम्बाकी कृपासे उसे अन्तर्ज्ञान हुआ और उसने च्यवनको ही ग्रहण किया। च्यवनने प्रसन्न होकर सूर्यकुमारोंसे इस उपकारके बदले वर मांगने-को कहा। तब उन्होंने कहाः—"हम वैद्य हैं, इसलिये मेरु पर्वतपर किये जानेवाले ब्रह्मदेवके यज्ञमें सोमपानके लिये अयोग्य ठहराये गये हैं। तो कृपाकर आप हमें सोमपानके अधिकारी बना दें।" इसपर च्यवनमुनिने उन्हें उस अधिकारको प्राप्त करा देनेका अभि-वचन दे दिया।

इधर शर्याति एकदिन अपनी स्त्रीके साथ सुकन्या और च्यवनका हाल जाननेके लिये आश्रममें आया और देवकुमार-के समान च्यवनके साथ सुकन्याको विहार करते देख, उसे अपने किये पर बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। अंध और वृद्ध वरको कन्या-प्रदान करनेके कारण वह अपने आपको दोष देने लगा। उसके मनमें कन्या और दामादके विषयमें अनेक कुतर्क उत्पन्न होने लगे। उसके मनमें यह भी शंका उत्पन्न हुई कि, इसने अपने वृद्ध पतिको मारकर दूसरे पतिको वर लियां है।

मातापिताकी यह शंकित दशा देखकर सुकन्याने सब सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी कहा कि, इसकी सत्यताका-निर्णय मुनिसे पूछकर आप कर ले सकते हैं। च्यवनने भी उनकी शंका निवृत्त कर दी। पश्चात् मुनिने राजासे यज्ञका आरम्भ कराया। जिसमें इन्द्रादिक देवोंके साथ अश्विनीकुमार भी आये थे।

सोमपानके समय इन्द्रने उन्हें सोमपान देनेसे रोका; उसपर च्यवनने कहा कि,—"ये दोनों कुमार सूर्यकी धर्मपत्नीसे उत्पन्न हुए हैं, अर्थात् ये देव हैं, इन्हें सोमपानसे वञ्चित रखना अन्याय है, मैं इन्हें अवश्य सोमपात्र दूंगा।" यह सुनकर इन्द्र कोपायमान होकर उक्त वैद्योंको सोमपान करानेवाले च्यवनसे युद्ध करनेको प्रस्तुत हो गया। ज्यों ही उसने मुनिपर अपना वज्रायुध उठाया, त्यों ही मुनिने इन्द्रके उसी हाथका मन्त्रबलसे स्तम्भन कर दिया और अपने तपोबलसे कृत्यासुर नामक दैत्यको उत्पन्न किया। जिसे देखकर सब देव कांपने लगे। क्योंकि दैत्यने उत्पन्न होते ही इन्द्रका वज्र निगल लिया। इन्द्रने बृहस्पतिकी प्रार्थना कर इस सङ्कटसे बचानेको कहा, पर उन्होंने भी यही कहा कि, बिना मुनिसे क्षमा मांगे इस सङ्कटसे तुम मुक्त नहीं हो सकते। विवश होकर इन्द्रको मुनिसे क्षमा मांगनी पड़ी। मुनिने भी शान्त होकर इन्द्रको क्षमा की और असुरको स्त्री, मद्यपायी, जुवारी और मृगया करनेवालोंके पास जानेकी आज्ञा देकर सब देवताओंको सन्तुष्ट किया। पश्चात् देवताओंके साथ अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराकर महात्मा च्यवनने यज्ञकी पूर्णाहुति की और श्रीजगदम्बाके कृपाप्रसादसे सब विघ्न किस प्रकार दूर होते हैं, इस बातको संसारके आगे सिद्ध करके दिखला दिया।

शशिकला।

—:*:—

बहुत प्राचीन समयमें महाराज ध्रुवसन्धि बड़ी योग्यतासे अयोध्याका राज्य करते थे। उनकी दो रानियां थीं। बड़ी रानीका नाम मनोरमा और छोटीका लीलावती था। मनो-

रमा कलिङ्गाधिपति वीरसेन और लीलावती उज्जयिनीनरेश युधा-जित्‌की कन्या थी । यथासमय मनोरमाको सुदर्शन और लीलावती-को शत्रुजित् नामक पुत्र हुआ । दोनों राजकुमार सुन्दर, सुशील, और बुद्धिमान थे । शत्रुजित् व्यवहारचतुर और सुदर्शन भग-वद्भक्त था ।

एक दिन दैववशात् आखेटमें गये हुए ध्रुवसन्धिको सिंहने फाड़ खाया । दामादका मृत्यु-समाचार सुनते ही वीरसेन और युधा-जित् अपने अपने दौहित्रोंकी भलाईके लिये सदलबल अयोध्यामें आये । वृद्ध मन्त्री तथा प्रजा परिवारने सुदर्शनको राजतिलक करने-का निश्चय किया । इससे युधाजित् बिगड़ खड़ा हुआ । वह अपने दौहित्र शत्रुजित्‌को राज्य दिलाना चाहता था । दोनोंमें विवाद बढ़नेपर बड़ा युद्ध हुआ । उसमें वीरसेन मारा गया । युधाजित् सुदर्शन और मनोरमाको भी पकड़नेके विचारमें था, परन्तु राज्यके एक वृद्ध मन्त्रीने उन दोनोंको छिपे छिपे किसी प्रकार महर्षि भरद्वाजके आश्रममें पहुंचा दिया । युधाजित्‌ने अपने दौहित्र शत्रुजित्‌को बड़े ठाठसे अयोध्याकी राजगद्दीपर अभिषिक्त किया और माता सहित सुदर्शन वनवासी हुए ।

भरद्वाजने उपनयन आदि संस्कार कर, सुदर्शनको वेद, शास्त्र, राजनीति, धनुर्विद्या आदिकी उत्तम शिक्षा दी और जगदम्बाके बीजमन्त्रका उपदेश देकर तप करनेको कहा । तपके प्रभावसे सुदर्शनको जगदम्बाका साक्षात्कार हुआ । भगवतीकी प्रेरणासे शृंगवेरपुरके निषादराजने उसे चार घोड़ोंका रथ तथा बहुमूल्य रत्नादि उपायनस्वरूप भेंट किये । यह रथ सर्वत्र गमन कर सकता था और इसमें बैठ कर लड़नेवालेकी कभी हार नहीं होती थी । यह वैभव पाकर सुदर्शनके दुर्दिन बदल गये ।

काशिराज सुबाहुकी कन्या शशिकला अब ब्याहने योग्य हो गयी

है। राजा, रानी, मन्त्री आदि वरकी खोजमें लगे हैं। शशिकला भी सुयोग्य वर-प्राप्तिके लिये तप कर रही है। उसकी तपस्या सिद्ध हुई। जगदम्बाने उससे स्वप्नमें आकर कहा कि,—"पुत्रि! राज्यच्युत अवधका राजकुमार सुदर्शन तुम्हारे योग्य वर है। उसीसे तुम विवाह करना। तुम्हारा मङ्गल होगा।" शशिकलाने सखी द्वारा यह स्वप्न-वृत्तान्त माता-पितासे निवेदन कराया, परन्तु दोनोंने सुदर्शनका इस कारण विरोध किया कि, वह निर्धन और वनवासी है। शशिकलाने मन ही मन सुदर्शनको वर लिया।

सुबाहुने कन्याकी सम्मति लिये विना उसके विवाहके लिये स्वयंवर रचा। स्वयंवरमें देशदेशान्तरके अनेक राजकुमार आये। उनमें शत्रुजित् भी अपने पिताके साथ आया था। शशिकलाने एक ब्राह्मणको गुप्तरूपसे भेजकर सुदर्शनको माताके साथ बुलवा लिया था। सुमुहूर्तपर स्वयंवर-सभा सङ्गठित हुई। समस्त राजकुमार कन्यादर्शनके लिये उत्कण्ठित हो रहे थे। सुबाहुने सखियों समेत कन्याको मण्डपमें ले आनेके लिये वृद्ध मन्त्रियोंसे कहा, पर कन्या नहीं आयी। तब तो सुबाहु बहुत घबड़ाये। वे स्वयं कन्याको समझाने गये। उन्हें शशिकलाने जो उत्तर दिया, वह पातिव्रत्यकी चरम सीमाका उत्कृष्ट दृष्टान्त-स्वरूप है। उसने कहा,—"पिताजी! मैं पहिले ही निवेदन कर चुकी हूँ कि, मैंने सुदर्शनको चित्तमें वर लिया है। अब मैं राजाओंके सामने नहीं जाऊंगी। कामुक राजाओंके दृष्टिपथमें कुपथगामिनी (व्यभिचारिणी) स्त्रियां जाती हैं। धर्मशास्त्रमें मैंने यह वचन पढ़ा है कि, पतिव्रता स्त्री एक ही वर (पति) को देखेगी, अन्य पुरुषकी ओर कदापि दृष्टिपात नहीं करेगी। जो अनेक पुरुषोंकी दृष्टिमें पड़ती हैं, उनका सतीत्व नष्ट हो जाता है। वे सब यही सोचते हैं कि, यह मेरी स्त्री हो जाय। स्वयंवर-मण्डपमें वरमाल लेकर जब कोई

राजकन्या आती है, तब कुलटाकी तरह वह सभीकी स्त्री बन जाती है। जैसी वेश्या बाजारमें बैठकर उसके यहां आये हुए पुरुषोंके गुणावगुणोंका मन ही मन निरीक्षण करती और किसी एकको आत्म समर्पण न कर सभी कामुकोंकी ओर आशाभरी दृष्टिसे देखा करती है, वैसी मैं मण्डपमें जाकर वारस्त्रीका अनुकरण करना नहीं चाहती।"

यह उत्तर सुन सुबाहु निरुत्तर हो गये। उन्होंने सभामें आकर सब राजकुमारोंसे हाथ जोड़ कर कहा,—"शशिकलाने सुदर्शनको चित्तसे वर लिया है, इस कारण वह मण्डपमें आकर अन्य पुरुषोंका मुखावलोकन करना नहीं चाहती। आप लोगोंको यहां पधारनेके कष्ट हुए हैं, इसके लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूं। आपकी उचित सेवा करनेको भी मैं प्रस्तुत हूं। धन, वस्त्र, रत्न, भूमि आदि आप जो मांगें, सो मैं निःसङ्कोचभावसे दे दूंगा, परन्तु कन्यादान करनेमें पराधीन हूं।" सुबाहुके वचन सुनते ही सब नृपति बिगड़ गये और कहने लगे,—"आपने हमें यहाँ बुलाकर अपमानित किया है। अब या तो कन्याको यहाँ ले आओ, या हमसे युद्ध करनेको तैयार हो जाओ।"

सुबाहुने कन्याको पुनः समझाया कि,—"इस समय यदि तू मण्डपमें नहीं आवेगी, तो मेरा राज्य लोग छीन लेंगे, मेरी लज्जा बचाना तेरे हाथ है। चाहे सुदर्शनके गलेमें ही वरमाल पहिना दे, पर मण्डपमें चलकर मेरा सङ्कट तो दूर कर दे।" शशिकलाने कहा,—"पिताजी! इस सङ्कटमें आप एक उपाय करें। सबसे कहें कि, हमें विचार करनेके लिये एक दिनका अवकाश दें। कल इसी समय सभामें आवें, तो स्वयंवर यज्ञका कार्य्य प्रारम्भ किया जायगा। इस बीचमें रात्रिके समय सुदर्शनके साथ यथाविधि आप मेरा विवाह कर दें। पीछे जैसा होगा, देखा जायगा। जब

कि, साक्षात् जगदम्बाने ही आज्ञा की है, तो वे हमें अवश्य सहायता करेंगी।"

सुबाहुने इस परामर्शके अनुसार, राजाओंको विदा किया और रात्रिके सुमुहूर्तपर सुदर्शनके साथ शशिकलाका विवाह कर दिया। सर्व सम्मतिसे उसी समय शशिकलाको लेकर माताके साथ सुदर्शन विदा हुए। हाथी, घोड़े, ऊँट, गौ, दास, दासी, परिजन आदि जो दहेजमें मिले थे, साथ लेकर जब सुदर्शन अपने रथपर चढ़कर चमचमाते हुए दीपप्रकाशमें घरकी ओर जाने लगे और बिदाईके मङ्गल-वाद्य बजने लगे, तब यह धूमधाम कैसी, सो देखनेके लिये सब राजा अपने अपने खेमेसे निकले। सुदर्शन-शशिकलाकी बारात देख, सबके सब क्रोधसे देहभान भूलकर, सशस्त्र हो, सुदर्शनपर टूट पड़े। सुदर्शन और सुबाहुकी सेना आगत राजाओंके वीरोंसे खूब लड़ी। परन्तु अनेक राजाओंकी सेनाओंसे लड़कर अकेले सुदर्शन कैसे पार पाते? सुबाहुकी सब सेना युधाजित् और शत्रुजित्‌ने मार डाली। ये ही पिता-पुत्र सुदर्शनके वैरियोंमें प्रधान थे। सेना-शस्त्र-विहीन सुदर्शन बड़े सङ्कटमें पड़े। उन्होंने और शशिकलाने जगदम्बाका स्मरण किया। जगज्जननी भक्तवत्सला माता वहीं एकाएक अनेक महावीरोंके साथ प्रकट हुईं और सुदर्शनके शत्रुओंका भयङ्करतासे संहार करने लगीं। देखते देखते सुदर्शनके सब शत्रु मर गये या रणक्षेत्रसे भाग निकले। भगवतीके अपार तेजको सहन न कर शत्रुजित् और युधाजित् भस्म हो गये। युद्ध समाप्त होनेपर शान्तरूपमें देवीने सुबाहु, उनकी रानी, सुदर्शन, उनकी माता और शशिकलाको दर्शन दिये। सबने जगन्माताको भक्तिभावसे प्रणाम किया। सबको आशीर्वाद देकर आदिशक्ति महामाया अन्तर्धान हो गयीं।

अब निष्कण्टक होकर बारात अयोध्याकी ओर चली।

अयोध्या बहुत दूर नहीं रह गयी थी कि, वहांकी प्रजा राज-वेष, राजचिन्ह और राजोचित उपहार लेकर सुदर्शनके सामने उपस्थित हुई। अयोध्याके लोगोंको पहिले ही पता लग गया था कि, अयोध्याके सच्चे अधिपति सुदर्शन विजयी होकर अपने राज्यकी ओर आ रहे हैं। नववधू सहित सुदर्शनको पाकर प्रजा बड़ी प्रसन्न हुई। नव नृपतिका अयोध्यामें बड़े ठाठसे नगर प्रवेश हुआ। राज्याभिषेकके समय अनेक ऋषि मुनि और राजन्यगण पधारे थे। राजा प्रजाकी ओरसे बहुत दिनोंतक समारम्भ होता रहा। सुदर्शन और शशिकलाका जीवन आनन्दसे व्यतीत होने लगा।

आर्यकन्याओंमें पातिव्रत्यका भाव कितने ऊँचे दर्जेका होता है और तपसे श्रीजगदम्बाकी अपने भक्तोंपर कैसी अपार कृपा होती है, यह शशिकला और सुदर्शनके चरित्रसे स्पष्ट होता है। चित्तसे जिसको आर्यकन्याएँ एक वार वर लेती हैं, उसके विना अन्य पुरुषको देखना भी पाप समझती हैं; यही इस चरित्रसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

सती गोपा।

—※◇※—

हमारा ऐतिहासिक युग गौतमबुद्धके समयसे आरम्भ होता है। इस लिये पौराणिक कथाएँ पहिले लिखकर अब हम अपने पाठक पाठिकाओंका ध्यान ऐतिहासिक स्त्रियों-की ओर आकृष्ट करते हैं।

विहारप्रान्तके उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें हिमालयके निकट प्राचीन समयमें कपिलवस्तु नामक नगर था। यहांके राजाका नाम शुद्धोदन था। इस शाक्यवंशीय राजाको सिद्धार्थ नामक एक पुत्र हुआ। प्रबल तपस्या और उच्च धर्मबुद्धिके कारण आगे चलकर सिद्धार्थका नाम बुद्धदेव हो गया। सिद्धार्थके जन्मलग्नमें ऐसे ग्रह पड़े थे कि, वह एक महातपस्वी और प्रसिद्ध पुरुष होगा। इस भविष्यवाणीसे शुद्धोदन बड़ा चिन्तित रहता था। वृद्धावस्थामें हुए एकलौते पुत्रके भाग्यका निर्णय इस प्रकारका जान, उसने उसे बचपनसे ही ऐसे भोगविलासोंमें रक्खा कि, उसकी वृत्ति संन्यासकी ओर न झुके। परन्तु बुद्धदेवकी वृत्ति ऐसी शान्त, चिन्ताशील और गम्भीर थी कि, उसे भोगविलास बिलकुल नहीं रुचता और वह एकान्तमें बैठकर विचार किया करता था।

कपिलवस्तुके निकट कलिदेश नामक एक छोटासा राज्य था। इसके राजा दण्डपाणिको गोपा नामकी बड़ी सुन्दरी, बुद्धिमती और पढ़ी लिखी एक कन्या थी। उसके गुणोंकी कीर्ति सुन शुद्धोदनने सिद्धार्थके लिये यही कन्या उपयुक्त समझकर सब सामन्तोंकी राजकन्याओंके साथ उसे भी एक दिन इस लिये निमन्त्रण किया कि, सिद्धार्थ आज अशोकभाण्ड वितरण करेंगे। सब राजकन्यायें आकर बायना ले गईं। अन्तमें गोपा पहुँची। अब सिद्धार्थके पास अशोकभाण्ड नहीं बचे थे, यह देखकर गोपा बोली:—"कुमार! मैं निमन्त्रित होकर आई हूँ, क्या मैं अशोकभाण्ड-से वञ्चित रहूंगी?" सिद्धार्थ लज्जित हुआ और उसने अपने हाथसे, एक बहुमूल्य अंगूठी निकालकर उसे दी। गोपासे वार्तालाप होनेके कारण सिद्धार्थको उसकी विद्या तथा बुद्धिका अच्छा परिचय मिला। सिद्धार्थ उसपर मोहित हो गया और गोपाने भी मन ही मन सिद्धार्थको आत्मसमर्पण कर दिया।

यह बात जब शुद्धोदनने सुनी, तब उसने कलिदेशके राजासे गोपाके लिये प्रस्ताव किया, पर उसने इसलिये आपत्ति की कि, सिद्धार्थमें क्षत्रियोचित गुण नहीं हैं, वह चिन्ताशील और भावुक है। ऐसे पतिके साथ गोपाको सुख न होगा। कुछ ही दिनोंमें सिद्धार्थने अस्त्र चलाना, लड़ाई करना आदि वीरताके अनेक कार्य्य दिखाकर दण्डपाणिकी दिलजमई कर दी। तब कलिदेशके राजाने आनन्दसे गोपारत्न सिद्धार्थको अर्पण किया।

मनोनीत-पति प्राप्त कर गोपाको अत्यन्त आनन्द हुआ। सिद्धार्थकी तरह गोपाके भी स्वतन्त्र विचार थे। वह न कभी घूँघट काढ़ती, न मुसलमानोंकी तरह परदा ही रखती थी। उसका यह आचरण देख, नगरवासियोंकी स्त्रियाँ उसे दोष देतीं, पर वह उन्हें यही उत्तर देती कि,—"धर्म ही स्त्रियोंका आवरण, धर्म ही उनका सौन्दर्य और धर्म ही रमणियोंकी लज्जा है। अपने धर्मबलसे जो नारी अपनी रक्षा कर सकती है, जिसका मन अपने अधीन है, भोग विलासके लिये जिसका मन चञ्चल नहीं होता, चरित्रगुणसे जिसका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, जो किसीसे अधिक बक बक नहीं करती, उसे परदा या घूंघटसे क्या प्रयोजन है? वह चाहे जहां जाय, चाहे जिससे वार्त्तालाप करे, धर्मतेजसे तपस्विनी और नारीधर्मकी मर्यादासे स्वाभाविक लज्जावती स्त्रीको किसी प्रकारका पाप नहीं छू सकता। जो नारीधर्मके महत्वको नहीं जानती, जिसका चित्त चञ्चल है, जिसके मनमें भोग विलासकी लालसा प्रबल है, जिसका चित्त पापविचारोंसे पूर्ण है, पतिके प्रति जिसकी श्रद्धा भक्ति नहीं, हृदयकी दुर्बलतासे जो सामान्य विपद् और साधारण कष्टोंसे अपना 'सतीत्व' खो बैठती है, उसको दस हाथका घूंघट काढ़ने और सात परदेमें रखनेसे भी कोई फल नहीं। जो अपनी रक्षा आप कर सकती है, वह कानन, प्रान्तर, जन-समूह, चाहे

जहां रहे, उसका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। धर्मबलसे मैं अपनी रक्षा कर सकती हूं। हँसते, बोलते, या व्यवहारमें मैं कभी चञ्चलता नहीं दिखाती, स्वामीके चरणोंमें मेरी अचला भक्ति है, आप लोगोंके सम्बन्धमें मैं कभी अश्रद्धा नहीं प्रकट करती, व्यवहारमें भी कभी आप लोगोंका अपमान मुझसे नहीं हुआ, फिर क्यों व्यर्थ मेरी निन्दा की जाती है? मैं विनयवती, धर्मशालिनी और पतिव्रता हूँ, इन उच्च धर्मोंके आगे मुझे परदा या घूंघटका महत्व नहीं जंचता। यदि कोई परदेमें रहे और घूंघट काढ़े तो मैं उसकी निन्दा भी नहीं करती"।

गोपाका यह उत्तर सुन, फिर किसीकी हिम्मत न हुई कि, पुनः उसकी निन्दा करें। इधर गोपाके सिद्धार्थके साथ दस वर्ष आनन्द पूर्वक व्यतीत हुए। अब उसे एक पुत्र हुआ। गोपा अपने छः दिनके बालकको लेकर सूतिकागृहमें सोई हुई थी। रात्रिके समयमें सिद्धार्थने बिना किसीसे कहे, संसारकी मानवजातिके दुःख दूर करनेके हेतु संन्यासी वेष धारण कर जङ्गलकी राह ली। यह समाचार हवाकी तरह फैल गया। सब नगर शोकसागरमें डूब गया। पाठक पाठिकायें सोचें कि, गोपाकी क्या दशा हुई होगी? उसका एकमात्र प्राणावलम्बन त्यागी हुआ! फिर क्या गोपाने राजभोग किया? नहीं, वह संन्यासिनी बन गई। क्या वह घरसे निकल गई? नहीं, कुलवधूकी तरह घरहीमें रहकर पुत्रका पालन करती हुई विरक्त बनी। उसने अपने उदाहरणसे दिखा दिया कि, संसारमें रहकर भी मनुष्य संन्यासी बन सकता है।

"जोगी जुगत जाने नहीं, जुग जुग जिया तो क्या हुआ।
गुरुका सबद दिलमें नहीं, कपड़े रंगे तो क्या हुआ॥"

सास ससुरने गोपाको बहुत समझाया, पर उसने यही उत्तर दियाः—"पिता माता! मैं धर्मशीला हूं, मुझे अधर्मकी ओर आप

क्यों प्रवृत्त कराते हैं? जिसका स्वामी संन्यासी है, उसे वसन-भूषण, भोग-विलाससे क्या प्रयोजन है? स्त्रियोंके पति ही सर्वस्व, सुख-भोग और राजविलास हैं। वसन-भूषणोंसे प्रसन्न होनेवाला जब स्वामी ही नहीं, तब बिना आत्माके शरीरकी तरह सती स्त्रियोंके लिये संसारकी सभी बातें निरर्थक हैं। स्वामीके साथ मेरे वसन-भूषण, गृहधर्मका सुख, भोग-विलास आदि सभी चले गये। अब मैं संन्यासिनी हूँ, सारा संसार मेरी सन्तान और मैं उनकी माता हूं। जबतक आपके पुत्र राजपुत्र थे, तबतक मैं भी उनकी सह-धर्मिणी थी। आज वे संन्यासी हैं, मुझे भी संन्यासिनी बनना चाहिये। यही स्त्रियोंके जीवनका व्रत है कि, जैसा स्वामी रहे, पत्नीको भी वैसा ही रहना चाहिये। आपके प्रिय पुत्र जङ्गलोंमें तपश्चर्या करें और मैं घरमें बैठकर भोग-विलास भोगूँ? आप मुझे क्षमा करें और पापके कांटोंमें न डालें।"

सिद्धार्थकी विमाता गौतमी और पिता, गोपाकी बातें सुनकर सन्न हो गये। सिद्धार्थकी माता उसे सात दिनका छोड़कर संसारसे कूच कर गई थी, इससे उसका लालन पालन गौतमीने किया था। सिद्धार्थ गौतमीके पुत्र माने जाते थे, क्योंकि उनपर गौतमीका प्रेम अपने पुत्रकी तरह था, इसीसे लोग सिद्धार्थको गौतमबुद्ध कहते हैं।

छः वर्षोंके बाद सिद्धार्थ सिद्धिलाभ कर, बुद्ध होकर, पुनः उसी नगरमें आये। उनके आगमनकी वार्ता सुन, सब लोग उनके दर्शनको दौड़े। आनन्दसे अधीर होकर जब लोग उनके निकट पहुंचे, तो देखते क्या हैं कि, बुद्धदेव उपदेश देते हुए नगरमें भिक्षा मांग रहे हैं। गोपाने छतपर चढ़कर पतिका दर्शन किया। मन ही मन वह सोचने लगी कि,-हज़ारों मणिमाणिक जिनके सुन्दर अंगों-पर विराजते थे, हजारों शिल्पी जिनकी वेषरचनामें लगे रहते थे;

अगणित सेवक सदा जिनकी दृष्टि देखते थे, स्वयं मैं मुग्ध होकर जिन्हें सुन्दर सज्जासे सजाती थी, आज वे ही मेरे पतिदेव सर्वाङ्गमें भस्म रमाये, नङ्गे पैर, माथा मुड़ाकर गली गली भीख मांग रहे हैं। आज वे कुंचित कुन्तल कहाँ? वे कर्ण कुण्डल कहां? वह राजवेष कहां? क्या संसार पलट गया?

गोपा रोने लगी। कुछ देरमें वह पुनः सोचने लगी कि, मैं सामान्य स्त्रियोंकी भांति रोती क्यों हूं? जो संसारसे विरक्त, संन्यासी, सर्वत्यागी और योगियोंका मुकुटमणि है; उसकी धर्मपत्नी होकर मैं रोती हूँ? यह शान्तिकी मूर्ति-देवमूर्ति-राजमूर्तिसे कहीं बढ़कर है। गोपाने हाथ जोड़े और मधुरमूर्ति हृदयमें रख ली।

बुद्धदेव निमन्त्रित होकर राज-भवनमें पधारे। गोपा सामने इसलिये नहीं गई कि, कदाचित् मुझे देखनेसे स्वामीका व्रतभंग हो! उसने पुत्र राहुलसे कहा कि, जाओ अपने पिताके पास जाकर पितृधन मांगो! राहुलने माताकी आज्ञा पाकर बुद्धदेवसे पितृधन मांगा। बुद्धदेवके पास संन्यासके अतिरिक्त और कौन धन था? उन्होंने उसे संन्यासी बना दिया। यह देख सबको अत्यन्त दुःख हुआ, पर गोपाको प्रसन्नता हुई, क्योंकि वह असार संसारकी सारवस्तुको जान गई थी। पिताकी मृत्युके समय बुद्धदेव पुनः कपिलवस्तु नगरीमें पधारे। इस समय गोपा और कई एक अन्य नगरवासिनियोंने संन्यासधर्म ग्रहण किया और राज्यको छोड़ दिया। तबसे बुद्धदेवने पुरुष संन्यासियोंकी तरह स्त्री संन्यासिनियोंका भी एक सम्प्रदाय चलाया, जिसकी नेत्री गोपा हुई।

आज गोपाका जन्म सफल हुआ। वह आज स्वामीके त्यागसे त्यागशीला, स्वामीके गौरवसे गौरविनी, स्वामीके धर्म कर्मकी सच्ची सङ्गिनी, स्वामीके तेजसे तेजस्विनी, संसारके सर्वश्रेष्ठ महासाधककी सहधर्मिणी,—केवल नाम मात्र नहीं, कार्यतः सहधर्मिणी—हुई!

समय पाकर बुद्धदेवका प्रचारित धर्म पृथ्वीभरमें फैल गया। आज भी चीन, जापान आदि महादेश बुद्धधर्मी हैं। उनके मठ मन्दिरोंमें गौतमबुद्ध और गोपाकी पूजा होती है।

धन्य गोपा, तुम्हारा पतिव्रत धन्य है! जिसके प्रभावसे चिरकाल तक तुम रमणियोंकी तिलकस्वरूपा समझी जाओगी।

दाहिरकी राजपत्नी।

आज सिन्धुदेशके राजा दाहिरकी पत्नीका चरित्र आपको सुनाना है। हमें दुःख होता है कि, जिस वीरपत्नीने इस देशकी ललनाओंमें वीरता पुनरुज्जीवित कर, देश और धर्मके लिये अग्निकुंडमें अपने शरीरकी आहुति दी, उस प्रातःस्मरणीया सतीका नाम अज्ञात है। इसलिये जब जब उस साध्वीके नामकी आवश्यकता पड़ती है, तब तब 'दाहिरकी राजमहिषी' कहा जाता है। भारतकी स्त्रियां पतिके पीछे चलती हैं—पतिका अनुगमन करती हैं। दाहिर अब इस संसारमें नहीं हैं; उनकी पत्नी भी इस संसारसे सिधार गयीं; परन्तु इतिहासके पृष्ठोंपर शाब्दिक वर्णनमें भी दाहिरकी राजपत्नी दाहिरका अनुगमन कर रही हैं। क्या पतिव्रत धर्मकी सीमा ही दिखला देनेके लिये दाहिरकी पत्नीका नाम छिपा है?

सन् ७१२ ई० में बेबिलोनियाके बादशाहने मुहम्मद कासिमको भारतवर्षपर चढ़ाई करनेके लिये भेजा। वह बलूचिस्थान होकर सिन्ध-देशपर आया। डिवा आदि स्थान सर करके उसने

आलोरका मार्ग लिया। उस समय आलोरमें सिन्धकी राजधानी थी। शत्रुके आनेका समाचार पाकर दाहिरने सामना करनेकी तैयारी की और वे आलोरकी प्राचीरके बाहर आये।

उन दिनों हाथीपर बैठकर युद्ध किया जाता था। हाथीसे शत्रु-सैन्यको पैरोंतले कुचलनेकी सुविधा रहती है। परन्तु साथ साथ यह हानि भी हो सकती है कि, हाथी भड़क जाय और सेनापति या राजाको ले रणभूमि छोड़ कर भाग जाय; ऐसा होनेसे अर्थात् सेनापतिके ही चले जानेसे सैनिकोंका दिल टूट जाता है और वे भी प्राण लेकर भागते हैं। भारतके दुर्भाग्यवश हाथीके युद्धसे यही परिणाम हुआ। हाथी दाहिरको पीठपर लिये भागा और नदी तीरपर जा जलमें तैरने लगा। यह देखकर दाहिरके सैनिक भी भाग जाने लगे। दाहिर जो कुछ कर सकते थे वह उन्होंने किया। हाथीकी पीठपरसे उतर कर वे किनारेपर आये। एक तेज घोड़ेपर सवार हो, उन्होंने सैनिकोंको बटोरा और युद्ध आरम्भ किया। परन्तु युद्धका यह एक तत्त्व है कि, शत्रुओंको शक्तिसंग्रह करनेका अवसर ही नहीं देना चाहिये। यह यहां नहीं हुआ। शत्रुओंका उत्साह बढ़ गया था—उनके पैर बराबर आगे बढ़ रहे थे। ऐसे समय राजा दाहिरकी फौज हार गई। दाहिरके शरीरमें कई घाव हुए। उन्होंने जान लिया कि, अब रक्षाका कोई उपाय नहीं है। शत्रु मेरी इस प्यारी नगरीको ले ही लेंगे। ईश्वरकी यही इच्छा मालूम होती है! राजा दाहिरका हृदय दो टूक हो गया! उन्होंने अपने मनमें कहाः—"शत्रुओंका राज्य होगा। जिस देशपर ब्राह्मण-क्षत्रियोंका धर्मराज्य था, वहाँ इन यवनोंकी सत्ता होगी। ब्राह्मण-क्षत्रिय यवनोंके दास बनेंगे! हा पराधीनते!"

रणभूमिसे भाग जाना या शत्रुओंकी अधीनता स्वीकार करना भारतवर्षके क्षत्रिय पाप समझते थे। रणमें देहपात करना उनके

लिये अधिक सम्मानकी बात थी। इतना ही नहीं, उनका यह विश्वास था कि, युद्ध करते हुए मर जानेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है; जैसा कि, भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है:—

"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चयः॥"

इसलिये पराधीनताके भयसे राजा दाहिरने रणगंगामें समाधि ले वैकुण्ठगमन किया। परन्तु उनका पुत्र भारतकी भावी दुर्दशाका चिन्हस्वरूप, क्षत्रियधर्मसे अनजान और महाभीरु था। वह अपनी माता, भगिनी और प्रजाकी पर्वाह न कर, युद्धभूमिसे भाग गया।

इस प्रकार दाहिरकी मृत्यु होनेपर शत्रुओंने चारों ओरसे आलोर नगरको घेर लिया। नगरमें राजमहिषी और उनकी दासियाँ, पुरजन और उनकी सुवासिनी स्त्रियाँ थी। इन शान्त, धर्मप्रिय नागरिकों और स्त्रियोंकी क्या अवस्था हुई होगी, इसकी कल्पना ही करते बनती है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि उस समय भारतवर्षसे वीरताका लोप नहीं हुआ था—वीर पुरुष थे और वीराङ्गनाएँ भी थीं। परन्तु सबसे वीर, तेजस्वी, और धार्मिक सती वही दाहिरकी राजमहिषी ही थीं। उन्होंने अपने हतोत्साह सिपाहियों, पुरजनों और सुवासिनियोंको एकत्र कर कहा:—"हे भारतकी सन्तानों! स्मरण रक्खो, हम लोग क्षत्रिय हैं। तुम्हारे अधीश्वर तुम्हें छोड़ गये हैं—उन्होंने पराधीनताके जीवनको लात मारकर देह त्याग किया है; उनके पुत्रने अनार्य कार्य कर, रणसे मुँह मोड़ा है, परन्तु परवाह नहीं, मैं जीती हूँ, मैं राजपत्नी और वीरपत्नी हूं। जबतक दममें दम रहेगा, तबतक शत्रुको अन्दर पैर न रखने दूँगी। चलो, वीरो! आगे बढ़ो; शत्रुओंको अपनी धर्मभूमिसे हटाओ। गोब्राह्मणोंकी और आर्यधर्मकी

रक्षा करो। प्यारे दिलेरो! यही दिलेरोंका समय है—यहीं तुम्हारी वीरताकी परीक्षा होगी। आर्य्य नाम धारण करने वालो! दिखाओ अपने आर्य्यधर्मकी तेजस्विता। भारतमें अपने झण्डेको न गिरने दो। चलो, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा"।

सैनिकोंमें, पुरजनोंमें और स्त्रियोंमें जीवनका संचार हुआ। सब अपने अपने शस्त्र उठाकर और 'अर्थं वा साधयामि, देहं वा पातयामि' की घोर प्रतिज्ञा कर, शत्रुओंसे भिड़ने लगे। कई दिन आर्य वीरोंने और वीराङ्गनाओंने असीम वीरताके साथ शत्रुओंका सामना किया और नगरकी रक्षा की। पर कर्मलेखकी रेखा कौन मिटा सकता है? जो भाग्यमें लिखा था, वह कैसे टलता? अन्न सामग्री समाप्त हो गयी। खानेके विना लोग भूखों मरने लगे। शरीरमें अन्न ही नहीं तो वीरता बेचारी क्या करे? कोई मार्ग नहीं था, जहांसे अन्न लाया जाता। अब शत्रुओंको नगर दे देने और अपने प्राण बचानेके सिवा और क्या उपाय था?

परन्तु धन्य भारतवर्ष! तेरी ललनाओंने कभी भीरुताकी शरण नहीं ली। राजमहिषीने देखा कि, अब नगर यवनोंके अधिकारमें जा चुका। उन्होंने अपने सहयोगियों और सहेलियोंसे कहाः—"अब कोई उपाय बाकी नहीं! परन्तु इतनी ही बातसे हम आर्य कन्यायें शत्रुओंकी दासता स्वीकार न करेंगी। अपना सतीत्व भङ्ग कराकर पराधीन जीवन बिताना, हे ईश्वर! हमारे भाग्यमें कभी न हो! आर्य ललनायें अपने शरीर भस्म कर देंगी, तब शत्रुओंको अन्दर आने देंगी।" यह कह कर उन्होंने एक विशाल अग्निकुण्ड बनवाया और रक्तवस्त्र पहिनकर विक्रमोज्ज्वला दाहिरपत्नीने ईश्वर और पतिका नाम स्मरण कर जलते हुए अग्निकुण्डमें प्रवेश किया। आग दहक रही थी; अग्निकी शिखायें सैकड़ों शाखाओंमें फैल कर आकाशसे बातें कर रही थीं। उस

ज्वालामैय आर्यविजयके दृश्यमें ज्योतिर्म्मयी दाहिरपत्नीको सब स्त्री पुरुषोंने देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। इसके पश्चात् कई स्त्रियोंने उसी प्रकार रक्तवस्त्र परिधान कर अग्निमें प्रवेश किया। शत्रुओंने नगर ले लिया; परन्तु उस समय आलोर नगरकी शोभा जा चुकी थी—वह एक स्मशानभूमि वन गई थी ।

इस घटनाके उपरान्त क्षत्रिय वीराङ्गनाओंको कई वार अग्नि-प्रवेश करनेका अवसर आया है। परन्तु भारतवर्षके अर्वाचीन इतिहासमें दाहिरमहिषीने ही यह अग्निलीला और यह उज्ज्वल पराक्रम सबसे पहिले दिखाया है।

—०❀०—

राजकन्या सुजाबाई ।

—०[(❀)]०—

सन् १३४२में राणा देवरावने बुन्दी शहर स्थापित किया और १६ वीं सदी तक राजपूतोंने बुन्दीका राज्य चिरस्थायी बना डाला। जिस समयका हम हाल लिखते हैं, उस समय उक्त राज्यके सिंहासन पर राजा नारायणदास नामक राज-पूत विराजमान था। नारायणदास निर्भय, साहसी और पराक्रमी होने पर भी बड़ा भारी अफीमची था। संकट और कठिन प्रसङ्गों-का तो उसे अभ्यास हो गया था। अफीमका व्यसन उसका इतना बढ़ा चढ़ा था कि, छटांक डेढ़ छटांक अफीमका उसपर कुछ भी असर नहीं होता था। उसका विवाह चितोरकी राजकुमारीसे हुआ था। जिसकी कथा मनोरञ्जक होनेके कारण यहांपर उसका उल्लेख करना असम्बद्ध न होगा।

बुन्दी और चित्तोरका पहिलेसे ऐसा स्नेह-सम्बन्ध चला आता था कि, जब किसी एक पर सङ्कट आता तो दोनों मिलकर उसका प्रतीकार करते थे। एक वार चित्तोरपर पठानोंने चढ़ाई की। नियमानुसार नारायणदास भी फौज लेकर चित्तौरकी ओर चला। चित्तौरके निकट पहुंचनेपर एक दिन नारायणदास एक कुएँके पास पेड़के नीचे अफीमके तारमें पड़ा हुआ था। कुएँपर जल भरनेके लिये आई हुई स्त्रियोंमेंसे एक तेलिनने जब नारायणदासकी यह दशा देखी, तो उसने सहज ही दूसरी स्त्रीसे कहा कि,—"यदि ऐसे अफीमचियोंसे चित्तोरको मदद मिलना सम्भव हो, तो राज्य-रक्षा होना असम्भव है।"

अफीमचीमें यह आदत होती है कि, वह आँख बन्द किये पड़ा रहता है, पर उसके कान जागते रहते हैं। कहीं नारायणदासने उस तेलिनकी बात सुन ली। वह तुरन्त उठा और पासमें पड़ा हुआ रम्भा उठाकर जोरसे बोला,—"क्योंरी, तैंने अभी क्या कहा?" उसका वह उग्र रूप देखकर तेलिन घबड़ा गई, उसे काटो तो खून नहीं। नारायणदासको उसे मारना तो था ही नहीं, दण्ड देना था; इस लिये उसी रम्भेको मोड़कर उसने तेलिनके गलेमें पहिना दिया और कहा,—"मैं राणाजीको मदद कर जब तक लौट न आऊँ, तब तक यह रम्भा ऐसा ही तेरे गलेमें पड़ा रहे, या दूसरा कोई उतार सके तो उतरवा लेना।"

नारायणदासने चित्तोरमें जाकर पठानोंको परास्त किया और एक ही दो दिनोंमें रणाङ्गण साफ कर दिया। राणाजीने दूसरे दिन संग्राममें जाकर जब देखा कि, पठानोंका नामोनिशां तक नहीं है, तब नारायणदासकी उन्होंने बड़ी खातिर की और ठाठके साथ राजमहलमें चलनेकी उससे प्रार्थना की। नारायणदासके महलमें पहुँचनेपर खूब उत्सव मनाया गया। राणाजीकी भतीजीने

नारायणदासके गुण दूरसे सुने थे, पर आज उसे प्रत्यक्ष देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके रूप गुण और पराक्रमपर मोहित हो, राजकन्याने उसपर अपनी आत्मा न्योछावर कर दी। राणाजीको इस बातका पता लगनेपर उन्होंने अपनी भतीजीका विवाह सुमुहूर्तपर नारायणदासके साथ कर दिया। इन्हीं स्त्री-पुरुषोंसे आगे चलकर हमारी चरित्र-नायिकाका जन्म हुआ था।

सन् १५३४ में राजा नारायणदासकी मृत्यु हुई। उसके बाद उसका पुत्र राजा सुजा गद्दीपर बैठा। वह भी पिताके समान आजानुबाहु, पराक्रमी और साहसी था। चित्तौरके राणाजीसे पहिलेकी तरह अपना सम्बन्ध बनाये रखनेके अभिप्रायसे उसने राणाजीकी कन्यासे विवाह किया और अपनी बहिन सुजाबाईका विवाह राणा रतनसिंहके साथ कर दिया। यहींसे दोनों कुलोंके नवजीवनका आरम्भ हुआ।

एक बार राजा सुजा अपने बहनोई राणा रतनसिंहके घर अतिथि बनकर पहुँचा। सुजाबाई और उसके पतिने उसका आदर सत्कार उत्तम रीतिसे किया। एक दिन साले बहनोई एकान्तमें आनन्दसे भोजन कर रहे थे, सुजाबाई दोनोंको परोसती और पासमें बैठकर गपशप लड़ाती जाती थी। जब भोजन हो चुका, तब सुजाबाईने दिल्लगीसे कहा,—"देखो हमारे भाईने सब पदार्थ शेरकी तरह खा डाले और आप तो बालकोंकी तरह खेलते ही रह गये।" वास्तवमें यह सामान्य विनोद था, पर रतनसिंह इस दिल्लगीसे मन ही मन जल उठा। सुजाबाईका स्वभाव प्रसन्न और विनोदी था, वह क्या जानती थी कि, मेरी बातसे राणाजी-पति-का अपमान होगा। उसने जब राणाजीकी क्रोध-भरी विकट भृकुटि देखी, तब वह ताड़ गई कि, इस दिल्लगीका परिणाम अच्छा नहीं है।

रतनसिंहका स्वभाव कुछ क्रोधी; हठी और अविचारी था।

पत्नीके स्वभावकी ओर दुर्लक्ष्य कर उस घड़ीसे वह राजा सुजाका पक्का बैरी बन बैठा। सुजाबाई और राजा सुजाने उसे बहुत कुछ समझाया, उसने भी बाहरी तौरसे हांमें हां मिला दी, पर भीतर ही भीतर इस अपमानका बदला चुकानेका वह उपाय सोचने लगा।

राजा सुजाके चित्तपर तो दिल्लगीका परिणाम कुछ भी न हुआ। वह यही सोचता था कि, रतनसिंहका क्रोध जाता रहा, क्योंकि जब तक वह चित्तौरमें था, तब तक पहिलेकी तरह उसका आदर बना रहा और जब साला बहनोई मिलते तो परस्पर पूर्ववत् प्रेमका बरताव रखते थे। दो चार दिन रह कर सुजा वहांसे बिदा हुआ।

कुछ महीनोंके बीतनेपर बसन्त ऋतु आ पहुंची। बसन्तमें वनशोभा देखने योग्य होती है। एक दिन सुजाके पास रतनसिंहकी एक चिठ्ठी आई। उसमें लिखा था,—"इस बसन्त ऋतुमें मेरी इच्छा है कि, आपके ही देशमें आकर मैं शेरोंकी शिकार करूँ।" सरलचित्त सुजाने प्रसन्नतापूर्वक पधारनेके लिये उत्तर लिखा। उसे क्या मालूम था कि, 'शेर' शब्दसे मेरा सम्बन्ध है। वह यही समझता था कि, प्रायः बसन्त ऋतुमें लोग शिकार करते हैं, रतनसिंह भी यही सोचकर आता होगा। यदि वह सचेत होता तो सम्भव था कि, भावी विपत्तिसे बच जाता।

रतनसिंहके बूँदी पहुंचनेपर दो ही चार दिनोंमें चम्बल नदीके पश्चिम तटपर उच्च पर्वत-श्रेणीके जङ्गलोंमें शिकार करनेके लिये जानेका दोनोंने निश्चय किया। सैनिकोंने बाजा बजाकर हंकाई की। दो तीन घण्टोंमें सिंह, शेर, चीता, हरिण, सियार, खरगोश, सूअर, भालू अपने अपने स्थान छोड़ घबड़ाकर इधर उधर भागने लगे। यह दृश्य रजपूतोंके लिये इतने आनन्दका होता है कि, उसके देखनेमें उन्हें अफीमका भी स्मरण नहीं होता। सुजा शिकार करने लगा, पर रतनसिंहके मनमें दूसरे ही विचार थे। वह पशुओंके स्थानमें

राजा सुजाको देखता था । उसने किसी पशुपर तीर नहीं चलाया । सुजा अपने काममें इतना गढ़ गया था कि, रतनसिंहका उसे स्मरण तक नहीं रहा । अवसर पाकर रतनसिंहने सुजापर बाण चलाया । सुजाने यह समझकर उसे अपने बाणपर रोक लिया कि, भूलसे चल गया होगा । इतनेमें दूसरा बाण आया, उसे भी सुजाने रोका । पर अब वह समझ गया कि, इसमें कुछ दगा है । इसके कारणको सुजा सोचने भी नहीं पाया था कि, रतनसिंह उसपर यह कहता हुआ झपटा,—"खाली पेटमें अन्न भर लेनेमें कोई पुरुषार्थ नहीं है, शेरकी शिकार इस प्रकार की जाती है।" रतनसिंहने सुजापर तलवारका एक ऐसा वार किया कि, वह बेहोश होकर घोड़ेसे गिर पड़ा । सब लोग हक्काबक्का हो गये । वे समझ न सके कि, यह क्या मामला है !

थोड़ी देरमें सुजा सावधान होकर देखता है कि, रतनसिंह लौट रहा है । तुरन्त उसने अपना घाव बांधकर उसे धिःकारके शब्दों-से पुनः लड़नेके लिये ललकारा । पुनः दोनोंमें युद्ध हुआ । अन्तमें सुजाने रतनसिंहको पटककर तलवारसे उसका सिर उतार लिया । आहत होनेपर भी रणमें एक प्रकारकी शक्ति आ जाती है । रतन-सिंहका सिर उतरनेपर सुजाकी वह शक्ति जाती रही और घावकी पीड़ासे वह भी भूमिपर गिर पड़ा । कुछ समयमें उसके प्राण शरीरसे कूच कर गये ।

जब यह वार्ता चित्तौर और बूंदीमें पहुंची, तब सर्वत्र हाहाकार होने लगा तथा सभी रतनसिंहके अविचारकी निन्दा करने लगे । रतनसिंहकी स्त्री और सुजाबाईके दुःखकी सीमा न रही । भाई और पतिके प्राणनाशका कारण अपनेको जानकर सुजाबाई पश्चा-त्तापसे पगली बन गई । 'किं कर्तव्यविमूढ़' होकर वह अपने भाग्यको कोसने लगी । दिल्लगी करनेकी कहांसे बुद्धि हुई, इस

बातको सोच, रह रह कर वह व्याकुल हो जाती थी। सांप काटने-पर मनुष्यकी जो दशा होती है, वही उसकी दशा थी। वह भी बिचारी क्या करती ? "जैसी हो भवितव्यता वैसी उपजे बुद्धि।" यह कविका कथन बहुत ठीक है।
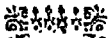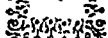
दोनों रानियां वहां पहुँचीं, जहां उनके पतिके मृतदेह पड़े हुए थे। दोनोंने संसारमें न रहनेका निश्चय कर लिया था। दोनोंकी आज्ञानुसार दो चितायें तैयार की गईं। दोनोंने पतिके साथ चिता-पर आरोहण किया और भग्न हृदय होकर अग्निनारायणकी कृपासे दोनों पतिलोकको प्राप्त हुईं। सब लोग वह करुणा दृश्य देखकर रोने लगे।

जहां वे दोनों वीर परस्पर लड़कर कट मरे थे, वहां दो सुन्दर संगीन स्मारक बने हुए हैं, जो दर्शकोंको निःशब्द होकर सती सुजाबाईकी कहानी सुनाते हैं। जहां सुजाबाईका स्मारक बना हुआ है, वहांकी वन-शोभा इतनी सुन्दर है कि, वैसी अन्यत्र क्वचित् ही दीख पड़ेगी।

अब राजा सुजा, उसकी स्त्री, रतनसिंह या सुजाबाई इनमेंसे कोई भी संसारमें नहीं है, पर इतिहासके पृष्ठोंमें उनकी कीर्ति अङ्कित है। सुजाबाई जैसी पवित्र, प्रेमपूर्ण, विनोदी और सुन्दर स्त्रियां बहुत कम हैं। उसकी सब आशायें, सुख और प्रसन्नता पर केवल सामान्य विनोदसे पानी फिर गया। हमारी बहिन सुजाबाईका उदाहरण सदा अपनी आंखोंके आगे रक्खें और किसीसे कभी ऐसी दिल्लगी न करें, जिसका परिणाम भयानक हो। मनुष्यका स्वभाव विनोदपूर्ण होना चाहिये, नहीं तो उसको सुख नहीं मिल सकता। यह बात असत्य न होनेपर भी विनोदकी सीमा होनी चाहिये। उपमा और उदाहरणोंका बोलते समय ऐसा उपयोग करना चाहिये, जिसमें किसीको बुरा न लगे।

—⁂—

रानी भवानी।

—[(※)]—

रानी भवानी नाटोर राज्यकी स्वामिनी थीं। उन्होंने देव और देशकी सेवामें निष्काम दान करके अपना नाम अमर कर लिया है। उन्हींका परिचय आज पाठकोंको करा देना है। यह परिचय देनेसे पहिले बंगालके मुसलमानी राज्य और उनके हिन्दू ज़मींदारोंकी अवस्था भी समझ लेना आवश्यक है।

ईसाकी तेरहवीं शताब्दिके आरम्भमें पश्चिमी बंगालपर मुसलमानोंका अधिकार हुआ। उसके बाद दो सौ वर्षोंके प्रयत्नसे पूर्व बंगालपर भी उनका स्वामित्व स्थापित हुआ। दिल्लीके बादशाह ही उत्तर भारतमें मुसलमानी साम्राज्यके सम्राट् थे और बंगाल उसी साम्राज्यका अंग बन गया था। तबसे दिल्लीश्वर-सम्राट्के सूबेदार बंगालका शासन करने लगे। परन्तु उन सूबेदार नवाबोंको अबाधित स्वतंत्रता प्राप्त थी। दिल्लीश्वरको मानना न मानना इनकी मर्ज़ीपर था और ये जब देखते कि, बादशाह अफीमकी पिनक ले रहे हैं, तब बादशाही जूएको उठा कर फेंक भी देते थे। इस प्रकार मुसलमानी राज्यके समय बार-बार बंगाल स्वतंत्र हुआ। पठानोंके बाद दिल्लीके सिंहासनपर अकबर बैठे, तब उन्होंने बंगालको अपने अधिकारमें कर लिया और वहां अपना शासक नियुक्त किया। कुछ वर्षोंतक बादशाही दबदबा बना रहा; पर फिर जब औरंगजेबकी मृत्यु होनेपर मोगलराज्य विलासिताके अर्कमें घुल रहा था, तब बंगालके सूबेदार फिर स्वाधीन हो गये। इन सूबेदारोंने अपनी अपनी राजधानियाँ क़ायम कीं—कई राजधानियाँ हुईं; पर अन्तमें

मुरशिद कुलीखांने जो मुरशिदाबाद राजधानी बसायी, उसके बाद दूसरी राजधानी नहीं हुई।

जैसे मोगल साम्राज्य कई सूबोंमें बटा था, वैसे ही एक एक सूबा कई परगनोंमें बटा हुआ था। बंगालमें कई परगने थे और उनपर जमींदार रियासत करते थे। जो सम्बन्ध सूबेदारोंका मोगल सम्राट्से था, वही सम्बन्ध जमींदारोंका बंगालके सूबेदारसे था। 'यथा राजा तथा प्रजा' होती ही है। सूबेदार जैसे मौका पाते ही सम्राट्की अधीनतासे मुक्त हो जाते थे, वैसे ही जमींदार लोग अवसर देखकर सूबेदारकी अधीनताका पाश तोड़ डालते थे। इन ज़मीदारोंकी अपनी सेनाएँ थीं और अपनी राजभक्त प्रजा भी थी। प्रजा जमींदारोंको राजा ही मानती थी और उनके लिये प्राणार्पण करनेमें संकोच नहीं करती थी। जमींदारोंने इस प्रकार बंगालमें बारम्बार स्वाधीनताके लिये युद्ध किये, जिनमें दिनाजपुरके राजा गणेशसिंहका बंगालके सिंहासनपर अधिकार, यशोहरमें चिरस्मरणीय राजा प्रतापादित्यका हिन्दूराज्यस्थापन, भूषणामें राजा सीताराम और राजशाहीमें उदयनारायणका विद्रोह और हिन्दु-राज्यप्रतिष्ठा, पूर्व बंगालके केदाररायका स्वाधीन नृपति हो जाना आदि घटनाएँ इतिहासमें प्रसिद्ध हैं।

इस देशमें यद्यपि मुसलमान विजेता होकर आये थे, तथापि यहां आनेपर यहीं उन्होंने अपना घर कर लिया और यहींके हो रहे। इसका यह परिणाम हुआ कि, हिन्दु मुसलमानोंमें प्रेम बढ़ता गया, क्योंकि प्रेम सहवाससे ही उत्पन्न होता है। हिन्दु कर्मचारियोंको नवाबके दरबारमें वे उच्चपद मिलते थे, जिनपर कोई विदेशी सरकार जित जातिके लोगोंको नियुक्त करना अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारनेका प्रयत्न समझती है। बंगालके सबसे बड़े कर्मचारी हिन्दु ही थे। जिस समय बंगालमें मुसलमानोंकी सत्ता

क्षीण हो रही थी और अंग्रेजोंके पैर आगे बढ़ रहे थे. उस समय बंगालका राज्य एक प्रकारसे हिन्दु राज्य ही था, क्योंकि परगनोंके ज़मींदार राजा ही थे और ये हिन्दु थे। उसी प्रकार सूबेके शासनसूत्र भी हिन्दुकर्मचारियोंके हाथमें थे। जिनमें जानकीराम, माणिकचन्द, राजवल्लभ, कृष्णचन्द्र, जगतसेठ, मोहनलाल और नन्दकुमार ये हिन्दु नाम ही चमक रहे हैं। हमारी चरित्रनायिका भी इनकी सहयोगिनी थीं।

नाटोर राज्यके स्वामी राजा रामजीवनके पोष्यपुत्र रामकान्तसे इनका विवाह हुआ था। रामजीवन बड़े श्रद्धालु और पराक्रमी पुरुष थे। परन्तु उनके पुत्र रामकान्त विलासी और अदूरदर्शी थे। रामजीवनके सखा जमींदार दयारामका अपमान करके इन्होंने उनमें क्रोधकी अग्नि प्रज्वलित की। दयारामने इसके नाशके लिये मुर्शिदाबादमें जाकर नवाबसे कहा कि, रामकान्त बड़ा विलासी आदमी है, उसका शाही खर्च है और दरिद्रताका बहाना कर वह आपको मालगुजारी नहीं देता। सचमुच मालगुजारी देनेमें रामकान्त बहुत ही अन्याय करता था। फजूल रुपया उड़ानेमें उसे तनिक भी संकोच नहीं होता था, पर मालगुजारी नहीं देते बनती थी। इससे नवाब अलीवर्दीखां चिढ़ गये। उन्होंने नाटोरमें सैन्य भेज दिया और रामकान्तकी जायदाद लूट लेनेकी आज्ञा दी। नवाबका सैन्य आकर राजमहलमें चला। आत्मरक्षा असाध्य जानकर गर्भवती रानी भवानीको साथ लेकर रामकान्त चुप चाप नौ दो ग्यारह हुए।

जो कुछ धन सम्पत्ति थी, वह सरकारने जब्त करली और ज़मींदारीके मालिक देवीप्रसाद हुए। देवीप्रसाद रामकान्तके चचेरे भाई थे। रामकान्त स्त्रीको लेकर मुर्शिदाबाद गये और वहां एक किरायेके मकानमें रहने लगे। इस समय स्त्रीके अलंकार छोड़, उनके पास कुछ भी नहीं था।

रामकान्तकी दुर्दशाका पारावार नहीं! अपनी स्त्रीके अलङ्कार बेचकर किसी प्रकार रामकान्त अपने जीवनके दिन बिताने लगे। एक राजाके लिये यह सामान्य दुःख नहीं है। रामकान्तसे यह दुरवस्था न सही गयी। उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ, नाहक उन्होंने दयारामका अपमान किया। दयाराम उनके पितृस्थानीय थे, पिताके बालसखा थे और सच्चे हितैषी थे। दयाराम बङ्गालमें उस समय चतुरोंके शिरोमणि थे। ऐसे पुरुषका मैंने व्यर्थ अपमान किया और अपनी इस अबला सहधर्मिणीकी दुर्गति कर ली। इन विचारोंसे रामकान्तका जी जलने लगा। मुर्शिदाबादकी राजधानीमें उन्हें सब लोग झुक झुक-कर सलाम करते थे। वहीं अब उन्हें कोई कानी आंखसे भी नहीं देखता। परन्तु ईश्वर दयाधन है, पश्चात्तापके विमल वारिसे पाप धो डालनेवालोंकी सहायता वह न करेगा? तो और कौन करेगा? रामकान्तको उनका राज्य उसीने लौटा दिया।

इस विषयमें यह बात कही जाती है कि, एक दिन रामकान्त अपनी कोठरीमें बैठे हुए थे और नीचे रास्तेसे दयाराम जा रहे थे। दयारामको देखकर रामकान्तने ऊपरसे कहा,—"चाचाजी! अब कब तक ये भोग भोगूं?" दयारामने ऊपर देखा। रामकान्तको देखकर उनका जी भर आया। अपने मित्रके राज्याधिकारी सन्तानकी यह दुर्दशा देखकर और उस दुर्दशाका मूल निजको ही जानकर दयारामके शोकका पारावार न रहा। उन्होंने रामकान्तके पास जाकर कहा,—"बेटा! क्षमा करो। मैं ही तुम्हारी इस दुर्गतिका कारण हूं। अब चिंता न करो, मैं ही तुम्हें अब तुम्हारा राज्य दिला दूंगा।" रामकान्तके जीमें जी आया। दयारामने कहाः,— "तुम्हारे पास यदि कुछ धन हो तो, सब काम बन जाय।" रामकान्तने कहा,—"मेरे पास क्या है? स्त्रीके शरीरपर जो कुछ आभूषण थे,

उन्हींको बेचकर पेट चला रहा हूं।" भवानीने यह सुनकर अपने शरीरपर जो अलङ्कार थे, वे उतार दिये। दयारामने अब दूसरा षड्यन्त्र रचा। उन्होंने दरबारियों और अन्यान्य कर्मचारियोंको धन देकर अपनी ओर मिला लिया और उन्हें यह सिखला दिया कि, जब देवीप्रसाद राजधानीमें आवें, तो उन्हें सलाम न करना, बल्कि, मुंहपर 'कम्बख्त' 'पागल' वगैरह कहकर निर्भर्त्सना किया करना। धनके दास जो सिखाया.वही करने लगे। देवीप्रसादने इसकी शिकायत नवाबके पास की। नवाब भी कुछ समझ न सके कि, क्यों लोग इन्हें पागल कहते हैं। दयारामने भी नवाबके कान भर दिये। परिणाम यह हुआ कि, देवीप्रसाद जब नवाबके सामने आये, तब उन्होंने भी कहा,—"सब लोग जब तुम्हें पागल कहते हैं, तो मैं तुम्हें और क्या समझूं ?" इस विचित्र अवस्थासे देवीप्रसाद सचमुच ही दीवाने हो गये और ऐसे पागल मनुष्यका ज़मीदार होना अयोग्य समझकर, नवाब अलीवर्दीखांने दयारामकी सलाहसे रामकान्तका राज्य फिर रामकान्तको दे दिया।

अलीवर्दीखांकी बुद्धिमानी और चतुरताका विचार करनेसे उक्त कहानीमें यद्यपि विशेष सत्यता प्रकट नहीं होती, तथापि इतना तो अवश्य पता लगता है कि,दयारामकी ही चेष्टासे रामकान्तका राज्य वापस मिला। यह भी कहा जाता है और उसपर विश्वास भी होता है कि, रानी भवानीने ही दयारामको बुला भेजा था और धन देकर उस धनसे दरबारमें षड्यंत्र रचनेका परामर्श दिया था। इस प्रकार रानी भवानी और दयाराम दोनोंकी बुद्धिमत्ता और प्रयत्नसे नाटोरका राज्य पुनः रामकान्तके हस्तगत हुआ।

यह राज्य सामान्य राज्य नहीं था। इसका विस्तार स्काटलैंड देशके बराबर और आय अनुमान डेढ़ करोड़ रुपये थी। नवाबको २५ लाख रुपया कर ही दिया जाता था। राज्यकी रक्षाके लिये

पचास हज़ार सिपाहियोंकी बड़ी फौज भी थी। ऐसे विशाल राज्यके स्वामी रामकान्त दुर्दशा भोगनेके उपरान्त जब अपने राज्यमें पुनः आये तब और मुर्शिदाबादमें रहते हुए भी अपनी बुद्धिमती साध्वी स्त्री रानी भवानीके परामर्शसे सब काम करते थे। पत्नीके प्रति प्रेम और भक्तिके साथ अटल विश्वास भी रामकान्तमें आ गया था। वे धीरे धीरे आदर्श राजा बन रहे थे; परन्तु शीघ्रही उन्हें संसार छोड़, स्वर्ग सिधारनेकी आज्ञा हुई और कठोर वैधव्य-व्रत तथा राज्यका सब भार रानी भवानीपर आ पड़ा।

रानी भवानीके दो पुत्र थे; पर वे बाल्यावस्थामें ही इस लोकको छोड़, स्वर्ग सिधार गये। इस समय उनकी तारा नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी और रानी भवानीने राज्यका बहुतसा अंश इसीके पति रघुनन्दनको सौंप दिया था। परन्तु रघुनन्दन भी बहुत कालतक जीवित न रहे। तब रानी भवानीने एक बालक दत्तक लेना चाहा, उसकी कथा मनोरंजक है।

दीवान दयारामसे एक दिन रानी भवानीने अपनी दत्तक पुत्र लेनेकी इच्छा प्रकट की। दयारामने नगरमें मुनादी करादी कि, सब लोग अपने अपने लड़कोंको लेकर राजमहलमें आवें। एक दिन निश्चित हुआ था और उसी दिन जिनके पुत्र थे, वे सब अपने बच्चोंको लेकर राजमहलमें आये। रानी भवानीने पुत्र निर्वाचित करनेका काम दयारामको ही सौंप दिया था। बालकोंमें सुन्दर-कुरूप, निर्मल-मलीन, बली-निर्बल सब प्रकारके बालक थे। दयाराम सोचने लगे कि, अब इनमेंसे कौन बालक राजपुत्र होने योग्य है। इसी बीचमें एक बालक शाही बानेके साथ सामने आया और उसने दयारामसे अपना जूता उतारनेके लिये कहा। दयारामने जूता उतार दिया। वह सीधे सिंहासनपर जा बैठा और उस समय उसके मुखपर राजतेज चमकने लगा। यह सब रानी भवानी

परदेकी आड़से देख रही थीं। उन्होंने दयारामको बुलाकर पूछा,—"किस बालकको आपने योग्य समझा?" दयारामने कहा,—"जो स्वयं राजा है, वह हमारे परामर्शका विचार किये बिना ही सिंहासनपर जा बैठा है। वही योग्य राजपुत्र है।" उसी बालकको रानी भवानीने गोद ले लिया।

अलीवर्दीखांके उपरान्त चिरप्रसिद्ध नवाब सिराजुद्दौला बङ्गालकी राजगद्दीपर बैठा। इसका राजत्वकाल अत्याचारका काल था। ब्लैक होलकी घटनाको यद्यपि बङ्गीय इतिहासकारने मिथ्या सिद्ध किया है, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि, सिराजुद्दौला पूरा शाइस्ताखां था। उसने क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सुन्दर और युवती स्त्रीमात्रका सतीत्व नष्ट करनेका मानों बीड़ा उठाया था। जहां कहीं सुन्दरी स्त्रीकी खबर मिलती, वहांसे वह उसे पकड़ बुलाता था। जो जमींदार समयपर कर न दे सकते थे, उनपर धावा बोलकर यह उन्हें कैद करा लाता था। इन सब अत्याचारोंका यह परिणाम हुआ कि, बङ्गालमें जितने राजा थे, सब उसके विरुद्ध हो गये।

रानी भवानीने इस दुरवस्थाको देखकर, भविष्य कथन कर दिया था कि, अब शीघ्रही इस भूमिसे मुसलमानोंकी राजसत्ता समूल नष्ट हो जायगी। उन्होंने अपनी रक्षाके लिये बङ्गाली वीरोंकी सेना नियत की थी और यह सेना बहुत शूर और पराक्रमी थी। उसे इस बातका निश्चय हो चुका था कि, अब बङ्गालमें राज्यक्रान्ति होगी। यह ऐसा अवसर था, जब हिन्दू एक दिल होकर प्रयत्न करते तो उनका राज्य स्थापित हो जाता। रानी भवानी यह नहीं चाहती थीं कि, वे बङ्गालकी स्वामिनी हों; पर उन्हें इस बातका निश्चय हो चुका था कि, उस स्वामित्वके लिये भयंकर युद्धानल प्रज्वलित होगा। इसलिये उन्होंने अपनी सेनाको

वङ्गालमें सबसे श्रेष्ठ बनानेका संकल्प किया और वैसा कर दिखाया।

जब रानी भवानीकी कन्या ताराके सौन्दर्यकी प्रशंसा नवाबके कानोंतक पहुंची, तब उस पापी आत्मघाती नवाबके हृदयमें ताराके विषयमें प्रबल कामवासना उत्पन्न हुई। सबसे पहिले उसने एक दूत रानीके पास यह कहलाकर भेजा कि, ताराको राजधानीमें भेज दो। यह अपमानकी बात सुनकर रानीका शरीर क्रोधसे जलने लगा। उन्होंने तत्काल उस पापवार्ताको ले आनेवाले दूतका शिरच्छेद करनेकी आज्ञा दी। क्योंकि नाटोरकी वीर्यशालिनी रानी भवानीमें इतनी निस्तेजता नहीं थी कि, वे ऐसे दूतको जीवित लौटा देतीं। दूतका वहीं अन्त हुआ।

यह समाचार पाते ही नाटोरपर आक्रमण करनेके लिये नवाबने अपनी सेना भेजी। बंगाल जैसे बड़े भारी सूबेकी विशाल सेना और उसका नाटोर जैसे क्षुद्र राज्यपर आक्रमण! इससे रानी-भवानीका चित्त विचलित हो गया होगा! परन्तु नहीं! भारतकी वीराङ्गनायें ऐसी भीरु नहीं होतीं। उनका चित्त विचलित नहीं हुआ। कौरवोंकी राजसभामें, महम्मदगोरीके पंजोंमें और अलाउद्दीनकी छावनीमें जिन भारत-ललनाओंने अपने आर्यरक्तकी पवित्रता और तेजस्विताका परिचय दिया, उन्हीं वीराङ्गनाओंके समान रानी भवानीने चारों दिशाओंमें शत्रुओंको भगाकर, अपना नाम अमर किया है। सिराजुद्दौलाने स्वप्नमें भी रानी भवानीके शूर सैन्यकी कल्पना नहीं की थी। वह नहीं जानता था कि, उसके अधीनस्थ ज़मीदार उससे बहुत प्रबल हैं। इसी लिये उसने सांपपर पैर रक्खा। नाटोरसे जान लेकर जो सिपाही भागे, उनकी शिकार प्रत्येक राज्यमें होने लगी। केवल रानी भवानी ही नवाबके विरुद्ध

नहीं थीं—बंगालके सभी जमींदार उसके विरुद्ध थे। नवाबीका निशान भी मिट चला।

नवाबकी दुर्बलता देखकर, बंगालके राजाओंने उसे पदच्युत करनेका विचार किया। राजा कृष्णचन्द्र, राजा राजवल्लभ, राजा राजदुर्लभ और जगत्सेठके विचारसे यह तय हुआ कि, नवाबकी सेनाका सेनापति मीरजाफ़र गद्दीपर बैठाया जाय। इन्होंने यह निश्चय किया और इसके लिये रानी भवानीको निमंत्रित कर उनका मत पूछा। रानी भवानीकी इच्छा थी कि, बंगालमें फिर हिन्दू राज्य स्थापित हो। उन्होंने उन राजाओंसे कहा,—"यह अपूर्व योग व्यर्थ न गंवाइये; यह समय वर्षोंसे नष्ट हुई स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये बहुत ही उपयुक्त है। ऐसे समय किसी हिन्दू राजाको आप लोग सिंहासनपर बैठावें, तो बहुत अच्छा होगा।" परन्तु उन राजाओंको यह सलाह न जँची। क्योंकि उनका यह ख़याल था कि, यदि हम ही लोगोंमेंसे कोई राजा बने और राजशासन ठीक ठीक न हो, तो मराठे लोग आकर यह राज्य ले लेंगे। इसी भयसे उन्होंने मीरजाफ़रको ही सिंहानका अधिकारी बनाना ठान लिया। रानी भवानीने कहदिया था कि, अंग्रेजोंकी सहायता लेकर यदि यह काम होगा, तो भविष्यत्में न हिन्दू न मुसलमान कोई भी सत्ताधारी न होगा औरअंग्रेज ही इस देशका शासन करेंगे। ईश्वरकी ऐसी ही इच्छा थी और अंग्रेजी राज्यके साथ इस देशमें पाश्चात्य शिक्षाका प्रचार आवश्यक था। इसलिये रानी भवानीका हिन्दू राज्यका स्वप्न सत्य नहीं हुआ।

अन्तमें उन्होंने अपने पोष्य पुत्रको राज्य सौंपकर गंगातटपर ईश्वर-भजनमें काल व्यतीत करना निश्चित किया। उनके लिये दान-धर्म ही अब एक व्यवसाय रह गया था। संस्कृत भाषाके प्रचारार्थ उन्होंने लाखों रुपये खर्च किये। बङ्गदेशमें और काशी

आदि क्षेत्रोंमें उन्होंने कई देवालय और धर्मशालाएँ स्थापित कीं। काशीमें रानी भवानीका देवालय अबतक सुप्रसिद्ध है। एक स्थान-पर लिखा है कि, यह सती स्त्री प्रतिवर्ष दानधर्ममें अनुमानतः २५ लाख रुपये खर्च करती थी। इस प्रकार जीवनके ७६ वर्ष धर्म्म और पुण्य-सम्पादनमें व्यतीत कर, रानी भवानीने देह त्याग किया। उनका पुत्र रामकृष्ण नाटोरका राज्य करने लगा, पर कुछ दिनोंमें विरक्त होकर उसने अपनी सब सम्पत्ति दानधर्म्ममें खर्च कर दी। राज्यका कुछ अंश बाकी रहा; उसपर भी कालकी वक्र दृष्टि पड़ी और उसपर धीरे धीरे दूसरोंका अधिकार होने लगा। अब भी नाटोर राज्यका कुछ अंश रानी भवानीके वंशजोंके अधीन है और उन्हें 'महाराजा बहादुर' की सम्मानास्पद उपाधि भी प्राप्त है। परन्तु रानी भवानीके पुण्यकार्य्यका केवल यही एक स्मारक नहीं। जबतक भारतवर्षमें आर्य्यललनाएँ, आर्य्य-धर्म और आर्य्यजीवन रहेगा तबतक रानी भवानीकी पुण्यमयी कथा भारतीय स्त्रियोंके लिये सञ्जीवनीका काम करती रहेगी। रानी भवानीका इससे अच्छा स्मारक और क्या होगा?

—०❀०—

सती करमदेवी।

—[(❀)]—

प्रेम अन्धा है।

राजपूतोंमें मोहिल नामक एक जाति है। इस जातिका माणिकराव नामक एक सरदार था, जिसकी १५ सौ गांवोंमें रियासत थी। करमदेवी इसी वीर पुरुषकी कन्या थी। करमदेवीका जन्म ओरिन्थ नामक स्थानमें हुआ था। माता

पिताकी दुलारी इस सुन्दरीकी बाल्यावस्था बड़े आनन्दसे बीती। अब वह धीरे-धीरे तारुण्यके साम्राज्यमें प्रवेश कर रही थी। नियमानुसार इसके लिये वरकी खोज होने लगी और अन्तमें मन्दोरके राठोरके साथ विवाहकी बात चीत पक्की भी हो गयी। यदि यथासमय विवाह हो जाता, तो कोई बात न होती। पर सन् १४०७ में ऐसी एक घटना हुई, जिससे करमदेवीकी जीवनी उल्लेख-योग्य हो गयी।

उस देशके जङ्गली लोगोंका साधुसिंग नामक एक वीर सरदार था। यह भीमके समान बली, अर्जुनके समान योद्धा और मेरु-पर्वतके समान अचल धैर्य्यवान् था। पश्चिममें सिन्धु नद और पूर्वमें नागौर तक लूटमार करना उसका काम था। और उसका चारों ओर दबदबा ऐसा था कि, अच्छे अच्छे वीर लड़ाईमें उससे सामना नहीं करते थे। उसकी कीर्ति माणिकरावने सुनी थी, पर अभीतक उससे साक्षात् नहीं हुआ था। एक बार पश्चिमसे लूटमार कर वह पूर्वकी ओर जा रहा था, बीचमें माणिकरावकी रियासत थी। यह अवसर अच्छा जान कर, माणिकरावने अतिथिरूपसे उसे अपने घर बुलाया। साधुसिंगका स्वभाव अच्छा था, उसने भी माणिकरावका अतिथि-सत्कार स्वीकार किया। करमदेवीको घरमें किसी प्रकारकी कैद नहीं थी। वह स्वतन्त्ररूपसे रहती थी और पिताने अतिथि-सत्कारका भार उसपर ही सौंप दिया था। १०। १५ दिनोंतक साधुसिंगका करमदेवीके साथ सहवास हुआ। इतने दिनोंमें करमदेवीने साधुसिंगके पराक्रम और वीरताकी अनेक बातें सुनीं। साधुसिंग तेजस्वी, शूर, कीर्तिमान् और प्रबल पराक्रमी था। करमदेवीने उसके इन्हीं गुणोंपर मुग्ध होकर अपना अन्तःकरण उसे अर्पण कर दिया। उस समय उसे इस बातका स्मरण न रहा कि, पिता मन्दोरके राठोरसे मेरे लिये वचनबद्ध हो

चुके हैं। जल-प्रवाह जैसे अनेक शिलाखण्डोंको तोड़कर जंगलों-को निर्मूल करता हुआ समुद्रमें जा मिलता है, उसी प्रकार प्रेम-प्रवाह अनेक संकटोंकी पर्वाह बिना किये ही निश्चित स्थान पर जा पहुंचता है। करमदेवी जानती थी कि, रजपूत लोग बातकी बातमें लड़ने लगते हैं, पर प्रेमके आगे उसे एक न सूझी; इसीसे कहा है—'प्रेम अन्धा होता है'।

प्रेमसंयोग।

करमदेवी साधुसिंगको अपना हृदय तो अर्पण करही चुकी थी, पर किसीसे कुछ कह न सकती थी। यहां तक कि, साधुसिंगसे भी वह स्पष्टतया कुछ न कह सकी; किन्तु इसी चिन्तासे वह पीली पड़ चली। कोई इसका कारण जान न सके। एक दिन पिताने उसे पास बुलाकर उदासीनताका कारण पूछा, पर उसने साफ कुछ न कहा। यही कहती रही कि, जहां आपने विवाह निश्चय किया है, वह ठीक नहीं है। माणिकराव समझ गया कि, यह साधुसिंग-पर मोहित है, इससे साधुसिंगसे कुछ दिन और ठहरनेकी उसने प्रार्थना की। साधुसिंगने भी प्रार्थना स्वीकार करली। घरके अन्य लोगोंने भी करमदेवीको बहुत कुछ समझाया, पर उसने यही कहा कि, जिसे मैंने मनसे वर लिया, उसका अब त्याग नहीं कर सकती। लोगोंने मन्दोरके राजवैभवका उसके आगे बहुत वर्णन किया, पर उसने यही उत्तर दिया कि, एक पराधीन राजाकी रानी बननेकी अपेक्षा स्वतन्त्र लुटेरिन बननेमें ही मुझे अधिक सुख है। फिर किसीने उससे छेड़ छाड़ नहीं की।

साधुसिंगने सोचा कि, मेरे आनेसे ही ऐसी गड़बड़ हुई है, इससे अपने स्थानपर चले जाना अच्छा है; कदाचित् कुछ दिनोंमें करमदेवीका मन फिर जायगा। साधुसिंग चला गया, पर करमदेवीका मन न फिरा, वह दिनरात उसीके ध्यानमें लग गयी।

अन्तमें लाचार हो, पिताने साधुसिंगको पुनः बुलाया और अच्छे मुहूर्तपर उसके साथ करमदेवीका विवाह कर दिया। साधुसिंग करमदेवीपर पहिलेसे ही अनुरक्त था। दोनोंका प्रीतिपूर्ण संयोग हुआ देख, सब लोगोंको आनन्द हुआ। माणिकरावने दहेजमें बहुतसा जवाहिरात, सोना चांदी, सिपाही, ज़मीन और पंद्रह दासियां कन्याको अर्पण कीं।

प्रेमका परिणाम।

मन्दोरके राठोरको जब पता लगा कि, करमदेवीका विवाह साधुसिंग नामक डाकूसे हो गया। तब वह अत्यन्त क्रोधित हो, चार हज़ार सिपाहियोंके साथ साधुसिंगसे लड़ने निकला। साधुसिंगको इस बातका पता नहीं था। वह अपने छः सात सौ सिपाहियोंके साथ करमदेवीको लेकर आनन्दसे घर लौट रहा था। उसको क्या खबर थी कि, राठोर मुझसे बदला चुकानेके लिये आ रहा है। जाती समय माणिकरावने दो तीन हज़ार सिपाहियोंको साथ लेजानेके लिये कहा था, पर उसने यह समझ कर इन्कार किया कि, आत्मरक्षाके लिये साथके सिपाही क़ाफ़ी हैं।

साधुसिंग रास्ता तय करता हुआ चउदन नामक स्थानमें आ पहुंचा। इधर राठोर भी आ गया। दोनोंका यहीं सामना हुआ और घमासानीकी लड़ाई शुरू हो गई। राठोरने थोड़े लोगोंके साथ लड़ना अपमानका समझकर एक एक वीरका जोड़ लगाकर अलग अलग लड़नेका प्रस्ताव किया। साधुसिंग उससे सहमत हुआ और उसने सबसे पहिले जैतंग नामक एक सम्बन्धीको सामना करनेके लिये भेजा। जैतंगने जाते ही प्रतिपक्षी सरदारपर ऐसा वार किया कि, पुनः उठनेकी उसमें शक्ति न रही। इसी प्रकार जोड़पर जोड़ बारी बारीसे रण-भूमिमें उतरने और कभी यह कभी वह ज़मीन चूमने लगे।

दोनों वीर सरदार अपने अपने योद्धाओंके पराक्रम देख रहे थे। दोनों दलके मिलाकर जब करीब हज़ार डेढ़ हज़ार वीर पटरा हुए, तब साधुसिंगने सोचा कि, व्यर्थके रक्तपातसे क्या लाभ है? जिनमें परस्पर मनोमालिन्य है, उन्हींसे सामना हो जाना चाहिये। करमदेवीकी भी यही राय ठहरी। वह रथमें बैठकर युद्ध देख रही थी। पतिके जाते समय उसने कहा,—"युद्धका निबटेरा शीघ्र ही कर देना उचित है। आप आनन्दसे प्रयाण करें। मैं रथमें बैठी हूं, परमात्मा आपको जय दें। यदि आपका रणमें कुछ भला बुरा हुआ भी तो मैं वीर-पत्नी हूँ, आप निश्चिन्त रहें, स्वर्गमें आपसे मिलूंगी। वीर कन्याएं और वीर-पत्नी युद्धसे नहीं डरती और न प्राणोंकी ही पर्वाह रखती हैं।"

नूतन परिणीता पत्नीके उत्तेजनापूर्ण उक्त वाक्य सुनकर साधुसिंगको प्रसन्नता हुई। वह रथसे उतरकर वायुवेगसे राठोर-पर दौड़ा। राठोर भी सावधान था, दोनोंका युद्ध होने लगा। उनके पहिले जो वीर आपसमें लड़ते थे, उनको यह युद्ध देखकर टकटकी बंध गई। आघात प्रत्याघात बहुत हुए, पर दोनोंमेंसे किसी-की हारके लक्षण नहीं दीख पड़ते थे। इतनेमें साधुसिंगके भालेका एक वार राठोरपर ऐसा लगा कि, उसका सिर चूर हो गया। उसी आवेशमें राठोरने भी साधुसिंगपर ऐसी तलवार चलाई कि, वह भी जमीनपर गिरकर छटपटाने लगा। थोड़ी ही देरमें दोनों कराल कालकी गोदमें जाकर चेतनाशून्य हो, महानिद्राका अनुभव करने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया। इतनेमें इस लड़ाईकी जड़ करमदेवी भी वहीं आ पहुँची। उसने घड़ी भर पतिके सुन्दर मुखकी ओर देखकर एक ठण्ढी सांस ली। उस सांसमें कौनसा विषम भाव भरा हुआ था, उसका वर्णन करना हमारी शक्तिके बाहर है।

करमदेवीने तलवार निकालकर दाहिने हाथसे अपना बाँया हाथ काट डाला और उसे दाहिने हाथमें लेकर अपने सरदारोंसे कहा,—"जाओ, इस हाथको लेकर तुम उस जंगलमें जाओ जहां मेरे ससुर हैं, उन्हें यह हाथ भेट करो और कह दो कि, आपके पुत्रका वध करानेवाली अभागिनी पुत्रवधूका यह हाथ है। यह हाथ ही उनसे कहेगा कि, उनकी पुत्रवधू कैसी थी।" उन्हीं लोगोंको अपना दूसरा हाथ काट डालनेकी उसने आज्ञा की और कहा,—"दहेजमें मिली हुई सब सम्पत्तिके साथ इस हाथको लेजाकर मेरे पिताको देना। उनसे कहना कि, आपकी कन्याने दोनों हाथोंका इस प्रकार बटवारा कर, अग्निनारायणके साथ पतिलोकमें प्रयाण किया है।"

शीघ्र ही चिता तैयार की गई और उसीमें पतिके शवके साथ करमदेवीने अपने शरीरकी पूर्णाहुती दी। राठोरकी भी उचित व्यवस्था यथासमय हुई। जिस करमदेवीके लिये इतने प्राण स्वाहा हुए, वह करमदेवी अब इस संसारमें नहीं है, पर धैर्य्य, सतीत्व, दृढ़निश्चय आदि गुणोंके कारण उसका यशोगान अभीतक राजपूत वीर गाया करते हैं।

—:०:—

सती ताराबाई।

—०:०:०—

बन्धु-कलह।

रात्रिके ६ बजे होंगे। चन्द्रमाके निर्मल किरणोंसे चारुणी-देवीके मन्दिरकी लाल पताका हवासे फहराती हुई दूरसे देख पड़ती थी। चारों ओरकी वनश्री देखने योग्य

थी। उदयपुरकी पूर्वमें करीब दस मीलपर यह प्रशान्त मन्दिर है। मन्दिरमें एक योगिनी देवीके सामने ध्यान कर रही थी और निकट-के आसनपर दो राजपुत्र चुप चाप बैठे हुए थे। कुछ देरमें वहीं एक तीसरा राजपुत्र आ पहुंचा। उसके साथ अधेड़ अवस्थाका एक सरदार भी था। यह राजपुत्र एक व्याघ्रचर्मपर बैठा और उसीके कोनेपर सरदारने घुटने टेक दिये। सब लोग एकाग्रभावसे योगिनी और जगज्जननी भगवतीकी ओर देख रहे थे। योगिनीकी समाधि खुली और उसने कहा,—"देखो, तुम सब बड़े कुलमें उत्पन्न हुए हो। मैं जो कुछ कहूँगी, उसपर विश्वास रखना और सहसा अविचार करनेपर उद्यत न होना! परमात्माकी इच्छाको रोकने वाला कोई नहीं है। जो होनहार है, वही होगा। वास्तवमें इस विशाल राज्यका कुछ अंश उस सरदारको भी मिलेगा, जो उसके साथ है। पर इस बातसे उदास न होना। यदि तुम नेकीका रास्ता न छोड़ोगे, तो तुम दोनोंकी भी कीर्ति होगी।"

मेवाड़के हिन्दूसूर्य्यकी गद्दीको कौन हिन्दू नहीं जानता? जिस समयका हाल हम लिखते हैं, उस समयमें उस गद्दीपर राणा राय-मल विराजमान थे। उन्हें जयमल, पृथ्वीराज और संग नामक तीन पराक्रमी पुत्र थे, पर इनमें परस्पर वेवनाव था। यदि ये तीनों एकमतसे काम करते, तो मेवाड़का राज्य अटल हो जाता। परन्तु भारतकी फूटने उन्हें भी न छोड़ा, राज्यतृष्णासे वे एक दूसरेके खूनके प्यासे हो गये। दिन रात तीनों यही सोचते थे कि, राणाजी-के पश्चात् मेरे सिवा और किसीको गद्दी न मिले। मन्दिरमें जिन राजपुत्रोंका उल्लेख किया गया है, वे येही तीनों भाई थे और साथ-का सरदार राणाजीका भाई अर्थात् उन कुमारोंका चाचा सूरजमल (सुराज) था। योगिनीने भविष्य कहा,—"गद्दीका उत्तराधिकारी संग होगा और राजका कुछ अंश सुराजको भी मिलेगा।" यह सुन

कर जयमल और पृथ्वीराज दोनों बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने संगका बलिदान देवीके सामने कर देनेके विचारसे अपनी अपनी तलवारें निकालीं और वे संगको मारने दौड़े। तलवारें चलने लगीं; सुराज दोनोंको सम्हालने लगा इतनेमें मौका पाकर संग वहांसे भाग गया। इस छोटीसी लड़ाईमें सबके सब घायल हुए और संगके आँखमें पृथ्वीराजका बाण ऐसा लगा कि, उसकी आंख फूट गई। पृथ्वीराज और जयमलने संगका बहुत पीछा किया, पर उसका कहीं पता न लगा। भाइयोंके डरसे उसे वर्षों तक अज्ञातवासमें रहना पड़ा था।

प्रतिज्ञाभङ्ग।

इतिहासप्रसिद्ध सोलुंकी राजघरानेके राणा वल्हारके वंशमें राव सुरनाथका जन्म हुआ था। तेरहवीं सदीमें अफगान सरदारोंने वल्हारवंशके राणाओंको उनकी राजधानी अन्हलवाडेसे हटा दिया था; तबसे वे मध्य हिन्दुस्तानके टंकथोदा (टोंक) नामक स्थानमें रहते थे। राव सुरनाथको सोलहवीं सदीके आरम्भमें जब मुसलमानोंने वहांसे भी मार भगाया, तब मेवाड़ प्रदेशके बिड़ोर नामक स्थानमें उन्होंने अपनी राजधानी बनायी। यह स्थान अरवली पर्वतकी तरहटीमें है।

हमारी चरित्र नायिका राव सुरनाथकी कन्या थी। टंकथोदा छोड़ने और नई राजधानी बनानेकी गड़बड़के समयमें ताराबाईका जन्म हुआ और थोड़े ही दिनोंमें उसकी माताका देहान्त हो गया। राव सुरनाथको कोई पुत्र नहीं था। राज्य और पत्नी-वियोगसे दुःखित होनेपर भी उन्होंने कन्याको शिक्षा देनेमें कोई बात उठा न रक्खी। ताराबाईपर उनका पुत्रके समान प्रेम था, इससे उसे राजपुत्रके योग्य शिक्षा दी जाने लगी। तीरका निशाना साधना, गोली मारना, भाला फेंकना, तलवार चलाना, बर्छी उठाना, घोड़दौड़

येही सब उसकी शिक्षाके प्रधान विषय थे। इससे लोग यह न समझें कि, उसे स्त्रियोंके योग्य कोई शिक्षा नहीं दी गई थी। नहीं ताराबाईका गृहकार्य्य और राजकार्य्यकी ओर भी पूर्ण ध्यान था। सोना पिरोना, लिखना, पढ़ना, रसोई बनाना, प्रबन्ध करना, ये सब मामूली बातें वह अच्छी तरह जानती थी। मरदाने खेल खेलने और नियमित व्यायाम करनेसे उसका शरीर सुडौल और सुदृढ़ हो गया था; जिससे उसकी सुन्दरता अधिक बढ़ गई थी।

जब ताराबाई चौदह वर्षकी हुई, तब उसने स्त्रियोंकी पोशाक पहिरना छोड़ दिया था और प्रायः पुरुषोंकी लिबासमें पिताके साथ एक शूर सरदारकी तरह रहती थी। उसकी वीरता देखकर पिताको बड़ा सन्तोष होता था। राव सुरनाथ जब उससे अपने पराजयकी बात कहते, तब वह बड़े गौरसे सुनती थी.यह देख, वे कभी कभी मन ही मन कहते,"यदि तारा कन्या न होकर पुत्र होती, तो मुझे पराधीनतामें कभी जीवन न बिताना पड़ता। युद्धविद्यामें जैसी यह थोड़े ही दिनोंमें निपुण हो गई, वैसे अच्छे अच्छे राजपूत नहीं होते"।

एक दिन पिताने ताराबाईसे कहा,—"देखो बेटी! अब मेरी अवस्था ढलती जाती है। राजपूतानेमें आपसके वैर विरोधसे मुसलमानोंका बल बढ़ रहा है। जहां देखो, वहां उदासी और अन्धकार दीख पड़ने लगा है। इससे ज्ञात होता है कि, भारतसूर्य्य अब अस्त हुआ चाहता है। मैं यह जानता हूँ कि, अकेलेके किये कुछ नहीं हो सकता, तो भी यह समझ कर चुपचाप अत्याचार सहना भी तो कापुरुषताका लक्षण है? इच्छा यही थी कि, मैं अपने पराक्रमसे टंकथोदा ही नहीं, किन्तु अन्हलवाडा भी शत्रुओंसे छीन लूँ; पर परमात्माकी इच्छा वैसी नहीं दीख पड़ती। तुम्हें यदि भगवान्‌ने शक्ति

और आयुष्य दिया, तो इस वृद्ध पिताकी इस इच्छाकी ओर अवश्य ध्यान देना"।

राव सुरनाथके आंखोंसे दो बूँद आंसू टपक पड़े, उन्हें देखकर ताराबाईका हृदय फटने लगा। उसने पिताको उत्तेजना देते हुए कहा,—"पिताजी आप! ऐसे शोकाकुल क्यों होते हैं? जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं, तबतक मैं आपकी कीर्त्तिको बचा लेनेका यत्न करूँगी। यदि इस समय मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करें, तो राणाजीके कुलके दुर्दिन दूर हो सकते हैं। शरीर नाशमान है, उसका मोह कर राजपूतोंके नामको धब्बा लगाना मैं उचित नहीं समझती। मेरी राय यह है कि, इसी समय फौज इकट्ठी कर, शत्रुओंपर धावा किया जाय और कमसे कम टंकथोदा ले लिया जाय। सेनापतिका काम मैं करूँगी, आप केवल द्रष्टामात्र रहें"।

कन्याकी बातोंने पिताके दग्धहृदयमें मानो अमृतका काम किया। उन्होंने उसकी बातको मान लिया और वे युद्धके लिये तैयार हो गये। देखते देखते फौज जमा हुई और लड़ाई छिड़ गई। इस लड़ाईमें ताराबाईने अपने पराक्रमसे अच्छे अच्छे अफगान सरदारों और शत्रुपक्षके राजपूतोंके दांत खट्टे किये। वह शत्रुओंके मेघमण्डलमें बिजलीसी चमक रही थी। दुःखकी बात है कि, ईश्वरको उस बालिकापर दया न आई। तीन दिनके घोर संग्राममें उसके कई सरदार रणमें मारे गये और अन्तमें उसे शत्रुओंसे पराजित होकर पिताके साथ लौट आना पड़ा।

इस युद्धमें इतना अवश्य हुआ कि, उसकी कीर्ति सारे राजपूतानेमें फैल गई और चारों ओरसे उसके लिये मांग आने लगी। ताराबाई पराजयसे आग बबूला हो गई थी। उसे दिन रात टंकथोदा जीतनेके सिवा और किसी बातकी चिन्ता न थी। उसने फिरसे सैन्य इकट्ठा करना आरम्भ किया और वह सिपाहियोंको

शिक्षा देने लगी। बिठूरमें बन्दूकों और तोपोंकी आवाजें, तलवारोंकी झनझनाहट और घोड़ोंके हिनहिनानेके शब्द सर्वत्र सुनाई देने लगे। जिन्हें सुनकर शत्रुओंको विश्वास हो गया कि, यह बालिका एक दिन टंकथोदा लिये बिना न रहेगी।

ताराबाईके चाहनेवालोंमें मेवाड़के राणा रायमलका पुत्र जयमल भी था। उसने अपनी इच्छा राव सुरनाथसे प्रकट की। उसपर ताराबाईने जवाब लिख भेजा,—"जो कोई मेरे पिताकी राजधानी टंकथोदा शत्रुओंसे छीनकर मेरे पिताको भेट करेगा, उसीसे मैं विवाह करूँगी। जब तक यह काम न होगा, तब तक कोई किसी तरहका प्रस्ताव मेरे या मेरे पिताके पास न भेजे।"

जयमलने यह बात स्वीकार कर ली और वह बिठूरमें दाखल हुआ। वह मिथ्या प्रेम और इंद्रियलोलुपताके कारण अन्धा बन गया था। उसे अपने कर्तव्यका स्मरण न रहा। सैन्य एकत्र कर शत्रुओंसे लड़ना छोड़, बहुत दिनों तक वह बिठूरमें ही पड़ा रहा। उसने सोचा कि, इस तरह चकमा देकर पहिले ताराबाईका पाणिग्रहण कर लूँगा, फिर पीछेसे जो होगा, देखा जायगा। एक दिन वह ताराबाईसे एकान्तमें मिला। ताराबाईने उसे बड़ा फटकारा। उसने कहा,—"राणाजीके कुलमें उत्पन्न होकर तुम ऐसी लंपटता दिखा रहे हो इसकी तुम्हें शरम नहीं है? तुम पुरुषकी अपेक्षा स्त्री होते तो अच्छा था। अधिक क्या कहूं—राजपूत स्त्रियोंमें जो पौरुष है, सो भी तुममें नहीं। तुम अपनी प्रतिज्ञा भूल गये हो। जो राजपूत प्राण रहते अपनी प्रतिज्ञा नहीं पालन करता, उसे धिःकार है। उसका इस संसारमें न रहना ही अच्छा है। यदि तुम अपनी भलाई चाहो, तो अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो या इसी समय अपने घर चल दो।"

कामान्ध राजपुत्रपर उस वीरकन्याके वाक्योंका कुछ भी असर

नहीं हुआ और वह शादीके लिये गिड़गिड़ाने लगा। यह देख, क्रुद्ध होकर ताराबाईने अपने पितासे उसी समय उसका वध करवा डाला। प्रतिज्ञाभङ्गका उस कुलाङ्गारको उचित प्रायश्चित्त मिला। यह बात राजपूतानेमें चारों ओर फैल गई। तबसे बहुत दिनों तक किसी राजपुत्रने पुनः ऐसा साहस नहीं किया।

विजय और विवाह ।

मुहर्रमके दिन थे। टंकथोदा शहरमें बड़ी धूमधाम मची थी, स्थान स्थानपर यवनदल सुसज्जित होकर अपना धार्मिक त्यौहार मना रहे थे। आबालवृद्ध अपने अपने कामोंमें लगे हुए थे। शहरकी बड़ी बड़ी सड़कोंपर इतनी भीड़ थी कि, पैर रखनेके लिये जगह नहीं मिलती थी। दिनके १२ बजे होंगे। प्रातःकालकी धर्मविधि समाप्त कर अफगान सेनापति बरामदेमें पोशाक पहिन रहा था। उसके चेहरेसे जान पड़ता था, कि शहरको जीतनेकी उसे बड़ी खुशी हुई है। वह बड़े समारोहके साथ उत्सवमें सम्मिलित होना चाहता ही था, कि नीचेसे किसीने भाला फेंका जो उसके कलेजेमें लगा। वह अपनेको सम्हाल भी न सका और किसीने एक तीर चलाया जिससे उसका सिर कट कर वहीं गिर पड़ा। यह बात बिजलीकी तरह शहर भरमें फैल गई और सबके चेहरोंपर सच्चा मुहर्रम छा गया। पता लगानेपर ज्ञात हुआ कि, तीर चलाने वाली कोई स्त्री थी और उसके साथीने भाला फेंका था। परन्तु वे हुल्लड़में कहाँ भागे इसका पता न चला। सीमाप्रदेशके एक हाथीकी सूँड़ कटी थी, जिससे निश्चय हुआ कि, यह काम उन्हीं लोगोंका है और अब वे सीमापार हो गये हैं।

चारुणीदेवीके मन्दिरमें लगे हुए घावोंके आराम होते ही बिहूरमें आकर राव सुरनाथके निकट पृथ्वीराजने अपने भाईके अविचारपर दुःख प्रकट किया और कहा,—"उस प्रतिज्ञाको यदि मैं पूर्ण कर न

सका, तो मैं सच्चे राजपूतका बेटा नहीं।" इस बातको सुनकर राव सुरनाथ और ताराबाईको बहुत प्रसन्नता हुई। वे दोनों समझते थे कि, हमारी कृतिसे राणाजी रुष्ट होंगे, पर राणाजी बड़े विचारशील पुरुष थे। लोगोंके भड़कानेपर भी उन्होंने विपद्ग्रस्त सुरनाथका बदला लेना उचित नहीं समझा, बरन कुलाभिमानको तलाक देकर लंपटताके अधीन हुए पुत्रको योग्य दण्ड देनेके लिये उन्होंने ताराबाईकी प्रशंसा ही की। राजपूत लोग बातबातमें लड़नेपर कमर कस लेते हैं, परन्तु राणाजीके शान्त स्वभावने पिता-पुत्री दोनोंके हृदयमें आदरका स्थान पाया।

दलबलके साथ पृथ्वीराज टंकथोदाकी सीमा तक पहुंच गया, पर अफगानोंको पता नहीं था; क्योंकि वे मारे खुशीके फूले नहीं समाते थे। उन्हें यह खबर नहीं थी, कहाँ क्या हो रहा है ? उन्होंने शहरके चारों ओर केवल हाथियोंका पहरा रक्खा था। पृथ्वीराजके साथ छोटीसी फौज लेकर ताराबाई भी आई थी, क्योंकि उसके हृदयमें पिताके अपमानकी अग्नि जल रही थी। उसने सोचा कि, शहरमें पहिले हुल्लड़ मचा देना चाहिये और तब धावा करना चाहिये। उसके विचारसे पृथ्वीराज सहमत हो गया और दोनों वेष बदलकर मुहर्रमके उत्सवमें शामिल हुए। अफगान सेनापतिपर पृथ्वीराजने भाला और ताराबाईने तीर चलाया था, जिससे उसका सिर उड़ गया। संकेतानुसार हुल्लड़ मचाकर दोनों शहरसे भागे। सीमाके पास आकर देखते हैं, तो वहाँ हाथियोंका पहरा था। पृथ्वीराज बड़े घबड़ाये, पर ताराबाईको एक अच्छी युक्ति सूझ गई। उसने कमरसे फौरन छुरा निकाला और एक हाथीकी सूँड़ काट डाली! चिंघाड़ मारता हुआ हाथी भागा और ये दोनों शीघ्रतासे जाकर अपने दलमें शामिल हो गये।

शहरके बीचमें ताजिया पहुंच गया था। मुसलमान सम्हल भी न सके कि, पृथ्वीराज और तारावाईने फौजके साथ उनपर धावा कर शहरमें कत्ल करना शुरू कर दिया। लड़ाई छिड़ गई। अफगान और राजपूत सरदारोंने देवासुरोंके घोर संग्रामका दृश्य वहीं खड़ा कर दिया। सेनाके वीचमें योद्धाओंको उत्साह देती हुई तारावाई ऐसी लड़ रही थी, मानो संसारका संहार करनेवाली कालीने ही मुसलमानोंका नाश करनेके लिये पृथ्वीपर अवतार लिया है। उसका चेहरा वीरतासे सूर्य्यसा चमक रहा था और उसके उत्साहसे राजपूतवीर प्राणोंकी पर्वाह न कर बड़ी वीरतासे लड़ रहे थे। परिणाम यह हुआ कि, दो ही तीन घण्टोंमें मुसलमान शहर छोड़ कर भाग गये और जो वच गये, वे वहीं मारे गये। संध्या होते होते राव सुरनाथकी विजयघोषणा नगरमें कराई गई और सुमुहूर्त पर राव सुरनाथ पुनः गद्दीपर प्रतिष्ठित हुए। पितापुत्रीके पुनः राज्यमें लौट आनेसे प्रजाको बड़ी प्रसन्नता हुई और जहाँ मुहर्रम मनाया जाता था, वहाँ तिलकोत्सव मनाया जाने लगा।

यथा समय तारावाईका पृथ्वीराजके साथ विवाह हो गया।

चचा भतीजा।

"नाथ, ऐसे उदास क्यों हैं? इस पत्रमें क्या लिखा है? क्या कोई बात मुझसे छिपाने योग्य है?"

"नहीं प्रिये, अब अपना वियोग होगा इसी चिन्तासे मैं व्यग्र हूँ। तुमसे कौनसी बात छिपी है, जो इस बातको छिपाऊँगा? इस पत्रसे मालूम होता है कि, मेरे चचा सुराजमलने राजद्रोह करना विचारा है। चारुणी देवीकी योगिनीने कहा था कि, इन्हें राज्यका कुछ हिस्सा मिलेगा, उसी बातपर विश्वास रख, इन्होंने यह घोर कर्म करना आरम्भ किया है। वे समझते हैं कि, सब राज्य मुझे मिल जायगा, इस लिये इसका प्रबन्ध अभी करना चाहिये।"

"तब सोच किस बातका है, चलिये मैं आपके साथ रहूंगी। आपने मेरे पिताकी गद्दीका उद्धार किया है, तो क्या मैं आपके पिताकी गद्दी बचानेमें सहायता भी न करूँ?"

"तुम्हारे पिताकी गद्दीका मैंने क्या उद्धार किया? वह सब तुम्हारा ही पराक्रम था। तब तुम क्वारी थीं; अब तारा, तुम्हारा विवाह हो गया है। तुम संग्राममें जाओगी, तो लोग क्या कहेंगे?"

"नाथ! राजपूत स्त्रियां किसी अवस्थामें पतिका साथ नहीं छोड़तीं। उन्हें पतिका सहवास स्वर्ग और वियोग ही नरक है। मैं वीरकन्या और वीरपत्नी हूं, मुझे लड़नेमें क्या लज्जा है?"

"तारा, भगवान् तुम्हें वीरमाता बनावे! तुम्हारे मुखसे ऐसे शब्द सुनकर सन्तोष होता है।"

पृथ्वीराजने ताराको हृदयसे लगा लिया। दोनों रूप गुण और अच्छे स्वभावसे एक दूसरेपर अनुरक्त थे। लड़ाई जीतनेपर दोनों कुछ दिनतक टंकथोदामें आनन्दसे जीवन बिताते थे। अब पुनः उनके आगे कर्तव्यदेवताका पवित्र चित्र खिंच गया। पुनः फौज इकट्ठी होने लगी और राव सुरनाथकी आज्ञा पाकर दोनोंने मेवाड़की ओर प्रयाण किया।

वहां जाकर देखते हैं कि, सुराजमलने मालवेके सुलतानकी सहायतासे राणाजीपर चढ़ाई की है। राणाजीने अपने भरसक सामना किया, पर यशकी कोई आशा नहीं थी। लड़ाई बड़ी घमासानीकी हो रही थी। लड़नेवाले इतने उन्मत्त हो गये थे, कि उन्हें अपना पराया भी नहीं सूझता था। जो जिसे जहां पाता वहीं काट गिराता था। राणाजीके सिपाही भागनेकी तैयारीमें ही थे कि, ताराबाई और पृथ्वीराज प्रचण्ड सेनाके साथ राणाजीकी सेनामें आ मिले। देखते देखते मैदान साफ हो गया। सब मुसल-

भान और शत्रुपक्षके राजपूत पटरा हो गये। ताराबाईका प्रताप देख, सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। वीरोंको विश्वास नहीं होता था कि, हमारे शरीरपर होनेवाले कठोर आघात ताराबाईकी तलवारके ही हैं। कोई लोग तो उसके मनोहर नेत्र और सुन्दर मुखकमलको ही देखते रहे। बिचारे अपनी तलवारें भी न सम्हाल सके और ताराबाईकी तलवारके भक्ष्य बने !

आजका युद्ध समाप्त हुआ। सन्ध्याके समय पृथ्वीराज सुराजसे मिलने गया। सुराजने राजपुत्रका उचित सत्कार कर कहा,—"बेटा, तबीयत तो अच्छी है ?"

"आपकी कृपासे अच्छी ही है, कहिये आपके घाव कैसे हैं ?"

"तुझे देखकर पीड़ा कुछ कम हुई है"।

घाव पृथ्वीराजकी तलवारसे ही हुए थे। टाड् साहबने लिखा है कि, युद्धशास्त्रके इतिहासमें यह बात बिलकुल नई है कि, दोनों पक्षके अगुआ दिनमें लड़ें और रातमें परस्पर पितापुत्रकी तरह व्यवहार करें। वास्तवमें पृथ्वीराज और सुराज परस्परके शत्रु होनेपर भी दोनोंको परस्परके विषयमें पूर्ण विश्वास था। पृथ्वीराजने रातको वहीं भोजन किया। सुराजने अपने हाथसे लगाकर उसे पान दिया। दोनों गलेसे गले लगकर मिले, तब पृथ्वीराज वहांसे बिदा हुआ। जाते समय पृथ्वीराजने कहा,-"चाचाजी, इस लड़ाईका निबटेरा कल होगा।"

"ठीक है, बेटा, कल जरा जल्दी ही आना।"

दूसरे दिन पुनः घोर संग्राम हुआ। इसमें ताराबाईने ऐसा पराक्रम दिखाया कि, उसके नामसे शत्रुओंके सिपाही कांपने लगे। केवल दो ही तीन घण्टोंमें सुराजको बचे हुए सैन्यके साथ पराजित होकर भाग जाना पड़ा। तबसे उसने फिर कभी सिर

न उठाया और जिस कैंथालके जंगलोंमें भाग गया था, वहीं अपना आधिपत्य जमाकर रहने लगा। कैंथाल राज्य अभी वर्तमान है।

पृथ्वीराज और ताराबाईने अपने अपने पिताका राज्य निष्क-एटक कर कमलपुरमें रहना स्थिर किया। वहींपर वे अपना समय आनन्दसे व्यतीत करने लगे। उन्होंने बीस हजार सेना और अच्छे अच्छे तेजस्वी वीर अपने साथ रक्खे, जिनका काम निर-पराध या अन्याय पीड़ितोंको बचाना ही था।

सतीकी कीर्ति।

सिरोहीके राजपुत्रसे पृथ्वीराजकी बहिन ब्याही थी। उसकी एक चिट्ठी पृथ्वीराजको मिली। जिसमें लिखा था:—"मुझे यहां बड़े कष्ट हैं, मुझे हर घड़ी अपमान सहना पड़ता है और जो चाहता है, वही अपने मनवाली करता है। इस लिये जैसे हो; मुझे कुछ दिनोंके लिये नैहर बुला लो और इस बातकी उचित व्यवस्था करो। बहिनकी लज्जा तुम्हारे हाथ है।"

पृथ्वीराजने चिट्ठी ताराबाईको दिखाई। ताराबाईने कहा,—"चलिये, हम लोग जाकर राजपुत्रको दण्ड देंगे और बहिनको ले आवेंगे।" पृथ्वीराजको ताराबाईके उत्साहसे आनन्द हुआ, पर वह अपने साथ किसीको ले जानेके लिये राजी नहीं था। ताराबाईने साथ चलनेके लिये बहुत तरहसे कहा, पर उसने किसीकी न सुनी और अकेला ही सिरोहीकी ओर रवाना हुआ।

रात्रिके बारह बजे वह सिरोही पहुँचा। शहरमें सन्नाटा था। उसने राजमहलके उस कमरेमें चुपचाप प्रवेश किया, जिसमें प्रभु-राय (उसका बहनोई) सोया था। भीतर जाकर उसने कटारी निकाली और बहनोईको सचेत कर कहा,—"तेरे पापोंका प्रायश्चित्त

देनेके लिये मैं तेरा काल आ पहुँचा हूं। मेवाड़की राजकन्याका पाणिग्रहण करना साधारण बात नहीं है। ईश्वरका स्मरण कर, मैं तेरा वध करूंगा।"

प्रभुराय भौचक्का हो गया। पृथ्वीराजकी बहिनको भी उसके अचानक आनेसे आश्चर्य्य हुआ। उसे आशा नहीं थी कि, मेरे पत्रसे पृथ्वीराजको इतना क्रोध आवेगा। प्रभुराय पृथ्वीराजके निकट प्राणदानके लिये गिड़गिड़ाने लगा। पृथ्वीराजकी बहिनको भी उसकी दया आई और उसने भाईके पैर पकड़ लिये। दोनोंकी प्रार्थनासे पृथ्वीराजने उसे इस शर्त्तपर छोड़ा कि, वह मेरे सामने स्त्रीसे क्षमा मांगे और फिरसे उसके साथ किसी प्रकारका असद्-व्यवहार न करे। प्रभुरायके स्वीकार कर लेनेपर पृथ्वीराजने उसे बहुत कुछ नसीहत दी और दो एक दिन वहां रहकर वह अपने नगरकी ओर लौट आया।

प्रभुराय डरपोक तो था ही, किन्तु कपटी भी था। जाती समय पृथ्वीराजको जो मिठाई बांध दी गई थी, उसमें उसने गुप्तरूपसे विष छोड़ा था। कमलपुरके निकट मम्मादेवीके मन्दिर तक पहुंचनेपर उसमेंसे थोड़ी मिठाई पृथ्वीराजने खाई और खाते ही वह बेहोश हो गया। उसने ताराबाईके पास संदेसा भेजा। जबतक तारा आती है, तबतक उसके शरीरसे प्राण कूच कर गये।

ताराबाईके शरीरमें काटो तो खून नहीं। उसको प्रभुरायकी नीच कृतिपर बड़ा क्रोध हुआ। एकदम बदला लेनेका विचार मनमें आकर उसने तलवार निकाली, परन्तु पतिका शव देखते ही वह धमसे पृथ्वीपर गिर पड़ी। सब विचार उसके हृदयसे जाते रहे। लोगोंके हाहाकार और करुणध्वनिसे दशों दिशाएँ गूंज उठीं। सतीने भयानक अट्टहास किया। दुःखके अतिरेकसे प्रायः ऐसा ही विपरीत परिणाम होता है। उसने पतिको गोदमें लिया,

आलिङ्गन किया; चुम्बन किया, प्रेमाश्रु बहाये, मधुर प्रीतिका गान गाया और वह तन्मय हो गई। चेतन और अचेतन स्वरूप स्वर्गीय प्रेमका संयोग हुआ। चिता तैयार हुई। दोनों एक साथ अग्निनारायणकी गोदमें जा बैठे। वैश्वानरने 'हरहर' शब्दके साथ उग्ररूप धारण कर संसारसे कह दिया कि, ताराबाई जैसी रूप गुण शौर्य सम्पन्न, पति तथा पितृभक्त सती स्त्रियोंके शरीर, ज्योतिमें लीन होनेपर भी उनके कीर्ति शरीरप्रलयपर्य्यन्त इतिहासके पृष्ठोंमें स्वर्णाक्षरोंसे अङ्कित रहेंगे और कविगण समय समयपर उनके चरितोंके प्रेमसे परायण करेंगे।

—०॥०—

राजमाता जीजाबाई।

"न मातुः परदैवतम्।"

माता से बढ़कर कोई देवता नहीं है। सब गुरुओंकी गुरु माता है। मातासे ही बचपनमें हमें सब कुछ शिक्षा मिलती है। जैसा माताका स्वभाव होगा, वैसा ही बच्चोंका बनेगा। भाषा, रहनसहन, व्यवहार आदि मातासे सीखे जाते हैं। माता जितनी सुयोग्य होगी, बालक उतने ही अच्छे और तेजस्वी निकलेंगे। बच्चोंके जीवनको बिगाड़ना या बनाना माताके हाथ रहता है। सिकन्दर, आलफ्रेड दि ग्रेट, पिटर, नेपोलियन, जोसेफ मेझिनी आदि पराक्रमी पुरुष मातृशिक्षाके प्रभावसे ही जगद्विख्यात हुए थे। जिस माताको देश, काल और पात्रका ज्ञान है, वह अपने पुत्रोंसे बड़े बड़े कठिन कार्य्य सहजमें करा ले सकती है।

हमारे देशके इतिहासमें ऐसी माताओंकी कमी नहीं है। अच्छी माताएँ बातों बातोंमें जाति, धर्म और देशकी दशा समझा कर उनके उद्धारके लिये पुत्रोंको साहस, धीरता और चतुरता सिखला देती हैं। जिस कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानमें बड़े बड़े कार्यकर्ताओंकी भी बुद्धि काम नहीं करती, उस ज्ञानका रास्ता वे पुत्रोंके लिये साफ कर देती हैं। पाण्डवोंकी माता कुन्ती और छत्रपति शिवाजी महाराजकी माता जीजाबाईकी गणना इन्हीं सुयोग्य और आदर्श माताओंमें हो सकती है। कुन्तीकी कथा कौन नहीं जानता? आज हम अपने पाठकोंको राजमाता जीजाबाईका चरित सुनाते हैं। अनेक संकटोंसे सामना कर अपने तथा अपने कुलके मान-सम्भ्रमकी जैसी जीजाबाईने रक्षा की, वैसी शायद ही किसी स्त्रीने की होगी।

दक्षिणमें मुसलमानोंका राज्य करीब २०० वर्ष रहा। इस राज्यको ब्राह्मणी या बरहमनी राज्य कहते थे। सोलहवीं सदीके आरम्भमें इसके पांच टुकड़े हुए। बीचमें वेदर, उसके दक्षिणमें बरार और अहमदनगर तथा दक्षिणमें विजापूर और गोवलकोंडा राज्य था। जब सब राज्य एकत्र थे, तब भी सर्वत्र बादशाही हुकूमत नहीं चलती थी; फिर टुकड़े हो जानेपर पूछना ही क्या था? सब अलग अलग अपने अपने दल बनाकर एक दूसरेपर आक्रमण करनेका यत्न करने लगे। मुसलमानी राज्यमें मराठोंका आदर था। उन्हें सब विभागोंमें अधिकार मिलते थे। राज्य छिन्नविछिन्न होनेपर उनका प्राबल्य अधिक हुआ और हरएक दरबारकी ओरसे वे अपना पराक्रम दिखाने लगे। हमारी चरित-नायिकाका सम्बन्ध विजापूर और अहमदनगरकी रियासतसे अधिक है।

सोलहवीं सदीमें जिन मराठे सरदारोंने अद्भुत युद्धकौशल दिखाया था, उनमेंसे सिन्दखेड़के देशमुख (अधिपति) लुकजी

जाधवराव बड़े प्रसिद्ध थे, इन्हें अहमदनगरके निजामने अपने सरदारोंमें स्थान देकर बारह हज़ार घुड़सवारोंकी मनसबके अतिरिक्त बहुतसे गांव इनाममें दिये थे। जाधवराव देवगिरीके यदुवंशी थे। जीजाबाई इन्हींकी कन्या थी और इसका जन्म सन्१५९७में हुआ था।

अयोध्याके सूर्य्यवंशी सिसोदिया नामक राजघरानेके एक प्रतापी पुरुषने नर्मदाके दक्षिण तटपर एक छोटासा राज्य स्थापन किया था, इसी राजाके वंशजोंने आगे चलकर चित्तौरके इतिहासप्रसिद्ध राज्यकी स्थापना की। अलाउद्दीनके अनेक आक्रमणोंसे चित्तोरके राजपुत्रोंको जंगल और पर्वतोंकी गुफाओंका आश्रय लेना पड़ा। राजपुत्रोंमेंसे अजयसिंह और हमीरसिंहके अतिरिक्त सभी उस घोर अत्याचारके चक्रमें आकर नामशेष हो गये, पर बचे हुए उक्त दोनों कुमारों और उनकी सन्तानोंने मौका पा, अपना क्षात्रतेज प्रकट कर, फिरसे चित्तौर तथा उदयपुरमें अपने राज्यकी प्रतिष्ठा की।

अजयसिंहके पुत्र सुजनसिंहने दक्षिणपर चढ़ाई की और सैंधघाड़ा मुसलमानोंसे छीनकर वहाँ एक स्वतन्त्र राज्य बसाया। यह राज्य चार पुश्त तक चला। चौथी पुश्तमें महाराणा देवराजजी यवनोंके आघातोंसे राज्य न बचा सके और वहांसे भागकर कृष्णा तथा भीमा इन दोनों नदियोंके बीचमें गुप्तरूपसे खेतीका काम करने लगे। उन्होंने अपना नाम बदल कर भोसावन्त अर्थात् भोसले रक्खा और कुछ दिनोंके लिये तलवारको छुट्टी दे दी। जीजाबाईका विवाहसम्बन्ध इसी इतिहासप्रसिद्ध घरानेमें हुआ था और वह अपने प्रबल सौभाग्यसे अन्तमें राजमाताके पदको प्राप्त हुई थी।

"नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन निवार्यते।"

भाग्य क्या नहीं कराता ? सूर्य्यवंशी असल क्षत्रियोंके भाग्यमें खेती करना बदा था, लेकिन सब दिन किसीके एकसे नहीं होते।

ईश्वर विपत्तियोंकी कसौटीपर मनुष्यकी परीक्षा करता है। राणा देवराजने वैश्यवृत्ति स्वीकार की सही, पर वह केवल आपद्धर्म था। उन्होंने अपने पुत्रोंको क्षत्रियोचित शिक्षा दी। जिसका परिणाम यह हुआ कि, उनके वंशज बावजी उर्फ पहिले शिवाजी भोसलाने स्व-पराक्रमसे हिंगणी, बेरडी, देऊल, वेरूल आदि गांव खरीदे और वे वहांके छोटे राजा कहाने लगे। उन्हें १५५० और १५५३ में मालोजी और विठोजी नामक दो पुत्र हुए। दुर्दैवसे थोड़े ही दिनोंमें बावजीका देहान्त हो गया। तब पुत्रोंके पालन और शिक्षाका भार मालोजीकी मातापर ही आ पड़ा। माताने पुत्रोंको ऐसी उचित शिक्षा दी कि, उन्हें अपने घरानेकी दशा विदित हो गई। वे दोनों अपनी कीर्ति पुनः बढ़ानेका उद्योग करने लगे। इन पुत्रोंकी योग्यता देखकर फल-टनके अधिपति निंबालकरने अपनी कन्या दीपाबाईका ब्याह मालो-जीके साथ कर दिया।

मालोजी और विठोजीने निश्चय कर लिया था कि, बिना तल-वार उठाये हमें गति नहीं है। माताकी आज्ञा लेकर सिंदखेडके लुकजी जाधवरावके यहां वे नौकरी मांगने गये। मालोजी सुन्दर सशक्त और सतेज थे। जाधवरावने दोनोंको पांच पांच गिन्नी मासिक पर फौजमें भरती कर लिया। दोनों भाइयोंकी नेकी और शूरता देखकर जाधवरावने उनकी दरबारमें सिफारिश की। तदनुसार निजाम सरकारने भी मालोजीको सिपहसालार और विठोजीको किलेदार बना दिया। अब दोनोंको बहुत कुछ आशा हुई कि, हमारे दिन अवश्य फिरेंगे। माता और स्त्रियोंको उन्होंने अपने पास बुला लिया। उनके दिन आनन्दसे कटने लगे। विठोजीको आठ पुत्र हुए, पर एक भी पूर्णायु न हुआ। मालोजीने पुत्रके लिये मनौतियां की थीं। अन्त-में नगरके पीर शाहशरीफ़की मनौतीसे १५९४ और १५९८ में उन्हें दो पुत्र हुए। इस लिये उन्होंने एकका नाम शाहजी और दूसरेका

शरीफ़जी रक्खा। दोनों पुत्रोंमें पूर्ण क्षत्रियतेज दीख पड़ता था और शाहजीपर जाधवरावका विशेष प्रेम था।

शाहजी पांच वर्षके और जीजा तीन वर्षकी हुई। दोनों प्रायः एक साथ खेलते कूदते और एक ही स्थानमें रहते थे। कभी जीजा मालोजीके घर चली आती और कभी शाहजी जाधवरावके घर चले जाते थे। होलीके दिनोंमें एक दिन जाधवरावके यहां महफ़िल थी। बड़े बड़े निमन्त्रित सज्जन उपस्थित थे। निमन्त्रणमें मालोजी और विठोजीके साथ शाहजी भी आये थे। शाहजीको जाधवरावने पुकारा। पुकारते ही वे उनकी गोदमें जा बैठे। जीजा भी आ पहुंची, वह दूसरी गोदमें बैठ गई। दोनों बालभाषामें हास्य विनोद करने लगे। यह देख सब लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ। लोग यही कहने लगे कि 'जोड़ी ठीक है।' जाधवरावने कन्यासे पूछाः—'बेटी, तुम्हें यह पति पसन्द है? जोड़ा तो बहुत ही अच्छा है।' बेचारी बालिका इन बातोंको क्या समझे? उसने आगे रक्खी हुई तश्तरीमेंसे गुलाल लेकर शाहजीपर फेंका, शाह-जीने भी वैसा ही किया। दोनोंकी फाग देखकर उपस्थित लोग आश्चर्य्यसे हँसते हँसते लोट पोट हो गये। सबने एकमुख हो कहा,—'जीजाके लिये शाहजी ही पति योग्य है।' यह सुनकर मालोजीने जोरसे कहा,—'देखिये, बड़े लोग अपने वचनको कभी नहीं बदलते। जाधवरावने अभी जो कुछ कहा, आप लोगोंने सुना है। आजसे जीजा मेरी पतोहू हुई, इस बातमें कभी फरक नहीं हो सकता। मुझे आशा है कि, जाधवराव अपना कहा सत्य कर दिखाएँगे।'

जाधवरावको हँसी हँसीमें अपने कह दियेका यह परिणाम हुआ देख बड़ा पश्चात्ताप हुआ। दूसरे दिन उन्होंने एक भोज दिया, उसमें मालोजी और विठोजीको भी बुलाया; पर उन्होंने

कहला भेजा कि,—'हम और आप समधी हुए हैं। अब विवाहमें ही हम आप एक साथ भोजन करेंगे। तबतक कृपाकर आप हमें न बुलावें।' यह बात जाधवरावकी स्त्री म्हालसाबाईको बहुत बुरी मालूम हुई। निम्बालकर, सिरके, महाडिक आदि बराबरीके सरदारोंको छोड़, एक सिपाहीके बेटेसे लड़की ब्याहना उसे बिलकुल पसन्द नहीं था। उसने पतिके जरियेसे दोनों भाइयोंको बहुत समझाया, पर उन्होंने एक नहीं सुनी। जब कभी बात छिड़ती, वे यही उत्तर देते,—"आप बड़े हैं, बड़े आदमी अपनी बातको प्राण रहते नहीं मेटते। हम हमीर-प्रतापकी सन्तान हैं। यदि हममें क्षत्रियोंका कुछ भी तेज है, तो शाहजीका व्याह जीजासे ही कराएँगे, नहीं तो अपना मुँह न दिखाएँगे।' यह गर्वोक्ति सुनकर जाधवरावको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने बादशाहसे कहकर दोनोंको नौकरीसे ख़ारिज करा दिया और दोनों भाई इस प्रकार अपमानित हो, अपने गाँवोंमें लौट आये। उनकी सब आशाएँ ख़ाकमें मिल गईं, पर अपमानकी आग उनके हृदयोंमें धधकती ही रही। अपमान गरीबीसे हुआ जानकर अब वे धनी होनेका यत्न करने लगे।

खूब परिश्रम कर उन्होंने अपने गांवोंकी आमदनी बढ़ा ली और सौभाग्यसे उनके खेतमें उन्हे एक जगह बहुतसा गड़ा हुआ धन भी मिलगया। जिससे वे अपमानका बदला चुकानेपर कटिबद्ध हो गये। उन्होंने अपमानकी बात ननिहालमें लिख भेजी और उनकी कुछ सहायता लेकर थोड़े ही दिनोंमें तीन हजार फौज इकट्ठी कर ली। अब उन्होंने खूब दान धर्म किया, व्यापार बढ़ाया और चारोंओर कीर्ति फैलानेके लिये रुपये बांटना शुरू कर दिया। लोगोंकी उनपर श्रद्धा हो चली। लोग कहने लगे कि, मालोजी और विठोजी पर भवानी माता प्रसन्न हुई हैं, उनके कुलमें ऐसा पुरुष अवश्य

उत्पन्न होगा, जिसका संवत चलेगा। लोगोंका अनुमान शीघ्र ही सत्य हुआ।

जाधवरावका अनुचित वर्ताव सबपर प्रकट हो गया था, सब-लोग उनकी निन्दा करने लगे। मालोजीने सब भारी सामान श्रीगोंदा नामक स्थानमें रखदिया और वे फौजके साथ निंवहेराकी घाटीसे होते हुए गोदावरीके पार उतर आये। वहां आकर दौल-तावादके निकटकी एक मसजिदमें उन्होंने दो सूअर मारकर डाल दिये। उनके गलोंमें चिट्ठियाँ बांध दीं, जिनमें लिखाथाः—"जाधव-रावने भरी सभामें अपनी बेटीको मेरे लड़केके साथ व्याहनेका कबूल कर अब वे औरतोंके भड़कानेपर अपनी बातसे फिर गये हैं और हम दोनों भाइयोंको बिलाकसूर शाही नौकरीसे खारिज कर दिया है। इस बातका न्याय अगर खुद सरकार न करेंगे, तो निंबालकरकी मददसे हमलोग दूसरी मसजिदोंमें भी ऐसा ही उपद्रव मचावेंगे।"

यह बात सुन निजाम बहुत नाराज हुआ। जाधवरावको बुलवाकर उसने डांटा कि,—"तुम हिन्दु होकर अपनी बात फेरते हो? तुम्हारी बातका कौन पतबार करेगा? अब अगर ऐसी हर्कत फिरसे सुनी गयी, तो उसके जिम्मेवार तुम समझे जाओगे, इसका ख्याल रखना।" इसपर जाधवरावने कहा,—"हुजूरका कहना बजा है, लेकिन एक दरवान और दरवारी सरदारकी बरावरी कैसे हो सकती है, इस बातको सोचकर हुजूर हुक्म फरमावें।" निजामने कहा,-"देखो जाधवराव, दौलतसे कोई बड़ा नहीं होता। मानलो, आज मैं तुम्हारी सब जायदाद छीन लूं, तो क्या तुम्हारे ख़ानदानमें धट्टा लग जायगा? भोसलाका ख़ानदान तो अच्छा है? उनके पास आज दौलत नहीं है, पर कौन कह सकता है कि, कल वे दौलतमन्द न होंगे?"

निजामने यह सोचकर कि, शूर मालोजी और विठोजीको निम्बालकरकी सहायता मिलनेसे बादशाहतको बड़ी हानि पहुँचेगी, इस समय यदि वे बिगड़ बैठेंगे तो जो चाहेंगे करलेंगे, उनका हाथसे निकल जाना ठीक नहीं है,—शीघ्रही अर्थात् सन् १६०४ के मार्चमें मालोजीको आदरसे बुलवाकर उन्हें राजाका खिताब दिया और शिवनेरी तथा चाकणके किलोंके साथ पूना और सुपा परगनेकी जागीर बक्शी; जिससे जाधवरावको कुछ भी कहनेका मुंह न रहा। उन्हें उसी मासमें मालोजीके पुत्र शाहजीके साथ जीजाका विवाह कर देना पड़ा। यह विवाह दौलताबादमें हुआ और उत्सवमें अमीर उमरावोंके साथ स्वयं निजाम उपस्थित थे। मालोजीके घर इस आनन्दके उपलक्ष्यमें महीनों तक ब्रह्मभोज और साधु-सन्त, फकीर फुकरोंको दानधर्म होता रहा। जीजाबाईके जन्मसे ही उसके भावी ससुराल-भोसला घराने-का अभ्युदय आरम्भ हो गया था, अब उसकी क्रमोन्नति हो चली और राणा हम्मीर-प्रतापके वंशके दुर्दिन शरत्कालीन मेघके समान विलीन होने लगे।

जीवो जीवस्य भक्षकः।

मूर्तिजा निजामने जाधवरावसे चिढ़कर मालोजीकी योग्यता बढ़ाई सही, पर मालोजी भी उसके लिये अपात्र नहीं थे। उन्होंने अपनी शूरता, कुशाग्रबुद्धि और मिलनसारीसे चारों ओर कीर्ति फैलाई तथा लोगोंको दिखा दिया कि, मराठे भी राज्यकार्यमें किसीसे कम नहीं होते। धीरे धीरे उस राज्यमें उनका इतना प्रभाव बढ़ गया कि, उनकी आज्ञाके बिना पत्ता भी नहीं हिलने पाता था। सन् १६१९में धन, धान्य, पुत्र, कीर्ति आदि ऐहिक ऐश्वर्यसे सम्पन्न होकर मालोजीने परलोककी यात्रा की। उनके पश्चात् उनकी जागीर, मनसब आदि निजामने उनके पुत्र शाहजीको बड़े आदरसे अर्पण की। शाहजी भी पिताकी तरह बुद्धिमान्, शूर, स्वामिभक्त,

मुत्सद्दी और दूरदर्शी थे। उन्होंने अपने सौजन्यसे लोगोंको पिताका स्मरण नहीं होने दिया।

सन् १६०० में मोगलोंने चांदबीबीका खून किया और तख़्तनशीन बहादुर निजामको ग्वालियरमें कैदकर अहमदनगर जीत लिया। इस बातसे चिढ़कर मलिकम्बरने २६ वर्षोंतक मोगलोंसे झगड़ा किया और फिरसे निजामशाही स्थापन करनेके लिये वह कटिबद्ध हो गया। शाहजीने इसी चतुर और बुद्धिमान् पुरुषकी तालीममें कई वर्ष बिताये थे। मलिकम्बरकी कार्यवाहीसे रुष्ट होकर बादशाह जहांगीरने अपने पुत्र शाहजहांको बड़ी भारी फौजके साथ उसे पकड़ लानेके लिये भेजा। १६२० में दोनोंकी लड़ाई हुई, पर शाहजीके अपूर्व युद्धकौशलके आगे मोगलोंकी एक न चली। जब बादशाहने देखा कि, मराठोंकी सहायतासे मलिकम्बरकी जीत हुई, तब उसने मराठोंको फोड़ना विचारा। शाहजीको बहुत कुछ लालच दी, पर वे स्वामिभक्तिसे नहीं डिगे। इससे मलिकम्बरको बहुत प्रसन्नता हुई और शाहजीकी कीर्तिके डंके झड़ने लगे। पर दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि, जीजाके पिता लुकजी जाधवराव २४ हज़ार रुपयोंकी मनसबकी लालचमें पड़कर मोगलोंसे जा मिले; जिसका परिणाम यह हुआ कि, मलिकम्बरको मोगलोंसे सुलह कर लेनी पड़ी।

सन् १६२७ में मलिकम्बरकी मृत्यु होनेपर दूसरा मूर्तिजा निजाम गद्दीपर बैठा। अब राज्यके सब सूत्र शाहजीके हाथ आये, यह देखकर बादशाहने जाधवरावको उनपर चढ़ाई करनेके लिये भेजा। इस समय शाहजी निजामके साथ माहुलीके किलेमें थे। उन्होंने छः महीनों तक जाधवरावका सामना किया; पर जाधवरावने ऐसी चाल चली कि, शाहजीको शीघ्र ही वहांसे भाग जाना पड़ा। उसने निज़ामकी माँको ऐसी बातें पढ़ा दीं, जिससे उसका चित्त

शाहजीसे फिर गया । शाहजीने यह बात निजामसे कही और उसी दिन वहांसे स्त्रीपुत्रोंके साथ कूच की । जाधवरावने दामादका पीछा किया, पर सफलता नहीं हुई । उसे यह भी डर था कि, शाहजी निंवालकरकी सहायतासे हमारा सामना करेंगे, तो फिर जान बचाना कठिन होगा ।

इस कूचमें शाहजीके साथ जीजाबाई और चार वर्षका पुत्र सम्भाजी भी था । जीजा गर्भवती थी, दिन पूरे हो चले थे, पतिके साथ एक रात और एक दिन घोड़ा दौड़ाते दौड़ाते वह बिलकुल थक गई थी । सन्ध्याके समय उसका पेट बहुत दुखने लगा । अब एक पैर भी आगे बढ़नेकी उसमें सामर्थ्य नहीं थी । इस विपन्नावस्थामें शाहजीको एक युक्ति सूझी । जुन्नरमें श्रीनिवास नामक उनके एक मित्र स्वतन्त्र सरदार थे । उनके निकट शिवनेरीके किलेमें अपने कुछ विश्वासपात्र सेवकोंकी देखभालमें उन्होंने जीजाको रख दिया और आप आगे रवाना हुए ।

सवेरा होते होते सेनाके साथ पीछा करते हुए जाधवराव भी किलेके पास पहुंच गया । उसने सुना कि, किलेमें अकेली जीजा है, शाहजी कलही आगे बढ़ गये । वह अपने कियेपर बड़ा पछताया और कन्याकी दशा देखकर उसे बहुत दुःख हुआ । किलेमें पहुंचकर वह जीजासे मिला । पिताको देखते ही जीजा आग बबूला हो गयी । उसने कहा,—"दामादके बदले कन्या ही आपके हाथ लगी है, इसका जो कुछ भला बुरा करना चाहो, कर लो ।" जाधवरावने उसे छातीसे लगा लिया और कहा,—"बेटी, होनहारके अनुसार बुद्धि होती है, तुम्हारी दशा देख कर अब मुझे शाहजीसे किये हुए विरोधपर पश्चात्ताप होता है । यदि तुम नैहर चलना चाहो तो मैं तुम्हें ले चलता हूं ।" जीजाने उत्तर दिया,—"अब मैं आपकी नहीं हूं, जिन्हें आपने मुझे दिया है, वेही मेरे भले बुरेके साथी हैं,

आप जाइये, मैं अब यहांसे कहीं न जाऊंगी।" जीजा जानती थी कि, इस किलेमें भी मैं निर्भय नहीं हूं, पर स्वाभिमान भी कोई वस्तु है। वह अन्ततक नैहर नहीं गयी और जाधवरावको विमुख होकर लौट जाना पड़ा।

कुछ दिनोंके बाद जाधवरावने मोगलोंका साथ छोड़ दिया और वह दूसरे मूर्तिजा निजामशाहके पास काम खोजने लगा। बादशाह बड़ा क्रूर था। उसने उसके किये विश्वासघातका दण्ड देनेके हेतु उसे पुत्रके साथ दौलताबादके किलेमें मिलनेके लिये बुलाया और घातकों द्वारा दोनोंका वध करा डाला।

"शिवं प्रासूत पार्वती।"

सन् १६२७ अप्रेल की १० वीं तारीखको जीजा प्रसूत हुई। यही पुत्र गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक, हिन्दुराज्य-संस्थापक, प्रातःस्मरणीय महाराजा छत्रपति शिवाजी थे। जीजा इस पुत्रके साथ तीन वर्षों-तक उसी शिवनेरी-किलेमें रही, फिर उसे बायजापुरके किलेमें रहना पड़ा। वहाँ मोगलोंके सरदार मोहबतखानने उसे कैद किया, तब उसके चाचाने उसकी मुक्तता की। जीजाको कभी कोंडणा, कभी शिवनेरी और कभी माहुली आदिके किलोंमें रख-कर जहां तक हो सका, शाहजीने उसकी रक्षाका प्रबन्ध किया। शाहजीको दस वर्षोंतक अनेक विपत्तियां झेलनी पड़ीं। उस समयमें जीजाने भी दृढ़तासे संकटोंसे सामना किया और छोटे पुत्र शिवा-जीकी शिक्षाके लिये कोई बात उठा न रक्खी। लिखना पढ़ना, तीर चलाना, गोली मारना, पटा खेलना, घोड़ेपर चढ़ना जीजाने ही शिवाजीको सिखाया था। शिवाजीके भाग्यमें पितृशिक्षा नहीं लिखी थी, पर माताने भी अपने कर्तव्यका पूर्णरूपसे पालन किया। कारावासका अनुभव शिवाजीको गर्भसे ही हुआ था।

इधर शाहजी फिरसे निजामशाही स्थापन करनेके उद्योगमें लगे। उन्होंने विजापुरके बादशाहकी सहायता प्राप्त की, पर जाधवरावका खून होनेसे निजामके दरबारका उन्हें विश्वास नहीं था। निजामशाहीकी अव्यवस्था बहुत बिगड़ गयी थी, इससे उन्हें उनके उद्योगमें सफलता न हुई। अन्तमें परिणाम यह हुआ कि, १६३२ में निजामशाही डूब गयी। इस बीचमें उन्होंने निजामकी गद्दीपर शाही खानदानके दस वर्षके पुत्रको स्थापित किया और उसके लिये खानडौरान और खानजमानके साथ भयानक युद्ध किया था। जब दोनों सरदार शाहजीसे परास्त हुए, तब खुद शाहजहाँने शाहजीपर चढ़ाई की। इस चढ़ाईमें विजापुरवालोंको बादशाहने अपने काबूमें कर लिया, तब शाहजी बिलकुल निर्बल हो गये और उन्होंने शाहजहाँकी शरण ली। शाहजहाँने उन्हें अपने पास न रखकर विजापुरवालोंके पास रक्खा और उनको पूना और सूपा परगनेकी पुरानी जागीर लौटा दी। नये परिवर्तनमें नवीन निजाम सन् १६३७ में विजापुर बादशाहके अधीन हुए। शाहजी विजापुरके आश्रित हुए जानकर वहांके बादशाह आदिलशाह और प्रजाको अत्यन्त आनन्द हुआ, क्योंकि उस समय वैसा युद्धविद्याचतुर, स्वामिभक्त और प्रतापी पुरुष केवल महाराष्ट्रमें ही नहीं, किन्तु दूर दूर नहीं था। शाहजीने पूना और सूपाके प्रबन्धके लिये दादोजी कोंड़देव नामक ब्राह्मण पण्डितको रख दिया और आप स्त्रीपुत्रोंके साथ विजापुर रहने लगे। दो तीन वर्षोंके पश्चात् दादोजी हिसाब समझानेके लिये विजापुर आये, उस समय शाहजीने उनके साथ शिवाजी और जीजाको पूनेमें भेज दिया और संभाजीको अपने पास रख लिया।

यहींसे शिवाजीकी शिक्षाका आरम्भ हुआ। जीजाने अपने उदाहरणसे दिखा दिया कि, पुत्रोंको किस प्रकार शिक्षा दीं जाती

है। जीजाको दादोजी भी बहुत अच्छा मनुष्य मिला था, इसकी सहायतासे शिवाजीको शिक्षा देनेमें उसे अधिक सफलता हुई। दादोजीने पूनेमें बड़ा भारी राजमहल बनवाया और वहीं शिवाजीको राजशिक्षा देना आरम्भ किया। महाभारतादि ग्रन्थों द्वारा क्षत्रिय-धर्म, नीति, व्यवहार आदिका उपदेश कर १३–१४ वर्षोंमें दादोजी और जीजाने शिवाजीको ऐसा तैयार किया कि, वे सद्गुणोंकी मूर्ति बन गये। शाहजी और दादोजीने साथ ही साथ मलिकम्बरसे तालीम पाई थी और उस समयमें मलिकम्बर जैसा राजनीतिज्ञ पुरुष दूसरा नहीं था, इसीसे दादोजीकी शिक्षाके गुण शिवाजीपर बहुत ही थोड़े दिनोंमें प्रकट होने लगे। शाहजी और दादोजी दोनोंके मनमें हिन्दुपद्पातशाही स्थापन करनेकी बहुत इच्छा थी, पर समयकी अनुकूलता न रहनेके कारण दोनों कुछ न कर सके। मातृशिक्षाप्रभाव और स्वतन्त्रताकी कुलपरम्परागत–इच्छाके कारण शिवाजीके स्वधर्माभिमान, उच्चमहत्वाकांक्षा, देशाभिमानकी व्यापक कल्पना, स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका अचल निश्चय ये सब गुण विकास पाने लगे। जीजाके मनोनिग्रह और धैर्य्य आदि गुण शिवाजीमें गर्भसे ही थे। "बुद्धिमान् और परम पराक्रमी होनेपर भी पराधीन मनुष्यको अन्ततक सुख नहीं मिलता" यह सिद्धान्त पतिके उदाहरणसे जीजाने बांधा था। कई बार चातुर्य और पराक्रम दिखाकर अन्तमें शाहजीको विजापुरनरेशकी नौकरी करनी पड़ी; इस बातसे दुःखित होकर शिवाजीसे जीजाने अपने हृदयकी व्यथा कह सुनाई और उन्हें आज्ञा दी कि,—"यदि तुम संसारमें मनुष्य बनकर रहना चाहो, तो स्वराज्य स्थापन करो। हिन्दुधर्मकी रक्षा करो और दुष्ट यवनोंका सत्यानाश करो।"

शिवाजी महाराज राज्यकार्यमें निपुण हो चले थे। सन् १६४० ई० में शाहजी कर्नाटककी एक लड़ाई जीतकर विजापुर लौट आये,

उस समय उन्होंने पुनः स्त्री-पुत्रोंको अपने पास बुलाया, यह मौका अच्छा देखकर शिवाजीने और भी राज्यकार्य सम्बन्धी मारकेके पेंचपांच पितासे समझ लिये और स्वराज्य स्थापनका सूत्रपात किया। शाहजी स्वराज्यके लिये यह उपयुक्त समय नहीं समझते थे, पर प्रतिभाशाली पुरुषके लिये देश, काल, पात्रकी कोई आवश्यकता नहीं होती। शिवाजी पिताके साथ राज्यकी बातें जाननेके लिये दरबारमें अवश्य ही जाते थे, पर न उन्होंने बादशाहको कभी सलाम किया और न उसे कभी आदरकी दृष्टिसे देखा। ये हरकत बादशाह तथा खुद शाहजीको भी पसन्द नहीं थीं, शाहजीने बहुत कुछ समझा बुझाकर कहा कि, इन हरकतोंसे कोई लाभ नहीं है, तुम जिस कामको करना चाहते हो, वह तुम्हारी शक्तिके बाहर है। शिवाजीने किसीकी न सुनी और अपना कार्य क्रमशः विशेष विस्तृतरूपसे करना आरम्भ किया। लाचार हो, शाहजीने पुनः मा बेटेको पूनेमें भेज दिया। अब शिवाजीको किसी प्रकारकी रोकटोक नहीं रही। माताकी सलाहसे भवानीका स्मरणकर देशोद्धारके पवित्र कार्यमें उन्होंने प्रसन्नतासे हाथ डाला, जिसका सुखमय परिणाम किसी भारतवासीसे छिपा नहीं है।

"कालाय तस्मै नमः।"

माता जीजाके साथ शिवाजीके पूनेमें लौट आनेके बाद थोड़े दिनोंमें दादोजी—वृद्ध, स्वामिभक्त, राज्यकार्यधुरन्धर और बुद्धिमान् दादोजी—का देहान्त हो गया। दादोजीके देहान्तसे शिवाजी अत्यन्त दुःखित थे ही कि, उनपर दूसरा वज्रपात हुआ। उनके बड़े भाई सम्भाजी कर्नाटककी एक लड़ाईमें मारे गये। इस दुःखसे उनकी सब आशाएँ मिट्टीमें मिल गईं। ऐसे समयमें जीजाने—पुत्रशोकसे व्याकुल जीजाने, शिवाजी-एकमात्र प्राणके आधार प्यारे

शिवाजी-को मातृभूमिके उद्धारके लिये पुनः उत्तेजित किया और मातृभक्त सुपुत्र शिवाजीने माताकी आज्ञाको शिरोधार्यकर, सब दुःखों-को नेत्रोंके आंसुओंके साथ बहाकर पुनः अपना उद्योग आरम्भ किया। सन् १६४४ से लेकर १६७४ में हिन्दुराज्यकी प्रतिष्ठा हुई तबतकके प्रचण्ड उद्योगमें महाराजको केवल माताके उपदेशका ही आधार था। धैर्यशाली, विचारी और चतुर माताने भी पुत्रकी कर्तव्यनिष्ठा देख, अनेक संकटोंके समय उन्हें अच्छी सलाह दी और सत्य-कर्तव्य-से डिगने नहीं दिया। माताको पुत्रके शरीरकी विशेष चिन्ता रहती है, पर जीजाने पांचभौतिक शरीरकी ओर नहीं, किन्तु शिवाजीके कीर्ति-शरीरके पुष्ट होनेकी ओर विशेष ध्यान दिया था। सचमुच ऐसी माताएँ धन्य हैं!

दादोजीकी मृत्युके बाद जागीरका काम स्वयं शिवाजी महाराज देखने लगे थे। जब उनके देशहितैषी कामोंकी विजापुर दरबारको खबर हुई, तब आदिलशाहने शाहजीको कैद किया और कहा,—"तुम अपने लड़केको इन कामोंसे रोको, नहीं तो मार डाले जाओगे।" शाहजीने शिवाजीको इस सम्बन्धमें एक चिट्ठी लिखी, जिसपर आत्मावलम्वी शिवाजीने उत्तर लिखा,—"आरम्भ किया हुआ कार्य अधूरा छोड़ देना मनुष्यका लक्षण नहीं है, जो भाग्यमें होगा, उसको कौन रोक सकता है, आप चिन्ता न करें।" पत्र पढ़कर शाहजीको आनन्द और दुःख एक ही साथ हुआ। पुत्रका दृढ़ निश्चय देखकर आनन्द और अपने बन्धनका विचारकर दुःख होना स्वाभाविक था।

शिवाजीने राज्यकार्य-चातुर्यसे पिताको शिघ्र ही मुक्त किया। उनकी इच्छा थी कि, पिता गद्दीपर बैठें और मैं स्वराज्यका प्रबन्ध करूं; पर कालकी कुटिल गतिसे थोड़े ही दिनोंमें शाहजीका देहान्त होगया। उस समय शिवाजीने दुःखित होकर कहा,—"अब इस

संसारमें अभिमानसे मेरा कौतुक करने वाला कोई नहीं है।" जीजाने शिवाजीसे सती होनेकी इच्छा प्रकट की, तब तो शिवाजीके शोकको सीमा न रही। उन्होंने माताके पैर पकड़ लिये और कहा;—"यदि मा! तुम देहत्याग करोगी, तो यह शिवाजी भी शरीरको अग्नि नारायणके अधीन कर देगा।" अन्य लोगोंने भी जीजाको बहुत कुछ समझाया, तब जीजाने अपना विचार दूरदर्शितासे फेर लिया और पुनः पुत्रकी उन्नतिकामनामें वह रातदिन लग गई। जीजाको देशकार्यके आगे किसी बातका महत्त्व नहीं प्रतीत होता था। इसीसे अन्तमें उसने अपनी आँखोंसे महाराष्ट्रके सिंहासनपर अपने पुत्र शिवाजीको देखा। सन् १६७४ जूनकी १६ वीं तारीखको शिवाजीको राज्याभिषेक हुआ और यवनदल जर्जर होकर हिन्दू-राज्य स्वतन्त्र होगया।

मुसलमानोंके भयसे जिस पुत्रको लेकर आज इस किलेमें, कल उस किलेमें भटकना पड़ता था, उसी पुत्रके स्थापन किये स्वराज्य-को देख जीजाको कितना सन्तोष हुआ होगा, इसकी कल्पना पाठक स्वयं कर सकते हैं। प्रतिकूल दशाको अनुकूल बनानेमें कैसा साहस, निश्चय, उद्योग और स्वार्थत्याग करना पड़ता है; इसका उदाहरण शिवाजीके अतिरिक्त संसारके इतिहासोंमें दूसरा नहीं है। धर्म, देश और स्वराज्यके अभिमानका उदय शिवाजीके हृदयमें माताके सहवाससे ही हुआ था। जीजा राजमाता तो थी ही, पर उसके जैसे दृढ़निश्चय, स्वाभिमान, कर्तव्यनिष्ठा और सन्तान-संरक्षण, उच्चविचार आदि गुण अन्य किसी ऐतिहासिक स्त्रीमें नहीं पाये जाते। पुत्रके अड़तालीस वर्षोंतक देशकार्य कर और अपनी आँखोंसे स्वराज्यकी सुन्दर पताका महाराष्ट्रमें फहराती हुई देखकर जीजाने आनन्दसे इस लोककी यात्रा समाप्त की। माताके देहान्तसे महाराजको जैसा दुःख हुआ, वैसा जीवनमें कभी नहीं हुआ था।

वे जन्मपर्यन्त माताका ध्यान करते रहे और चार महीने तक उदासीन अवस्थामें-एकान्तवासमें-थे। मातृशिक्षासे कैसे सुपुत्र उत्पन्न हो सकते हैं, इसका उदाहरण जीजा और शिवाजी हैं। इस बातको न भूलना चाहिये कि, ऐतिहासिक युगमें स्वराज्यकी प्रथम कल्पना जीजाके हृदयमें ही उत्पन्न हुई थी।

कुमारी कृष्णा।

अनहिलवाड़ेके चालूर राजवंशमें कृष्णाकी माता तथा मेवाड़के रघुकुलमें उसके पिताका जन्म हुआ था। जन्म, कुल, जाति, रूप और स्वभावसे सुन्दर इस भारतसुन्दरीका चरित बहुत ही हृदय-द्रावक है। भारतवासी सम्मान-रक्षाके लिये, स्त्रियोंकी इज्जत बचानेके लिये, कैसे साहसी, क्रूर और निःस्वार्थ हो जाते हैं, इसका निदर्शन कृष्णाके चरितसे हो सकता है।

कृष्णा कोमल थी, सुन्दरी थी, मधुर थी। उस स्वर्गीय पारिजातके लिये सभी राजन्य-भ्रमर लोलुप हो रहे थे। कई राजपुत्रोंके कृष्णाके लिये पैगाम आये। अन्तमें राणाजीने मारवाड़के राजकुमारको वर निश्चित कर वाग्दान दिया। दुर्भाग्यसे विवाह होनेके पहिले ही उक्त राजकुमारकी मृत्यु हुई, तब जयपुरके राजपुत्र वीर जगत्सिंहने बहुतसी दौलत नजर कर कृष्णाके लिये उसके पितासे प्रार्थना की और तदनुसार राणाजीने उन्हें वचन भी दे दिया; पर यह बात मारवाड़के द्वितीय राजकुमार मानसिंहको बहुत बुरी लगी। उसने राणाजीसे कहला भेजा कि, मेरे भाईको

आपने अपनी कन्या देनेका वचन दिया था, अब उसका उत्तराधिकारी मैं हूं; कृष्णा मुझीको मिलनी चाहिये। यदि आप किसी दूसरेसे उसका विवाह करेंगे, तो मैं अवश्य ही प्रतिवन्ध करूँगा।

राणाजीके सामने यह नवीन विषम समस्या उपस्थित हुई। उनका वंल होलकर और सिंधियाके अत्याचारोंसे पहिले ही कम हो गया था। इधर कुछ शान्ति हो चली थी, ऐसे समयमें इस घोर संकटके उपस्थित होनेसे वे बड़े व्याकुल हुए और इससे छुटकारा पानेके उपाय सोचने लगे।

सन् १८०४ ई० की लड़ाइयोंमें अंग्रेजोंने सिंधिया और होलकरको कई वार हराया, इसका फल कई निरपराध राजपूतोंको व्यर्थ ही भोगना पड़ा। क्योंकि जब मराठे हार जाते, तो राजपूतोंकी रियासतोंमें लूटपाट करते और राणाओंको कष्ट पहुंचाते थे। इन लड़ाइयोंमें होलकरका खजाना खाली हो गया था, उसे पुनः भरकर अंग्रेजोंसे पुनः सामना करनेके अभिप्रायसे उसने मेवाड़के राणाजीसे चालीस लाख रुपयोंकी मदद माँगी।

राणाजीने बड़े कष्टसे वारह लाख रुपये एकत्र कर होलकरको दिये और कुछ फौज भेजकर भी मदद की, पर उससे होलकरकी तृप्ति न हुई। उसने आठ महीने तक मेवाड़के राज्यमें लूट मारकर उस देशको उजाड़ वना डाला।

इधर सिंधियाने जयपुरके महाराजासे ऐसी ही सहायता चाही थी, पर जयपुर नरेशने सहायता देनेसे इन्कार कर दिया, इससे चिढ़कर सिंधिया जयपुरका वैरी वन गया। जब कृष्णाका टंटा सिंधियाने सुना, तब जयपुर राजकुमारका वदला चुकानेके विचारसे वह मारवाड़के राजासे मिल गया और जयपुरसे युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध हो गया। उदयपुरके एक ओर मारवाड़के राजा तथा सिंधियाकी सेना और दूसरी ओर जयपुरकी सेना लड़नेके लिये

तैयार हुई देख, राणाजी बड़े चिन्तित हुए। दुःखसे उनका कर्तव्य-पथ अन्धकारमय हो गया।

राणाजीने सोचा कि, किसीसे बिना कुछ कहे जयपुरके राजकुमारके साथ कृष्णाका विवाह गुप्तरूपसे कर दिया जाय; पर यह बात सिंधियाके कानों तक पहुंच गई। उसने तुरन्त ही जयपुरके राजपुत्रके साथ लड़ाई छेड़ दी, जिससे विवाह रुक गया। दोनों दलोंमें महीनों तक घोर संग्राम होता रहा, कोई किसीसे हारता नहीं था। दोनोंके असंख्य वीर कट मरे, मगर किसी प्रकार लड़ाई थँभनेकी आशा नहीं देख पड़ती थी। सब लड़ाई रोकनेकी चिंतामें थे, पर किसीको कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। चारों ओर मार-काटके अतिरिक्त कोई शब्द नहीं सुनाई देता था।

राणाजीको दिनमें चैन नहीं, रातको नींद नहीं। सदा चिंतामें पड़े रहनेसे उनका तेज घट गया, शरीर दुर्बल हो गया और विचारशक्ति जाती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि, जो कोई जो कुछ कह देता, वही वे करने लगे।

क्रूरतामें मुसलमान जाति प्रसिद्ध है। राणाजी हर एक मनुष्यसे पूछते कि, इस दशामें हम क्या करें? दैवयोगसे एक दिन अमीरखान नामक पठान उनसे मिलनेके लिये आया। स्वभावके अनुसार राणाजीने उससे भी उपाय पूछा। उसपर उस नीच पठानने जो उपाय बताया, उसके लिखनेमें लेखनी काँपती है। उसने कहा,—"ऐसे अवसरमें कन्याका वध करा देना चाहिये। लड़ाईकी जड़ ही काट देनेसे सब मामला ठंढा हो जायगा। रहेगा बाँस न बजेगी बांसरी।" इस सलाहसे राणाजी लाल पीले हुए, पर जब उसने जोर देकर कहा कि, यदि आप अपने राज्यमें शान्ति रखना चाहें, आपसके झगड़े मिटाना चाहें, तो यही एक उपाय है। तब तो राणाजी भी सहमत हो गये और उस पठान,—नहीं-

नहीं कृष्णाके कृतान्त—के उपदेशानुसार अपने कलेजेके टुकड़ेका—उस निरपराध कोमल बालिकाका—वध करानेपर उद्यत हो गये।

महाराज दौलतसिंह कुमारी कृष्णाके सम्बन्धी और राणाजीके सामन्त थे। उन्हें इस कामके करनेकी राणाजीने आज्ञा दी, पर वे राजी न हुए। तब जवानसिंह नामक एक दासीपुत्रको उस काम-पर नियुक्त किया। उसे समझाया कि, यह काम साधारण मनुष्यके हाथसे न होना चाहिये। घरके भेद खुलनेसे राज्यकी हानि है। इससे यह काम तुमही करो। बड़ी कठिनाईसे स्वामिभक्त जवान-सिंहने राजाज्ञा स्वीकार की सही, पर छूरा लेकर जब वह कृष्णाके सामने खड़ा हुआ, तब उसका कोमल, निष्कलङ्क और मधुररूप देख कर, मूर्छित हो, गिर पड़ा। कठोर और निर्जीव छूरेको भी बालिकाके सुकुमार अन्तःकरणको छूते लज्जा हुई। सावधान होनेपर जवान-सिंह वहांसे भाग गया।

सर्वाङ्गसुन्दर बालिकाके शरीरमें आनन्दसे क्रीड़ा करनेवाले प्राणोंको खंजरसे निकाल बाहर करनेकी किसीको हिम्मत न हुई, तब राणाजीने विषप्रयोग करनेकी आज्ञा दी। यह काम एक दासीको सौंपा गया। जब विषका प्याला कृष्णाके पास पहुँचा, तब उसने पिताको प्रणाम कर परमात्मासे उनके मंगलके लिये प्रार्थना की और आनन्दसे विष ग्रहण किया।

जब इस बातका महारानीको पता लगा, तब उनके दुःखका पारावार नहीं रहा। शोकसे वे पागल हो गईं। परन्तु कृष्णाको किसी प्रकारका शोक नहीं था। वह बराबर माताको समझाती थी कि, मा! तू क्यों रोती है? अभी मेरे मर जानेसे मेरी भवि-ष्यत्की विपत्तियाँ टल जायंगीं। राजपूतोंकी कन्याओंको मृत्युसे डरना न चाहिये। तू ही न कहती थी कि, राजपूत बालाएँ संसार-में सुख भोगनेके लिये नहीं उत्पन्न होतीं? फिर तू ही शोक करेगी,

तो अन्य राजपूत स्त्रियाँ क्या कहेंगी? बिचारी बालिका सन्तानप्रेमको क्या जाने? माताके हृदयपर जो कुछ बीतती, वही जानती होगी।

थोड़ी देरमें कृष्णाको एक छांट हुई, जिससे सब विष गिर पड़ा। राणाजीने पुनः दूसरा विष तैयार कराकर भेजा, उसकी भी वही दशा हुई; यह देखकर फिरसे तीव्र विषका प्याला पिलाया, फिरसे छांटके साथ निकल गया। राणाजीके घरानेमें जो एक प्रकारकी दैवी शक्ति है, उसने तीन बार निरपराध कन्याको मृत्युसे बचाकर जता दिया कि, अन्यायका साथ मृत्यु भी नहीं देता। पर उस नराधम पठानको इतना समझनेकी कब शक्ति थी? उसने राणाजीको उत्तेजना देते हुए कहा,-"विष बहुत तीव्र होना चाहिये। साधारण विषोंसे काम न चलेगा।" चौथी बार अत्यन्त तीव्र विष कृष्णाको पिलाया। इस प्यालेको पीते समय कुमारी कृष्णाने भगवान् भक्तभयहारी कृष्णसे प्रार्थना की,—"प्रभो! परीक्षा बहुत हो चुकी। अबकी बार पिताजीकी इच्छा पूर्ण करो और मुझे अपनावो, जिससे सर्वत्र शान्ति रहे।" दो चार मिनटोंमें कृष्णाको नींद आने लगी, माताकी गोदमें सिर रखकर वह ऐसी सोई कि, फिर न उठी।

इकलौती कन्याके इस प्रकारके वधसे महारानी पागल हो गयीं। उनके दुःखकी सीमा न रही। इस भयानक दुःखका परिणाम यह हुआ कि, थोड़े ही दिनोंमें उनका भी देहान्त हो गया। जब यह बात राजपूतानेमें फैली, तब सबभर शोक छा गया। सब उस पठानको कोसने लगे, पर अब कोसनेसे क्या होता है? कुमारी कृष्णा इस संसारसे कूच कर गयी। भारतकी कन्याएँ कैसी पितृभक्त और शान्तिप्रिय होती हैं, इस बातको प्राणोंकी पर्वाह न करके कोमल कृष्णाने अपने उदाहरणसे दिखा दिया। राजपूत

घरानेके स्त्रीपुरुष तथा राजपूत सिपाहियोंको जब कभी कृष्णाके शोकजनक और हृदयविदारक अन्तसमयका स्मरण होता है, तब वे रोने लगते हैं और कृष्णाके धैर्य्यवर्णनका करुणापूर्ण गान गाते हैं।

—०:०—

लीलावती।

—:०:—

आठ नौ सौ वर्ष पहिले दक्षिण भारतमें भास्कराचार्य्य नामक गणित और ज्योतिष विद्यामें निपुण एक प्रसिद्ध पण्डित हुए, उन्हींकी एक मात्र कन्या लीलावती थी। लीलालावतीके भाग्यकी गणना कर,भास्कराचार्यने जाना कि,विवाह होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें वह विधवा होगी। भास्कराचार्य बड़े विचारमें पड़ गये कि, अब क्या करना चाहिये? सोच विचार कर उन्होंने स्थिर किया कि, ऐसा मुहूर्त देखकर कन्याका विवाह करना चाहिये, जिसमें वह विधवा न हो। बहुत माथा पचानेपर इस प्रकारका एक लग्न मिला और भास्कराचार्यने उसी दिन कन्याका विवाह सुयोग्य वरके साथ करना निश्चत किया।

वह दिन आ पहुंचा। चारों ओर उत्सव मनाया जाने लगा। लोग अपने अपने कामोंमें लगे हुए थे, लीलावती भी सखियोंके साथ किलोल कर रही थी, यहाँ वहाँ घूमकर वह घड़ीके पास बैठ गई और सुमुहूर्तकी राह देखने लगी। उन दिनोंमें आजकलकी तरह 'खिसमेड्' घड़ियाँ नहीं चली थीं, लोग पानीकी घड़ियोंसे काम लेते थे अर्थात् एक बड़े कटोरेमें छोटासा छेद कर उसे पानीके बड़े बरतनमें छोड़ देते थे। सूराखसे पानी भर, जब कटोरा डूब जाता,तो एक घड़ी होती, इस अन्दाजका वह कटोरा बनाया जाता

था। यह घड़ी सूर्योदयसे पानीमें छोड़ी जाती थी। अस्तु, हम कह चुके हैं कि, लीलावती घड़ीके पास बैठी बैठी कौतुक देख रही थी। उसने सिरसे पैर तक सब अङ्गोंमें विवाहके योग्य अलङ्कार धारण किये थे। अकस्मात् उसके सिरमौरसे एक छोटासा मोती टूटकर घड़ीमें गिर पड़ा, जिससे घड़ीमें पानीका आना बंद हो गया, पर इसका किसीको पता न लगा।

घण्टों लोग एकटक लगाकर बैठे रहे, परन्तु न पानी आता और न घड़ी डूबती है, यह देखकर सब सचिन्त हुए। अनुसन्धान लगानेसे ज्ञात हुआ कि, लीलावतीके सिरमौरसे टूटे हुए मोतीने अपने साथ इस अबोध बालिकाके सौभाग्यरविको भी जलमें डुबो दिया। कोई स्थिर न कर सका कि, मोती कब गिरा और जलका आना कबसे बन्द हुआ। भास्कराचार्यको लग्न टल जानेसे अत्यन्त दुःख हुआ।

विधाताके विधानका कौन उल्लङ्घन कर सकता है? भवितव्यताको कौन मेट सकेगा? जिसके कर्ममें जो लिखा होगा, वह भोगे विना गति नहीं है। यही सब सोच, भास्कराचार्यने आगा पीछा नहीं देखा और निश्चित वरके साथ लीलावतीका विवाह कर दिया। भविष्यत् असत्य नहीं हो सकता। कुछ दिनोंमें लीलावती विधवा हुई, फिर पिताके दुःखका कहना ही क्या है?

पतिपुत्रसे वञ्चिता लीलाके लिये लीलामय संसार शून्य होगया। कन्याका जीवन अब कैसे कटेगा, इसी विचारमें भास्कराचार्य व्याकुल थे। अन्तमें उन्होंने उसे गणित और ज्योतिष शास्त्र पढ़ाना स्थिर किया। लीलाने भी ध्यान लगाकर पढ़ना आरम्भ कर दिया और थोड़े ही दिनोंमें वह उक्त विषयोंमें पूर्ण पण्डिता हो गई।

पाटीगणित, बीजगणित और ज्योतिष-विषयका 'सिद्धान्त शिरोमणि' नामक एक प्रचण्ड ग्रन्थ भास्कराचार्यने बनाया है।

इसमें गणितका अधिकांशभाग लीलावतीका रचा है। पाटी-गणितके अंशका नाम ही भास्कराचार्यने 'लीलावती' रक्खा है। पिता प्रश्न करते और लीला उत्तर देती, इसी प्रकारका यह अंश बना है। पश्चिमीय देशोंमें भी हिन्दुगणितशास्त्र 'लीलावतीके नियम' इस नामसे प्रसिद्ध और प्रचलित है। वे इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। सुना जाता है कि, आठ नौ सौ वर्ष पहिले लीला-वती जैसी एक हिन्दु बालविधवाने जो सिद्धान्त लिखे, वे सब पश्चि-मीय देशवासी कुछ ही वर्ष पहिले समझसके हैं।

जिस कामनासे भास्कराचार्यने कन्याको शिक्षा दी, उनकी वह कामना अल्पकालमें ही लीलाने पूर्ण कर दी। पति-पुत्रोंके साथ रहकर असंख्य स्त्रियाँ जन्म पाती और मर जाती हैं, पर जैसा काम लीलाने किया, वैसा कितनी स्त्रियोंने कर दिखाया? विधवा बालि-काके जीवनको पिताने जैसा आदर्शस्वरूप सुधारा, वैसा कितने पिता सुधारते हैं? हमारे देशमें कितनीही बालविधवाएँ निठल्ली बैठी बैठी मनों अन्नका व्यर्थ नाश करती हैं, उनके पालकोंको क्या लीलावतीका उदाहरण उचित नहीं ज्ञात होता? शून्य जीवनको पूर्ण करनेवाली विद्यासुधा अपनी दुःखी और पीड़ित कोमल बालि-काओंको पिलाना क्या उनके हितचिन्तकोंका कर्तव्य नहीं है? मनुष्य मर जाता है, पर उसकी कीर्ति रह जाती है। लीलाने गणितके सिद्धान्त निकाल कर संसारपर अनन्त उपकार किये और अपनी जाति, कुल तथा देशका गौरव बढ़ाया है। हमारी विधवा बहिनें लीलावतीका और उनके पालक या हितचिन्तक भास्कराचार्यका अनुकरण करें तो क्या देशका मुख उज्ज्वल न होगा? ईश्वर जो करता है, मनुष्योंके कल्याणके ही लिये। दुःखोंसे डरना नहीं, किन्तु उनका अच्छा उपयोग करलेना चाहिये। स्मरण रहे कि, लीलाकी उन्नति वैधव्यके कारण हुई थी।

रानी कुंवर साहब।

पंजाबमें पटियाला नामक एक सिक्ख राज्य है। रानी कुंवर साहब महाराजा पटियालाकी कन्या और सरदार जयमलसिंग कन्हैयाकी पत्नी थीं। दिनानगरकी उत्तरमें 'बारी दुआबा' की अधिकांश भूमिपर सरदार जयमलका अधिकार था। कुंवर साहब चतुर, राज्य-कार्य-निपुण तथा शूर थीं और जिस समयका हाल हम लिखते हैं, उस समय पटियालाकी गद्दीपर उनका भाई साहबसिंग नामक अत्यन्त भीरु, व्यसनी और दुराचारी राजा विराजमान था। उसके दुर्लक्ष्यसे राज्यमें अन्धाधुन्धी मच रही थी, इससे प्रजा बड़ी असन्तुष्ट थी। यह बात नहीं थी कि, राजा इस बातसे अनभिज्ञ था, परन्तु दुर्व्यसनोंके लग जानेसे सब कुछ देखकर भी उसे आंखें बन्द कर लेनी पड़ती थीं। नशा उतरनेपर राज्यके सुप्रबन्धके विषयमें कभी कभी वह सोचता था। एक दिन उसे अच्छी युक्ति सूझी। उसने बहिन कुंवर साहबको लिखा,—"मेरे राज्यकी बहुत विशृंखलता हो गयी है, इस लिये मैं तुझे मुख्य-प्रधानका पद देना चाहता हूं। यदि तू इसे कृपाकर स्वीकार कर लेगी, तो अपने पिताकी गद्दी सम्हालनेका यश तुझे प्राप्त होगा।" कुंवर साहबने भाईका कहना इस शर्तपर स्वीकार कर लिया कि, मेरे किये प्रबन्धमें किसीको हस्तक्षेप करनेका अधिकार न होगा, मैं जैसा चाहूंगी सुधार करूंगी। राजा साहबसिंगने शर्त कबूल कर ली और १७९३ ई० में रानी कुंवर साहबने पटियाला राज्यका भार अपने ऊपर लेलिया। कुछ ही दिनोंमें रानी कुंवरसाहबके सुप्रबन्धसे सर्वत्र शान्तता हो गयी और लोग अपने अपने कार्य नियमितरूपसे करने लगे। सभी प्रजा रानीकी

सुश्रृंखल कार्यप्रणालीसे प्रसन्न थी। जो लोग पहिले राज्यके शत्रु थे, वे ही अब मित्र बन गये।

यदि परमात्माकी कृपा हो, तो जो काम पुरुष भी नहीं कर सकते, वे स्त्रियां सहजमें कर लेती हैं। रानी कुंवर साहब इन्हीं स्त्रियोंमेंसे एक थीं। इधर रानी अपने भाईके राज्यका प्रबन्ध कर रही थीं, उधर उनके पतिको फतेहसिंग नामक चचेरे भाईने कैद कर लिया। फतेहसिंह और जयमलका पहिलेसे वैर-भाव था। पर रानीके आगे उसकी कुछ नहीं चलती थी। जब देखा कि, रानी नहीं है, तब भाईको कष्ट देना उसने आरम्भ किया। रानीको पता लगते ही वह पटिआलेकी फौज लेकर पतिका छुटकारा करनेके लिये निकली। पहिले ही युद्धमें उसने फतेहसिंगको परास्त किया और जयमलको मुक्त कर पटियाले लौट आयी।

उसे लौटे बहुत दिन नहीं हुए थे कि, १७६४ ई० के आरम्भमें मराठोंने पटियालेपर चढ़ाई की। मराठे सरदारोंने राजासे कर लेना चाहा, क्योंकि कई सिक्ख राज्योंने मराठोंको कर देना स्वीकार कर लिया था; पर रानीने यह बात अपमानकी समझी और उसने कहला भेजा कि, हम कर न देंगे। रानीने आसपासकी रियासतोंसे मदद मांगी और ७-८ हजार सेना एकत्र कर मराठोंसे सामना किया। मराठोंका बल अधिक था, इससे सिक्ख हारते गये। अन्तमें रानीने मराठोंसे राजनीतिकी एक चाल खेली। मराठे विजयसे उन्मत्त हो गये थे। एक दिन रातके समय रानीने अचानक मराठोंपर धावा किया, मराठे घबड़ा गये। यद्यपि मराठोंकी इस लड़ाईमें बहुत हानि नहीं हुई, तथापि रानीकी युद्ध-चातुरीसे वे डर गये और उन्होंने पटियालेसे सुलह करली।

पञ्जावके अन्तर्गत नाहन नामक एक राज्य है। वहांके लोगोंने राजद्रोह करना आरम्भ किया। उन विरोधियोंका दमन करना

राजाकी शक्तिके वाहर था। उसने रानी कुँवर साहबसे सहायता चाही। रानीके नामसे लोग कांपते थे। रानी फौज लेकर शीघ्रही नाहन राज्यमें पहुंची। उसके पहुंचते ही सब विरोध मिटगया। रानीने तीन महीने वहां रहकर राज्यका सुप्रबन्ध पुनः पहिलेकी तरह कर दिया। इस कार्यसे उसकी बड़ी कीर्ति हुई और नाहनराजने उसे बहुतसी अनमोल चीजें भेंट कीं।

दो वर्ष बाद रानीकी सहायताकी सिक्ख सरदारोंको पुनः आवश्यकता हुई। हिन्दुस्थानमें कई सदियोंसे आपसमें लड़ाई झगड़े चल रहे थे, इससे लाभ उठाकर जार्ज टामस नामक अंग्रेज़ने कुछ फौज इकठ्ठी कर,तलवारके ज़ोरपर अपने भाग्यका रास्ता खुला करना आरम्भ कर दिया था। उसने हांसी और हिसार इन दो प्रान्तोंपर सम्पूर्णरूपसे अधिकार कर लिया और अब उसकी दृष्टि सिक्ख राज्योंपर पड़ी। इस समय उसके पास आठ पलटनें, एक हज़ार घुड़सवार और पचास तोपें थीं। बड़े बड़े सिक्ख सरदार लाहोर चले गये हैं, यह मौका देख उसने पहले झिन्द राज्यपर आक्रमण किया। सिक्ख सरदारोंको इसका पता लगते ही वे लाहोरसे लौटकर टामससे युद्ध करने लगे; पर जयके कोई चिन्ह नहीं देख पड़ते थे। यदि इस दुर्धर प्रसङ्गमें रानी कुंवर साहबकी मदद न मिलती, तो सिक्खोंको झिन्दसे हाथ धो बैठना पड़ता।

रानीके आते ही टामसने अपनी फौज वहांसे हटाली और वह 'मेहम' की ओर चल पड़ा। सिक्खोंने वहाँपर भी उसका पीछा किया। टामस मेहमसे भागा, पर उसका यह भागना शत्रुओंको केवल धोखा देनेके लिये था। सिक्ख विजयकी खुशीमें रातको भोज उड़ा रहे थे, टामस एकाएक उनपर टूट पड़ा। रानीकी सेनाके अतिरिक्त सब सेना गाफिल थी। टामसके इस आक्रमणसे सिक्ख सेना तितर बितर हो गयी और सरदार-सरदारोंमें लागडांट

बढ़ने लगी। टामस यदि रानीके बलका भय न करता, तो सिक्खोंपर विजय कर लेता; पर एक तो वह डर गया और दूसरे इस लड़ाईमें उसकी हानि भी बहुत हुई। उसे यह डर था कि, बाकी फौज यदि कट जायगी और सिक्ख शत्रु बन जायँगे, तो मराठोंका आक्रमण होनेपर मेरा कुछ भी बस न चलेगा। दूरदर्शी टामसने सिक्खोंसे सुलह कर ली। इस सुलहमें रानी कुंवर साहब मध्यस्थ थीं। यदि रानीकी तरह सब सरदारोंकी फौज गाफिल न रहती, तो टामसको उस रातमें मार भगाना कठिन नहीं था, परन्तु जैसा होनहार था, हुआ।

सालोंसे लड़ते लड़ते उकताकर रानीने कुछ दिन विश्राम करनेका निश्चय किया। पटियालेका प्रबन्ध उत्तम था ही। रानी राजकाजसे निश्चिन्त हो; एकान्तवास करने लगी। इधर राजा साहबसिंहको मुँहलगे लोगोंने रानीके बारेमें उलटी सीधी समझाना शुरू किया। राजाको विश्वास हो गया कि, कुंवरसाहब एक दिन मुझे मारकर पटियालेकी रानी बनेगी। वह बात बातमें उसका अपमान करने लगा। यह देख कुंवरसाहब अपनी जागीर थिरयनमें चली गयीं। राजाने वहांसे भी हट कर फतेहगढ़ नामक नगरमें पतिके पास चले जानेकी उसे आज्ञा दी। अबकी बार चिढ़कर रानीने उत्तर दिया कि, मैं यहांसे नहीं हटूंगी, तुम्हें जो करना हो, करलो।" अविचारी राजा रानीके उपकारोंको भूलकर उससे लड़ाई करनेपर उतारू हुआ। वृद्ध मन्त्रियोंने उसे समझाया कि, रानी बड़ी चतुर है, आपने कभी लड़ाई की नहीं है, उससे हारनेपर आपकी बड़ी बदनामी होगी। राजा कुछ समझा और यह बहाना कर उसने रानीसे कहलाया कि, हम तुमसे युद्ध करने नहीं, किन्तु अपने अपराधोंकी मार्जना कराने आये थे। हमारे अपराधोंको क्षमा-कर पुनः पटियालेमें चलनेके लिये हम तुमसे प्रार्थना करते हैं।

हज़ार हुआ तो राजा साहबसिंग रानी कुंवर साहबका सहोदर भाई ही था। उसका विश्वास कर रानी उसके साथ हो ली, पर कृतघ्न भाईने उसके साथ दगा किया और थोड़नके किलेमें उसे कैद कर लिया। इस कृतघ्नतासे रानीको अत्यन्त दुःख हुआ। भाई-पर आज तक किये हुए उपकारोंका यह बदला पाकर उसने प्रण कर लिया कि, आजसे राजाका मुँह न देखूँगी। रानी चतुर थी, दासी-की पोशाक पहिन कर किलेसे भाग गयी और थीरियनमें रहने लगी। जयमलका उसपर प्रेम था, दोनोंने अपना अन्तिम जीवन आनन्दसे व्यतीत किया। सन् १७६६ ई० में रानी कुंवर साहबकी मृत्यु हुई।

मनुष्य पाप करता है, तब वह समझता है कि, मुझे कोई नहीं देखता; पर अन्तरात्मा सदा साक्षी रहता है। पटियालेके राजाकी यही दशा थी। बहिनके साथ किये हुए असद्व्यवहारोंका स्मरण कर, वह आजीवन पश्चात्तापकी अग्निमें जलता रहा। थोड़े ही दिनोंमें उसका देहान्त हुआ। प्रजा रानी कुंवरसाहबके लिये वर्षोंतक रोती रही। ऐसी चतुर, सुन्दर और कार्यकुशल स्त्रियाँ संसारमें कम होती हैं।

देवी अहिल्या बाई।

भारतमें ऐसा कौन हिन्दू होगा, जो देवी अहिल्याका नाम नहीं जानता? एक समय मराठोंका साम्राज्य लगभग समग्र भारतमें स्थापित हो गया था। हिन्दुपदपातशाही स्थापन करनेका आरम्भ श्रीछत्रपति शिवाजी महाराजने किया और उसकी पूर्त्ति बाजीराव पेशवाने की। बाजीरावके पास अनेक

स्वामिभक्त वीरपुरुष थे। उनमें दमाजी गायकवाड़, राणोजी सिन्धिया और मल्हारराव होलकर प्रधान थे। उक्त वीरोंकी शूरता और योग्यता देख, बाजीरावने गायकवाड़को बड़ोदा प्रान्त, सिन्धियाको ग्वालियर प्रान्त और होलकरको इन्दोर प्रान्तकी जागीरें प्रदान की थीं। हमारी चरित्र-नायिकाका सम्बन्ध होलकर घरानेसे है।

दक्षिणमें 'होल' नामक एक क्षुद्र ग्राम है। वहांपर मल्हारराव पहिले गँडेरियेका काम करते थे। आगे वे अपने मामाके यहाँ फौजमें भरती हो गये। मामा पेशवाओंके सरदार थे। मल्हाररावकी योग्यता देख, पेशवाने उन्हें अपनी फौजमें ले लिया। क्रमशः मल्हाररावने बाहुबल और युद्ध-चातुरी दिखाकर इन्दोरकी जागीर पेशवाओंसे प्राप्त की। १७ वीं सदीके समाप्त होनेपर मराठोंने और भी जोर पकड़ा। हरएक प्रान्तमें सेना भेजकर वे विजय सम्पादन करने लगे। एक दिन गुजरातके किसी विद्रोही-दलका दमन कर, मल्हारराव पूनेकी ओर स्वामीकी सेवामें पहुंचनेके लिये निकले। रास्तेमें पाथरड़ी नामक स्थानके एक शिव-मन्दिरमें उन्होंने मुकाम किया। मन्दिरमें एक ग्रामीण पाठशाला थी, वहां कई बालक बालिकाएँ पढ़ती थीं। मल्हारराव शिक्षकसे वार्तालाप कर रहे थे, इतनेमें वहाँ करीब ९ वर्षकी एक बालिका आयी। वह ऐसी सुन्दर तो नहीं, पर अत्यन्त तेजस्विनी थी। उसे देखकर शिक्षकसे मल्हाररावने पूछा,—"यह किसकी बालिका है?"

शिक्षकने कहा,—"यह इसी ग्राममें रहनेवाले आनन्दराव सिन्धिया नामक एक भद्रपुरुषकी कन्या है, इसका नाम अहिल्या है। आनन्दरावको कोई सन्तान नहीं था। एक दिन स्वप्नमें भगवतीने आकर उन्हें एक कन्या दी और कहा,-"मैं ही कन्यारूपमें तुम्हारे यहां जन्म लूँगी।" उस दिनसे ठीक नौ महीने बाद अहिल्याका जन्म हुआ। वास्तवमें अहिल्या ऐसी सुशीला और

बुद्धिमती है कि, उसकी बुद्धिको कोई बालक नहीं पाता। इसकी तेजस्विता अपूर्व है।"

मल्हाररावके मनमें अहिल्याको देखकर एक प्रकारकी श्रद्धा उत्पन्न हुई। उन्होंने आनन्दरावको बुलाकर कहा,—"इसे मेरे बेटेके साथ ब्याहोगे?" आनन्दरावको पहिले तो यह दिल्लगी जान पड़ी, पर पीछेसे मल्हाररावके समझानेपर उसे विश्वास हुआ और यथासमय अहिल्याका विवाह मल्हाररावके बेटे खण्डेरावके साथ हो गया।

राजवधू होनेपर भी दरिद्रकन्या अहिल्याने कभी गर्व नहीं किया। पति, सास, ससुरकी सेवा करना और शेष समयमें राज्यव्यवस्था सम्बन्धी कार्य्य तथा पूजापाठ करना ही उसका नित्य-कर्म था। अपने गुणोंसे सास ससुरको अहिल्याने ऐसा वश कर लिया था कि, वे उसे माताकी तरह मानते थे। सिंहके समान पराक्रमी, रण दुर्जय, तेजस्वी और दृढ़चेता मल्हारराव अहिल्याके आगे बालकके समान अनुगत हो गये थे। ऐसा कभी नहीं होता कि, अहिल्याने कोई बात कही और मल्हाररावने काट दी। रुग्णा-वस्थामें मल्हाररावकी सेवा सुश्रूषा जैसी अहिल्या करती थी, वैसी चिकित्सक या मन्त्री क्या, उनकी स्त्री भी नहीं कर सकती थी। अहिल्या खाली कभी नहीं बैठी, जब देखो तब किसी उपयुक्त काम करनेमें ही व्यस्त रहा करती थी। काम करना ही उसकी खुराक थी। खाली बैठनेसे मनुष्य निकम्मा हो जाता है, यह बात वह जानती थी। आजकलके अमीरोंकी स्त्रियोंकी तरह अहिल्याने केवल अन्नका नाश करनेके और भोगविलासके लिये जन्म नहीं लिया था, किन्तु उसका जीवन परोपकारके लिये था। अहिल्या जन्मसे ही भगवद्भक्त थी। उसके पूजापाठसे गुरुजन असन्तुष्ट न हों, इस लिये लिखना पढ़ना या देवसेवा वह एकान्तमें बैठकर करती थी।

इसी प्रकार अहिल्याके और भी नौ वर्ष आनन्दसे कटे। इस अवसरमें उसे एक कन्या और एक पुत्र हुआ। परन्तु ईश्वरसे उसका सुख नहीं देखा गया; या यों कहिये कि, परमात्माने उसपर संकटोंकी आग बरसाकर उसकी सोनेकी तरह तपाकर परीक्षा ली! अकस्मात् संग्रहणी रोगसे युवराज खण्डेरावकी मृत्यु हुई और अहिल्याके लिये संसार सूना हो गया! अहिल्या आत्मयज्ञके लिये प्रस्तुत हुई, पर सास और ससुर उसके पैरों गिरकर बालकोंकी तरह रोने लगे। उन्होंने कहा,—"मा! हम तुझे 'मा' कहकर पुकारते हैं। तू हमें छोड़ जायगी तो हम कैसे जियेंगे? हमारा खण्डू चल बसा, अब किसे देखकर हम धीरज धरेंगे? अन्धेकी लकड़ी, कृपणका धन, आँखोंकी पुतली, हृदयका प्राण खण्डूकी जगह हमें अब तू ही है! अहिल्या इन वृद्धोंकी बात तूने आज तक नहीं टाली, अब ऐसे कठिन समयमें तू हमारा साथ छोड़ेगी?"

मल्हारराव और उनकी स्त्रीके पत्थरको भी पिघलानेवाले उपर्युक्त वाक्य सुनकर कौन ऐसी कठोर स्त्री होगी, जो कहना न मानेगी? फिर अहिल्या तो आज्ञापालक साध्वी थी। उसने दोनोंके पैर पकड़कर करुणस्वरसे कहा,—"महाराज! आप ऐसे हृदय-द्रावक शब्द क्यों कहते हैं? आप मेरे इष्टदेव अर्थात् पूज्य हैं। इस जन्ममें नहीं, तो अन्य जन्ममें मैं अवश्य ही अपने स्वामीसे मिलूँगी। दुःख इसी बातका है कि, इस जन्ममें पतिसेवासे मैं वञ्चित रही। जो हो, आपकी आज्ञा उल्लंघन करना मेरा धर्म नहीं है। यह जीवन आप दोनोंकी सेवासे ही सार्थक होगा। भगवान्की ऐसी ही इच्छा हो, तो उसे कौन रोक सकता है?"

अहिल्याकी प्रतिज्ञा शिथिल हुई देख, दोनोंको इतना आनन्द हुआ कि, क्षणमात्रके लिये वे पुत्रवियोगके दुःखको भूल गये। पुत्रकी उत्तरक्रिया कर, शीघ्र ही मल्हाररावने अहिल्याको युवराजके संपूर्ण

अधिकार सौंप दिये और राजकाजमें उसे सहयोगिनी बना लिया। आयव्यय, आभ्यन्तरिक शासन तथा अन्यान्य कई विभागोंका काम अहिल्या निपुणतासे करने लगी। अहिल्याको राज्यप्रबन्धमें जैसा जैसा अनुभव और ज्ञान होता गया, वैसे ही मल्हाररावने उधरसे धीरे धीरे अपना हाथ खैंचना प्रारम्भ किया। यहां तक कि, सन् १७६१ में पेशवाओंके सरदार बन, मल्हारराव जब पानीपतकी लड़ाईमें गये, तब राज्यका सब भार उन्होंने अहिल्यापर ही छोड़ दिया था। उन दिनोंमें अहिल्याने राज्यका इतना अच्छा प्रबन्ध रक्खा कि, वैसा शायद मल्हारराव भी नहीं रख सकते। लड़ाईसे लौट, राज्यकी सुव्यवस्था देखकर मल्हाररावने दरबारमें अहिल्याकी बड़ी प्रशंसा की और उसी दिनसे अहिल्या राज्यकी सर्वस्वाधि-कारिणी बनायी गयी। मल्हारराव अत्यन्त क्रोधी थे, पर अहिल्याके विषयमें उनकी इतनी श्रद्धा बढ़ी चढ़ी थी कि, यदि वे किसी समय अन्याय करनेपर उद्यत होते और अहिल्या रोक देती, तो शान्त हो जाते थे।

सन् १७६५ में मल्हाररावका देहान्त हुआ। उनके पश्चात् अहिल्याने अपने पुत्र मालेरावको गद्दीपर बैठाया। कीचड़में कमल और चन्द्रमामें कलङ्क होता है। इसी तरह साधारण कुलमें अहिल्या जैसी देवी और अहिल्या जैसी सती स्त्रीके गर्भसे मालेराव जैसा कलङ्कस्वरूप पुत्र उत्पन्न हुआ था। अहिल्या जितनी सच्चरित्रा, मालेराव उतना ही दुश्चरित्र था। उसकी उच्छृङ्खलता और कदा-चरणकी कथा सुनकर कोई नहीं कह सकता कि, वह मनुष्य था। अहिल्या गौ-ब्राह्मण और देवताओंकी परम भक्त थी। उसके यहां सैकड़ों ब्राह्मण, साधु प्रतिदिन आते और दान दक्षिणा पाते थे। मालेराव शराब पीकर कभी उन्हें बेतोंसे मारता, कभी सांप बिच्छू भरे हुए घड़ोंमें उनसे रुपये निकाल लेनेके लिये आज्ञा करता, कभी

किसीको सांडोंकी तरह गरम लोहेके छड़ोंसे दाग देता और कभी कभी तो किसीकी चमड़ी भी उतरवा लेता था। मालेरावके इन अद्भुत और भयङ्कर कार्योंसे अहिल्या तथा सारी प्रजाको असह्य दुःख होता, पर किसीका कुछ वस नहीं चलता। क्योंकि उसे यदि कोई वृद्ध पुरुष उपदेश करने जाता तो उसका वह नौकरोंसे अपमान कराता था।

क्रमशः मालेरावके पापोंका घड़ा भर गया। एक दिन किसी निरपराध कारीगरकी उसने हत्या की। भाग्यवशात् वह कारीगर मालेरावके सिर भूत होकर सवार हुआ। बुरे कामोंकी कौन कहे, मालेरावको खाना पीना भूल गया। भूतने उसे ऐसा पछाड़ा कि, थोड़े ही दिनोंमें उसकी आत्मा शरीरसे कूच कर गयी। कुपुत्र होता है, पर कुमाता नहीं होती, यह शङ्कराचार्य्यका कथन अक्षरशः सत्य है। मालेरावकी पिशाच-बाधा दूर होनेके लिये अहिल्याने बहुत उपाय किये, प्रेतात्माके हेतु एक अलग मन्दिर बनवाया, पर कोई फल नहीं हुआ; अभागा मालेराव प्रेतात्माका भक्ष्य बना। उसकी मृत्युसे शोकके बदले प्रजाको आनन्द ही हुआ।

बाजीरावका देहान्त हो गया था। पानीपतकी लड़ाईमें विश्वासराव और सदाशिवराव भी मारे गये थे। अब पेशवाओंकी गद्दीपर तरुण माधवराव विराजमान थे। माधवराव सच्चरित्र, धार्मिक और राजनीतिज्ञ पुरुष थे; पर उनके चाचा रघुनाथराव अत्यन्त अविचारी, कठोर और मूर्ख थे। इन्दोर-राज्यके प्रधान मन्त्री गंगाधर यशवन्तके भड़काने पर वह अहिल्याको पदच्युत कर इन्दोर पर अधिकार करनेके लिये तैयार हो गये। गंगाधर यशवंत लोभी, स्वार्थी और कुटिल मनुष्य था। वह पेशवाओंसे मिल गया। इन्दोर राज्य पेशवाओंके अधीन था। अविचारी

रघुनाथराव माधवरावसे बिना कुछ कहे गंगाधर यशवन्तके कहनेमें आ गया।

अहिल्याको पता लगनेपर उसने बड़ोदेके गायकवाड़ और नागपुरके भोसलेको लिखा,—"पेशवाओंसे हमारा आपका समान सम्बन्ध है। इस समय यदि आप हमें सहायता न करेंगे, तो आज मुझपर बीतती है, कल आप लोगोंपर भी बीतेगी," दोनोंने अहिल्याकी यथार्थ बातको समझ, फौज लेकर इन्दोरकी ओर चलना स्थिर किया। यथा-समय गायकवाड़, भोसले तथा अन्यान्य राजा ससैन्य इन्दोर पहुंच गये।

इधर अहिल्याने अपने सरदारोंसे ओजस्विनी भाषामें कहा,—"यह राज्य मेरे परमपूज्य श्वशुर मल्हाररावने अपनी कलाईके जोरपर प्राप्त किया है। हम पेशवा सरकारके अधीन हैं इसमें सन्देह नहीं, पर उन्हें बिना कारण हमारा राज्य छीन लेनेका कोई अधिकार नहीं है। मुझे अबला जानकर रघुनाथराव मेरे साथ अन्याय करना चाहते हैं, पर वे मनमें अच्छी तरह समझलें कि, मैं सामान्य अबला नहीं, वीरस्नुषा और वीरवधू हूँ। मल्हाररावके पीछे इतने दिनों तक मैंने बिना किसी प्रबल शक्तिकी सहायताके इन्दोरका राज्य नहीं किया है। जिस दिन मैं तलवार लेकर रणमें खड़ी हो जाऊँगी, पेशवाओंका सिंहासन तक हिला दूँगी। रघुनाथराव न जाने किन घृणित विचारोंमें डूब रहे हैं। उनकी क्या सामर्थ्य है कि, मेरे होते वे इस पवित्र गद्दीको छू भी लें। आप लोग उत्साहसे लड़ें। सत्यका पक्षपात परमात्मा भी करता है।"

सब सरदार वीरदर्पसे उठकर प्रतिज्ञा करने लगे कि, जब तक हमारे शरीरमें प्राण रहेंगे, इन्दोरके लिये लड़नेसे न हटेंगे। अहिल्याने मल्हाररावके एक आत्मीय सम्बन्धी तुकोजीराव होलकरको

उसी समय सेनापतिका पद और पोशाक अर्पण किया। यद्यपि अहिल्याने युद्धकी सब सामग्री एकत्र कर ली थी, तथापि उसकी यह इच्छा नहीं थी कि, अकारण रक्तपात हो। जिस राजनीति-कौशलसे आज पाश्चात्य राजन्यगण शान्तिस्थापन करते और रक्तपात बचाते रहते हैं, वह कौशल भारतकी एक ललना अहिल्या-के पास दो सौ वर्ष पहिले था। उसने माधवरावके पास एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा था,—"महाराज, यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि, आप मेरा राज्य अपहरण करने ससैन्य आ रहे हैं। मैंने राज्यरक्षाका अच्छा प्रबन्ध कर लिया है। आपका वंश हमारे लिये पूज्य है, पर जब आप अपने अधीन राज्योंको अन्यायसे छीन लेनेका यत्न करेंगे, तब हमें भी शस्त्र द्वारा आपको अभिवादन करना पड़ेगा। एक बातकी सूचना कर देना इस समय मैं आव-श्यक समझती हूं कि, युद्धमें यदि मैं हार गई, तो मेरी किसी तरह मानहानि न होगी, क्योंकि मैं स्त्री और आप वीर पुरुष हैं; परन्तु यदि आप हार गये, तो पेशवाओंके वंशके लिये बड़ी लज्जा तथा अपमानकी बात हो जायगी। आप समर्थ हैं, जैसा उचित समझें, सोचकर करें।"

हम पहिले यह कह चुके हैं कि, रघुनाथरावकी घृणित कार्यवाही माधवरावसाहबको कुछ भी विदित नहीं थी। उन्होंने अहिल्याको उत्तर लिखा,—"मल्हाररावके पीछे तुमने स्त्री होकर राज्यका अच्छा प्रबन्ध किया इससे हम बहुत सन्तुष्ट हैं। तुम्हारा राज्य हरण करनेका हमें कोई प्रयोजन नहीं दीख पड़ता। यदि कोई ऐसा उद्योग करे, तो तुम्हें उसे दण्ड देनेका पूर्ण अधिकार है। हम इस बातसे बिलकुल असन्तुष्ट न होंगे।"

पेशवाका उत्तर सुनकर अहिल्या तथा अन्य उपस्थित राजाओं-को बड़ा आनन्द हुआ, उनका उत्साह दुगना हो गया और रघुनाथ-

रावसे सामना करनेके लिये वे प्रस्तुत हुए। यथासमय सेना लेकर रघुनाथराव क्षिप्रा नदीके पास पहुँचे। उन्होंने देखा कि, उस पार अहिल्याने युद्धका अच्छा आयोजन किया है। यह देख उनकी हिम्मत न हुई कि, अहिल्यासे युद्ध करें। इसलिये उन्होंने उससे कहला भेजा,—"हम युद्धके लिये नहीं, किन्तु तुम्हारे यहां मातमपुरसीके लिये आरहे हैं। ऐसी अवस्थामें तुम किस प्रकार शत्रुओंसे राज्यरक्षा कर सकती हो, यही देखनेके लिये हमने युद्धकी कोरी धमकी दी थी।"

इसपर अहिल्याने उत्तर भेजा,—"आप हमारे राजा हैं, आपकी परीक्षामें मैं अबला कहां तक ठहर सकती हूं? आपको इस क्षुद्र राज्यकी इतनी चिन्ता है, यह देखकर मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ। आप मेरी सान्त्वनाके लिये आये हैं तो मेरे सिरमाथे हैं, कुछ दिन इस गरीबिनीका आतिथ्य स्वीकार करें और फिर इच्छानुसार राज्यमें पधारें।"

रघुनाथरावने मन ही मन लज्जित होकर अहिल्याका आतिथ्य स्वीकार किया और फौजको उज्जयिनीमें भेजकर १०—१२ सरदारोंके साथ वे अहिल्याके राजभवनमें ठहरे। अहिल्यासे मिलनेपर उन्होंने उसे कोई लड़का गोद लेनेके लिये बहुत आग्रह किया, पर अहिल्या सहमत नहीं हुई। यह चाल भी खाली गयी देख, निराश होकर वे इन्दौरसे लौट आये।

अहिल्या परम दयालु थी। यद्यपि गंगाधर यशवन्त उसके आगे अपराधी था, क्योंकि उसीके कारण यह उत्पात हुआ था; तथापि उसने उसे क्षमा कर पुनः अपने राज्यमें स्थान दिया और तुकोजीराव होलकरको राज्यका सहयोगी बनाया। अहिल्याकी इस उच्च राजनीतिज्ञताके कारण राजस्थान तथा अन्यान्य प्रदेशोंके राजाओंने प्रसन्न होकर उसके पास बहुतसी वस्तुएँ नजरकी तौर पर भेजीं और अहिल्याने भी उनके बदलेमें यथोचित वस्त्र, अलङ्कार

आदि भेजकर रस्म पूरी की। चारों ओर देवी अहिल्याकी कीर्ति फैल गयी।

यह कहना वृथा है कि, राजाओंके पूजनपाठमें लग जानेसे उनका राजकाजमें चित्त नहीं लगता। अहिल्या अपना सब कार्य कर ८-१० घण्टे पूजापाठ और गौ-ब्राह्मणोंकी सेवा करती थी। तुकोजीको राज्यका सहयोगी बनानेपर देवी अहिल्या अपना समय देवसेवामें अधिक व्यतीत करने लगी। तथापि कर्तव्यसे शिथिल नहीं हुई थी। तुकोजी प्रतिनिधिरूपसे कार्य करते थे। महत्त्वकी बातें उन्हें अहिल्या स्वयं समझाती थी। उन दिनों प्रायः सब राज्योंमें अशान्ति और उत्पातोंने अपना अड्डा जमाया था, पर अहिल्याके राज्यमें रामराज्य ही था। मराठोंका नवीन अधिकार होनेसे जमीनकी किश्त आदिका कोई नियमित प्रबन्ध नहीं था। परन्तु अहिल्याने अपने राज्यमें एक बन्दोबस्त कर दिया था। अहिल्याके बनाये राज्यनियम अभी तक उस राज्य तथा अन्यान्य राज्योंमें चलते हैं।

देवी अहिल्याने तीस वर्ष तक राज्य किया। इस समयमें कोई तीर्थस्थान भारतवर्षमें ऐसा न रहा होगा, जहाँ अहिल्याकी कीर्तिका परिचय न मिलता हो। कहीं अन्नसत्र, कहीं जलसत्र, कहीं विद्यासत्र, कहीं मठ-मन्दिर, कहीं सरोवर, कुआँ, धर्म्मशाला, कहीं घाट आदि बनवाकर देवी अहिल्याने अपना नाम अमर कर रक्खा है। अहिल्या जैसी कोमलप्राणा थी, वैसी ही राज्यशासनमें कठोर भी थी। प्रजाको सुख देना ही उसका प्रधान कर्तव्य था। यदि कोई अधिकारी पुरुष किसीसे कुछ घूसफूस लेता और अहिल्याको उसका पता लगता, तो वह उसी समय उसे पदच्युत कर देती थी। विन्ध्याचलपर भीलोंका बड़ा उपद्रव था। अहिल्याने अपनी शक्तिसे उनका दमन किया और उन्हें ऐसे सच्चे सेवक बना

डाला कि, आज अहिल्याके न होनेपर भी वे ही भील उन दुर्गम स्थानोंमें यात्रियोंको अन्न और जल पहुँचाते हैं जहां चिड़िया, कीड़ेमकोड़े या पेड़की पत्ती तक नहीं देख पड़ती। इस दानधर्मके लिये उन्हें अहिल्याने कुछ धन दे रक्खा है, जिसका उपयोग वे ईमानदारीसे अभी तक करते हैं। ऐसे बहुतसे मन्दिर हैं कि, अहिल्याके प्रबन्धसे सैकड़ों कोसोंसे प्रतिदिन गङ्गाजल आकर वहाँकी मूर्तियाँ धोयी जाती हैं। देवी अहिल्याके सामने हिन्दु, मुसलमान, बौद्ध, इसाई आदि सभी जाति और धर्मके लोग एक समान थे। पक्षपात करना वह जानती ही नहीं थी। सबपर उसकी समान प्रीति थी, इससे सभी उसके शासनसे सन्तुष्ट रहते थे। कोषमें धन हो या न हो, लावारसी धन भी वह अपने राज्यमें नहीं लेती थी, फिर प्रजापीड़न कर धन संग्रह करनेकी कौन कहे! एक क्षुद्र भिखारीका भी रोआं दुखता, तो देवी अहिल्याके हृदयपर चोट पहुंचती थी। उसे आत्मप्रशंसा नहीं भाती थी—स्तुति पाठकोंसे वह प्रायः असन्तुष्ट रहा करती थी। ऐसी रानी हम भारतवासियोंके लिये अब दुर्लभ है।

देवी अहिल्या राजकी छोटी मोटी बातोंपर भी पूरा ध्यान रखती थी। एक बार शिवाजीगोपाल नामक अहिल्याके एक सेवकने तुकोजीकी सम्मतिसे महाराजा पेशवाकी नौकरी स्वीकार करली। जब यह खबर अहिल्या तक पहुँची, तब उसने तुकोजीको खूब डांटा। तुकोजीने अहिल्याके पैर पकड़कर क्षमा माँगी और फिर अहिल्याके बिना पूछे कोई कार्य्य नहीं किया। ऐसी ऐसी बातोंकी ओर अच्छे अच्छे महाराजाओंका भी ध्यान नहीं जाता, फिर अन्तःपुर-निवासिनी रानियोंकी कौन कहे?

यह बात स्पष्ट है कि, यदि अहिल्यामें सूक्ष्मराजनीतिकौशल न होता, तो उस विप्लवके समय वह राज्य न बचा सकती। जिस

अहिल्याको समग्र भारतवर्ष मानता था, उसीको कष्ट देनेमें उसके आत्मीय जातिबन्धु कोई बात उठा न रखते थे। मल्हाररावके समयसे इन्दोरको जयपुरनरेश कर देते थे। उनकी तरफ ४-५ करोड़ रुपया बाकी पड़ा था। सिन्धियाने जयपुरनरेशसे कहला भेजा कि, वह कर हमें मिलना चाहिये, क्योंकि अहिल्यासे हम बलवान् हैं। अहिल्याने रुपया माँगा, जयपुरनरेशने सिन्धियाका सन्देश दूतों द्वारा अहिल्यातक पहुँचा दिया। अहिल्याने युद्धका आयोजन किया; पर बीचमें ही अकस्मात् जीवाजीराव सिन्धियाने तुकोजीको कैद कर लिया। अहिल्याने रुपया और फौज भेजकर तुकोजीको मदद की, जिससे सिन्धिया हार गये। फिर जयपुर नरेशने कर देनेमें कोई आपत्ति नहीं की। सिन्धिया अपनासा मुँह लेकर लौट आये।

सत्याचरण करनेवालोंकी परीक्षा परमात्मा पद पदपर लेता है। अहिल्या किसीका सर्वस्व या राज्यहरण करना नहीं चाहती थी, पर लोभी लोग उसे अकारण कष्ट देते थे। मल्हाररावने कई करोड़ रुपया बचा रक्खा था, जिसका विनियोग अहिल्या दानधर्ममें करना चाहती थी। इन रुपयोंको देख, रघुनाथराव पेशवाको पुनः लोभ हुआ। उन्होंने किसी लड़ाईकी सहायताके लिये उनमेंसे कुछ रुपये मांगे। अहिल्याने कहला भेजा,—"ये रुपये दानधर्मके लिये रक्खे हैं। आप ब्राह्मण हैं, यदि मन्त्र पढ़कर लेना चाहें, तो उनपर गंगा तुलसी रख कर संकल्प करनेके लिये मैं प्रस्तुत हूं।" गंडेरियेका दान वीरवर पेशवा कैसे कबूल करते? वे स्वयं सेना लेकर अहिल्यासे लड़ने आये। अहिल्या पांच सौ दासियोंके साथ स्वयं युद्धक्षेत्रमें पहुँची। रघुनाथरावने पूछा, तुम्हारी सेना कहां है? अहिल्याने उत्तर दिया, आप हमारे राजा हैं, आपके साथ राजद्रोह करना मैं उचित नहीं समझती। आप हम स्त्रियोंकी हत्या कर

इच्छित धन ले जाइये। वह धन बिना संकल्प किये मैं किसीको नहीं दे सकती। रघुनाथरावने लज्जित हो, मिष्ट वाक्योंसे अहिल्याको सन्तुष्ट कर वहांसे प्रयाण किया। देवसेवा और लोकसेवामें बाधा करनेवाले पेशवा तथा जयपुरनरेशको चतुरता तथा वीरतासे परास्त कर, अहिल्या राज्यमें शान्तिपूर्वक रहने लगी। कई उदाहरणोंको देख, अब किसीका साहस न हुआ, जो कोई अहिल्यासे पुनः छेड़ छाड़ करता।

आदर्श नारी और आदर्श रानी होनेपर भी अहिल्याका सांसारिक जीवन सन्तोषजनक नहीं था। पति, पुत्र, सास, ससुर आदि किसीका भी उसे अधिक दिन सुख नहीं रहा। अब एक मात्र मुक्ताबाई नामक कन्या बच गयी थी, जो एक सरदारके साथ ब्याही था। उसे एक पुत्र हुआ था, उसीको देख अहिल्या अपने सब दुःखोंको भूल जाती थी। परमात्मासे उसका वह सुख भी नहीं देखा गया। अहिल्याके दौहित्रकी मृत्यु हुई और कुछ ही दिनोंमें मुक्ताबाई भी विधवा हो गयी। अहिल्याके दुःखका पारावार नहीं रहा! मुक्ताबाई पतिके साथ सहगमन करने चली। देवी अहिल्याने रोकना चाहा, पर कन्याने नहीं माना। अहिल्याने नर्मदा तटपर कन्याको चितामें जीते जी जलते देखा। अब अहिल्याको स्मरण नहीं कि, मैं कौन और कहां हूं? वह चिताकी ओर दौड़ी; पर ब्राह्मणोंने उसे बचा लिया। तीन दिन तक अहिल्या बिना अन्न जलके बेहोश पड़ी रही। शोक, दुःख, राजकार्य्यके गुरुतर परिश्रम और व्रत उपवासोंसे दिन प्रतिदिन अहिल्याका शरीर क्षीण हो चला। वह दिन रात ईश्वरकी आराधनामें मगन रहती और गो-ब्राह्मण, आबाल-वृद्ध-प्रजा तथा जीव मात्रके कल्याण-साधनमें लगी रहती थी। बार बार वह ईश्वरसे कहती,—"प्रभो, तुमने पत्थरकी अहिल्याका उद्धार किया, फिर इस अपनी

दासीको क्यों भूले हो? वहुत सही नहीं जाती। करुणानिधे, अब इसे अपनाओ।"

सर्वजीवसेविका, तपस्विनी अहिल्याने तीस वर्षतक रामराज्य किया। अब उसकी अवस्था साठ वर्षकी थी। एक दिन उसने प्रातःकालमें पूजा पाठकर १२ हजार ब्राह्मणोंको भोजनके लिये निमन्त्रित किया। सब भोजन कर संतुष्ट हुए। अहिल्याने उनका चरणतीर्थ ग्रहण किया और आखें मूँदली। देवी अहिल्या संसारसे सदाके लिये चल वसी।

—:※:—

वीरपत्नी, वीरमाता और वीरभगिनी।
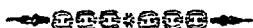
राणा उदयसिंहने अपने पुत्र पुत्त पर कैलवारा प्रान्तका शासन करनेका भार सौंप दिया था। पुत्तकी माता कर्मदेवी भी वेटेके पास रहती थी। एक वार दिल्लीके प्रसिद्ध सम्राट् अकवरने चित्तौरपर चढ़ाई की। इसकी खबर कर्मदेवीको लगते ही उसने पुत्तसे कहा,—"वेटा, मुसलमानोंने तुम्हारे पिताके राज्यपर आक्रमण किया है, तुम अपनी फौज लेकर जल्दी चित्तौरकी ओर जाओ और पिताको सहायता दो।" पुत्तकी अवस्था इस समय सोलह वर्षकी थी; परन्तु वह अत्यन्त साहसी, पराक्रमी और चतुर था। उसने मातासे वालभावसे कहा,—"माताजी, राणाजीने तो मुझसे सहायता नहीं माँगी है, उनके विना बुलाये मैं कैसे जाऊँ?"

कर्मदेवीने कहा,—"वेटा, पिताने तुमसे वालक जानकर सहायता नहीं मांगी होगी। तुम्हारी मातृभूमि तुम्हें बुला रही है, उसकी पुकारके आगे राणाजीकी बुलाहट क्या वस्तु है? तुम वीर-

पुत्र हो, किसी वीरसे तुम्हारी शक्ति कम नहीं है। इस समय पिताके विना बुलाये भी अज्ञातभावसे तुम चित्तौर रक्षाका उद्योग करोगे, तो क्षत्रिय कुलमें तुम्हारा जन्म लेना सफल होगा। स्वदेश-रक्षा यही क्षत्रियोंका परम धर्म है।" माताकी आज्ञा पाकर अपनी सेनाके साथ पुत्त चित्तौरकी ओर रवाना हुए।

इधर कर्मदेवीने पुत्तकी बहिन कर्णवती और स्त्री कमलावतीको बुलाकर कहा,—"मैंने पुत्तको रणमें भेज दिया है। वह अभी बालक है, उसे अकेले वहाँ भेजकर मुझे यहाँ निश्चिन्त होकर बैठे रहना उचित नहीं है। मैं भी उसकी सहायताके लिये जाऊँगी, तुम यहाँ स्वस्थ रहना।"

कमलावती बोली,—"माँ, आप रणमें जाओगी और मैं वीरपत्नी होकर यहाँ स्वस्थ कैसे रहूं? मैं भी आपके साथ चलूंगी।"

कर्णवतीने भी ऐसा ही कहा और तीनों वेषभूषासे सुसज्जित होकर चल पड़ीं। चित्तौरकी सहायताके लिये अन्यान्य नृपति भी आये थे। राणाजीने बदनोरके राजा जयमलको सेनापतिके पद पर नियुक्त किया था, परन्तु दो ही एक दिनके युद्धमें जयमल मारा गया। उसके पश्चात् सेनापतिका पद वीरवर पुत्तको मिला। युद्ध चलने लगा।

अकबरके सेनापतिसे पुत्त युद्ध कर रहा था। इधर अकबर चित्तौरकी ओर बराबर अग्रसर हो रहा था, ऐसे समयमें एक बीहड़ और संकीर्ण पहाड़ी स्थानसे दनादन गोलियाँ चलने लगीं। अकबरने देखा कि, छोटासा सैन्य लेकर तीन स्त्रियाँ लड़ रही हैं। ये स्त्रियाँ और कोई नहीं, पुत्तकी माता, स्त्री और बहिन थीं। कर्मदेवी जानती थी कि, अकबरके प्रचण्ड सैन्यके साथ हमारा निर्वाह नहीं है, तो भी क्षत्राणियोंके कर्तव्यपालनमें उसने कोई बात उठा न

रक्खी। अकबरके साथ इन क्षत्रानियोंकी खूब लड़ाई हो रही थी, इतनेमें मोगलसैन्यसे अचानक एक गोली आकर कर्णवतीको लगी; उसी समय वह बेहोश होकर गिर पड़ी। कर्मदेवीने एक बार मुड़कर देखा कि, कर्णवतीके प्राण निकल गये हैं, तौभी विना विचलित हुए उसने अपने सैनिकोंसे कहा;—"देखो, तुम्हारी बहिनने तुम्हारे लिये रणमें प्राण त्याग किये हैं, इसका बदला तुम अपना खून बहाकर चुकाओ।" वीर सैनिक दुगने जोशसे लड़ने लगे। अबकी बार कर्मदेवी और कमलावतीके भी मर्मस्थान पर गोलियाँ लगीं। जातिकुसुमसुकुमार दोनों स्त्रियाँ छटपटाने लगीं।

पुत्तने अकबरकी सेनाको परास्त कर अकबरसे सामना करना चाहा। वह उसी पहाड़ीकी ओर चला, जहां अकबर था और जहांसे उक्त तीन स्त्रियां लड़रही थीं। पहाड़ीके निकट आकर उसने देखा कि, मा और पत्नी छटपटा रही हैं। बहिनका मृतदेह पास पड़ा है और शत्रुओंकी गोलियां बराबर आ रही हैं। पत्नी और माताके सिरकमल गोदमें लेकर वह रोने लगा। कमलावतीने पतिका मुख देख हँसदिया और प्राण विसर्जन किये। कर्मदेवीने शेष निश्वासके साथ रुक रुक कर पुत्तसे कहा,—"बेटा, यह रोनेका समय नहीं है। तुम जाओ, युद्ध करो और अपने देशकी रक्षा करो। प्राण रहते रणसे न भागो। मैं जाती हूँ, सब कोई स्वर्गमें मिलेंगे। वहाँ मैं तुम्हारी बाट जोहती रहूंगी।" इतनेमें वहां मुसलमान आ पहुंचे। पुत्तभी सम्हल कर "हरहर" शब्द करता हुआ वीर सैनिकोंके साथ उनपर टूट पड़ा। असंख्य मनुष्योंका वध कर पुत्त भी थोड़े ही समयमें माता, पत्नी और भगिनीका अनुगामी हुआ।

अकबरने चित्तौरको विध्वस्त कर उसपर अधिकार कर लिया। भग्न-हृदय होकर उदयसिंहने अरवली नामक पर्वतश्रेणीमें भागकर

आश्रय पाया। आगे चलकर उसने वहीं उदयपुर नामक एक नगर बसाया, जिसका राज बड़ी चतुरतासे वह आंजीवन करता रहा। आज भी उदयपुर उदयसिंहका स्मरण दिलाता है।

कहते हैं कि, इस युद्धमें इतने ब्राह्मण और क्षत्रिय कट मरे थे कि, उनके जनेऊ तौलनेपर ७४॥ मन हुए थे। (उस समय ४ सेरका मन होता था।) तबसे अभीतक अनेक प्रदेशोंमें पत्र बन्द-कर ७४॥ का अंक लिखते हैं। इसका मतलब यही है कि, जिसके नामका पत्र हो, उसके अतिरिक्त यदि कोई दूसरा पुरुष खोलकर पढ़े, तो उसे उतने लोगोंकी हत्याका पातक लगेगा, जितने लोगोंके वे ७४॥ मन जनेऊ थे। स्वदेशरक्षाके लिये भारतकी कोमलबालिका-ओंसे लेकर वृद्धा माताओंतक कैसे आत्मसमर्पण करती थीं, इसकी कल्पना पुत्तकी माता, पत्नी और बहिनके उदाहरणसे हो सकती है।

—*◇*—

ज़ोहरा बाई।

—:*:—

पठानोंका साम्राज्य नष्ट कर दिल्लीमें बाबरशाहने मोगल राज्यकी स्थापना की थी। इस समय चित्तौरमें राणारायमलका पुत्र संग्रामसिंह राज्य करता था। संग्रामसिंह बड़ा तेजस्वी था। उसने गुजरातसे लेकर यमुना किनारे तक अपना राज्य बढ़ाया था। अब उसकी इच्छा हुई कि, उत्तर भारतमें भी हिन्दुओंका राज्य स्थापित हो। तदनुसार पठानविजयी मोगलोंसे लड़ना उसने स्थिर किया। आगरासे दसकोस दूरपर सिकरी नामक स्थानमें दोनोंका युद्ध हुआ। पहिली लड़ाईमें बाबर परास्त हुआ, पर दूसरे युद्धमें संग्रामसिंह हार गया।

राजपूतोंने निश्चय किया था कि, यदि उत्तर भारतमें हम हिन्दुओंका राज्य स्थापन न कर सके, तो पुनः चित्तोरमें पैर न रक्खेंगे। राजपूत जब हार गये, तब वे पुनः स्वदेश नहीं लौटे। भग्नहृदय होकर संग्रामसिंहके साथ सभोंने अपने अपने देह विसर्जन किये।

संग्रामसिंहके देहान्तके बाद चित्तौरकी गद्दीपर उसका पुत्र विक्रमाजित बैठा। यह उन्मत्त, गर्विष्ठ और अयोग्य पुरुष था। नीच कुलके मल्ल तथा सिपाहियोंके पक्षपातसे उच्चवंशीय वीर पुरुष इससे अप्रसन्न होकर घर बैठ गये थे। उन्होंने स्थिर करलिया था कि, ऐसे अविचारी राजाका हम कभी साथ न करेंगे। मेवाड़की गद्दीपर ऐसा अयोग्य राजा कभी नहीं बैठा था, जिससे उसकी प्रजा असन्तुष्ट हो। गृहकलह और राजाकी अयोग्यतासे मेवाड़को बड़ी हानि उठानी पड़ी। अभी मोगलोंकी सत्ता सर्वत्र नहीं स्थापित हुई थी, भिन्न भिन्न पठानोंके राज्य अब भी वर्तमान थे। चित्तौरके पास गुजरात और मालवाप्रान्तमें पठानोंके राज्य थे, जिनसे मेवाड़का पहिलेसे वैरसम्बन्ध चला आता था। संग्रामसिंहने दोनोंको कई बार पादाक्रान्त किया, पर वह उदारचेता वीर था, अधीनता स्वीकार करनेपर उन्हें उसने कई बार छोड़ दिया और उनकी स्वाधीनता नष्ट न होने दी। उस उदारताका बदला चुकानेके विचारसे दोनों पठान राज्य आपसमें मिल गये और चित्तोरकी दुर्दशा देख, उन्होंने उसपर चढ़ाई की।

विक्रमाजित हारकर भाग गया, और मुसलमान नगरमें घुसने लगे यह देख, राजपूत स्त्रियोंने जुहार करनेकी प्रतिज्ञा की। राजपूतोंमें जुहारकी प्रथा है। विपत्तिमें सब राजपूत स्त्रियाँ अग्निमें आत्म-समर्पण करती हैं, इस विधिको 'जुहार' कहते हैं। राजपत्नी जोहरावाईने जब जुहारकी खबर सुनी, तब उसने सब राजपूत स्त्रियोंसे ललकार कर कहा,—"बहिनों, यदि इस समय हम सब

जुहार करेंगी, तो नारीधर्म पालन होगा सही, परन्तु देशरक्षा नहीं हो सकती। मरना ही है तो शत्रुओंसे दो दो हाथ करके मरना अच्छा। क्या राजपूत स्त्रियोंकी शक्ति आज जाती रही? जो हाथ उन्होंने राजपूत वीरोंके हाथोंमें समर्पण किये, वे हाथ राजपूतोंके हस्तभूषण खड्गको नहीं छू सकते? विधाताने मेवाड़की स्त्रियोंको केवल वस्त्र भूषणोंसे सजनेके लिये नहीं उत्पन्न किया है। राजपूतानियोंके हाथ केवल फूलकी मालाएँ गूँथनेके लिये नहीं बने हैं। राजपूतरमणी स्वामीके घरमें गृहलक्ष्मी, प्रणयमें विलासनी-विनोदिनी, राजशासनमें राजमहिषी और समरमें रणरङ्गिनी होती है, फिर आज ही सब क्यों कुण्ठित हैं? चलो हाथमें खड्ग लेकर शत्रुओंको अपनी तेजस्विता दिखा दो। यह निश्चय है कि हमारे किये देश-रक्षा न होगी, तो भी कर्तव्यभ्रष्ट होना हमें उचित नहीं है। एक एक राजपूत ललना दश दश शत्रुओंको भी भारी हो जायगी। बन्दी होकर अग्निमें जलनेकी अपेक्षा शत्रुओंसे लड़ते लड़ते रणमें प्राण त्यागकर वन्दनीया बनना क्या बुरा है? यदि तुम धर्म और देशकी रक्षा करना चाहो, तो मेरे साथ रहो, प्राणोंकी न तुम्हें पर्वाह है न मुझे। सभी वीरतासे धारातीर्थमें निमज्जन करेंगी, यों व्यर्थ देह जला देना हमें शोभा नहीं देता।"

रानीकी उत्तेजनापूर्ण वक्तृता सुनकर सब राजपूतानियोंने कोमल कण्ठोंसे गम्भीर हुंकार किया। उसी क्षण सब लड़नेके लिये प्रस्तुत हो गयीं। बर्छी, भाला, ढाल, तलवार आदि आयुधोंसे सुसज्जित हो, घोड़ोंपर चढ़कर सब महलसे बाहर निकलीं। आगे जोहराबाई और पीछे स्त्रियोंका वह अपूर्व सैन्य देख, देखनेवाले चकित हो गये। केवल स्त्रियोंके सैन्यकी पुरुषवीरोंपर यह विचित्र चढ़ाई थी। इन स्त्रियोंने पठानोंको खूब पछाड़ा; पर आखिर स्त्रियाँ ही थीं! कहां तक जोर पकड़तीं? थोड़े ही समयमें सब रण-

भूमिमें लेट गईं। पठानोंकी बहुत हानि हुई, तो भी उन्होंने अन्तमें चितौरपर विजयपताका फहरा दी।

राजपूतोंमें प्रथा है कि, किसी स्त्रीपर संकट आवे और वह किसी शक्तिशाली पुरुषके पास राखी भेजकर उससे बन्धुसम्बन्ध करले, तो वह उसकी सहायता करता है। इसी तरह जोहराबाई और अन्य राजपूत रमणियोंके मरनेपर राजमाता कर्णवतीने दिल्लीपति मोगल सम्राट् बाबरके पुत्र हुमायूँके पास राखी भेजकर सहायता मांगी। उदारचेता हुमायूँने राखी स्वीकार कर ली। उस समय किसी राजपूत स्त्रीसे बहिन भाईका नाता कर लेना सभी वीर पुरुष सौभाग्यकी बात समझते थे। हुमायूँने संतुष्ट होकर कर्णवतीको उत्तर लिखा कि,—"बहिन, तुम चिन्ता न करो, मैं स्वयम् आकर तुम्हारे राज्यका प्रबन्ध कर देता हूं।"

वीरतामें मोगल भी किसीसे कम नहीं होते। हमारे देशमें मराठा, राजपूत या सिक्ख जैसे बहादुर होते हैं, वैसे ही मुसलमानोंमें मोगल और पठान हैं। हुमायूँ शीघ्र ही दलबल सहित पहुंच गया। अबकी बार गुजरात और मालवाके पठानोंकी कुछ न चली! उन्हें सीधी तौरसे चित्तौर छोड़ देना पड़ा। विक्रमाजित पुनः सिंहासनपर प्रतिष्ठित हुआ। उसे फिरसे यह गद्दी पत्नी और माताके प्रभावसे मिली थी। जोहराकी कीर्ति अमर हो गयी।

———०※०———

पन्ना दाई।

—:०*०:—

माताके हृदयकी कल्पना माताएँ ही कर सकती हैं। जोहराबाईकी कहानीमें हम कह आये हैं कि, विक्रमाजित्‌के कुचरित्र होनेपर भी उसे पुनः गद्दी मिलनेके लिये माताने यत्न किये और तदनुसार उसे पुनः गद्दी मिली। परन्तु इस भयानक अपमानसे भी उसकी चाल चलन नहीं सुधरी। कर्णवतीका देहान्त होनेपर उसने और भी अत्याचार करना आरम्भ किया। अबकी बार सरदारोंसे नहीं सहा गया। उन्होंने उसे पदच्युत कर, राणावंशीय दासीपुत्र बनवीरको तबतकके लिये राज्यपदपर अभिषिक्त किया, जबतक उदयसिंह राज्य करने योग्य न हो जायँ। उदयसिंह विक्रमाजित्‌का छोटा भाई था, जिसकी अवस्था इस समय केवल छः वर्षकी थी।

मातृपितृहीन उदय पन्ना नामक एक राजपूतानी दाईके पास रहता था। उसीने उसे पालपोसकर बढ़ाया था। पन्नाके चन्दन नामक एक पुत्र था। दोनों एक साथ खाते पीते और खेलते थे। पन्ना दोनोंपर समान प्रेम करती थी। उदय पन्नाको 'माँ' कह कर पुकारता था और उससे इतना हिल मिल गया था कि, पन्नाको देखकर उसे माताका भी स्मरण नहीं होता था।

बनवीर राणा हुआ तबसे उसके मनमें दुराकांक्षा बढ़ने लगी। उसने विक्रमाजित् और उदयकी हत्या करनेका विचारा। अन्धेरी रात थी, आधीरातके बीतनेपर पन्नाका किसीने दरवाज़ा खटखटाया। पन्ना पुत्रोंकी रक्षाके निमित्त रातभर जागती और चौकन्ना रहा करती थी। आधीरातमें कौन आया होगा? कुछ

दगा तो नहीं है? सोच विचार कर उसने तलवार उठायी और दरवाज़ा खोलकर देखा, तो एक स्वामिभक्त वारी दरवाजा खुलते ही भीतर घुस आया उसे पहिचानकर पन्ना बोली,—"वारी, ऐसे घबड़ाये हुए आधीरातके समयमें तुम कहां आगये? सब कुशल तो है?"

वारी—"अब कुशल कहां है? बनवीरने विक्रमाजित्का अभी वध किया है और वह उदयकी हत्या करनेके लिये इधर आ रहा है, यही समाचार कहनेके लिये मैं आया हूं। अब उदयकी रक्षा कैसे होगी?"

पन्नाके सिरपर आकाश टूट पड़ा। जिसे उसने प्राणसे भी बढ़कर जतनसे पाला पोसा, उसकी हत्या पन्ना अपनी आँखों कैसे देख सकती थी? वाप्पा रावल, समरसिंह, लक्ष्मणसिंह, हम्मीर, रायमल, संग्रामसिंह जैसे महापुरुष जिस कुलमें हुए, वह कुल आज एक दुराचारीके अत्याचारसे निर्मूल होगा! पन्नाने एक बार सोये हुए उदय और चन्दनकी ओर देखा और विलम्ब करनेका समय न देखकर दृढ़तासे कहा,—"वारी, तुम शीघ्र बाहर जाओ और वहां फलके टोकरे रक्खे हैं, उनमेंसे एक उठा लाओ।"

पन्नाके चेहरेपर मर्मभेदी यातनाके स्पष्ट चिन्ह देख पड़ते थे। बारीने कहा,—"इस समय टोकरोंका क्या करोगी?"

पन्ना—"एक टोकरेमें उदयको रखकर मैं तुम्हें सौंप देती हूं। उसे लेकर तुम वीरा नदीके तटपर चले जाओ, मैं पीछेसे आती हूं।

वा०—"चन्दनको लेकर तुम भी साथ क्यों नहीं चलती?"

प०—"मेरे भागनेसे तुम समझते हो कि, उदयकी जान बचेगी?"

वा०—"तुम रहकर भी उदयकी जान बचा सकोगी?"

प०—"हाँ।"

वा०—"कैसे?"

प०—"बनबीरको यह बतला कर कि, उदय संसारमें नहीं है।"

बा०—"यह क्योंकर हो सकता है?"

प०—"बारा, अब अधिक कुछ न पूछो। उस कथाके कहते मेरा कलेजा फटता है। राणाके कुलकी रक्षाके लिये, चित्तौरगौरवकी एक चिनगारीके लिये, आज मैं चन्दनको विसर्जन करूँगी।"

बा०—"कैसे?"

प०—"उदयके कपड़े चन्दनको पहिनाकर बनबीर आवे तो उसे बता दूँगी कि, यही उदय है।"

बा०—"पन्ना, तुम मानुषी हो या राक्षसी?"

प०—"बारी, मैं चाण्डालिन राक्षसी हूं। जिस राणावंशने मेवाड़के गौरवकी रक्षा की और आगे भी जिससे बहुत कुछ आशा है, जिसके नामसे जन्मभूमि, भारत और सम्पूर्ण जगत् धन्य हो रहा है; उसके लिये एक राजपूतानीके पुत्रकी हत्या होना बड़ी भारी बात नहीं है। उदयके आगे चन्दन क्या वस्तु है? एक उदय रहेगा, तो दस चन्दन पैदा होंगे। हम राजपूत स्वामिभक्त हैं। स्वामिभक्तिके आगे हमें प्राणधनकी पर्वाह नहीं रहती। चन्दन दो दिन पीछे बड़ा होगा, तब अपनी इच्छासे स्वामिकार्य्यमें देह अर्पण करेगा। आज माताकी इच्छासे वह राणावंशके लिये जीवन अर्पण कर धन्य हो रहा है, उसके लिये इससे अधिक गौरवकी क्या बात हो सकती है? बारी, विलम्ब न करो, जाओ मेरे उदयको—हिन्दुओंके उदयको—मेरे प्यारे उदयको शीघ्र ही यहांसे लेजाओ।"

बा०—"पन्ना, मैंने तुम्हें राक्षसी कहा, तुम राक्षसी नहीं, मानुषी नहीं, देवी हो। तुम्हारी स्वामिभक्ति देखकर देवता भी प्रसन्न होंगे, ईश्वर तुम्हारा भला करें।"

बारी टोकरा ले आया। पन्नाने उदयका चुम्बन कर उसे टोकरे-में रख बारीके हवाले किया। बारी फूलपत्तोंसे ढँके हुए उदयको लेकर चला गया और पन्नाने चन्दनको धीरेसे उदयके कपड़े पहिना दिये। हा! माता आज अपने आंखोंसे पुत्रवध देखेगी! पन्ना रोने लगी। उसने चन्दनकी ओर प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे देखा और चुम्बनके लिये ज्यों ही मुँह बढ़ाया त्यों ही छूरी लेकर बनवीर आ पहुँचा। वह बोला,—"उदय कहां है?"

पन्ना सम्हलकर दूर खड़ी हो गयी। उसके मुँहसे शब्द नहीं निकला। केवल अंगुलीसे उसने चन्दनको दिखा दिया। बनवीर मदसे उन्मत्त हो गया था। उसने बिना देखे ही चन्दनके कोमल हृदयको चीर डाला। चन्दन 'माँ' कहकर एक बार चिल्लाया और शान्त हो गया। पन्ना खड़ी खड़ी देखती रही!

बनवीर कृतकार्य्य होकर चला गया। पन्नाने खूनसे लथपथ हुए चन्दनको उठा बीरा नदीकी राह ली। वहां उसकी राह देखता हुआ बारी बैठा ही था। बारीकी सहायतासे पन्नाने चन्दनको अग्निसंस्कार किया और उदयको लेकर वह किसी दूसरे नगरमें चली गयी। मेवाड़ प्रान्तके पहाड़ी भागमें आशा-शाह नामक एक सरदार रहता था, उसीके यहां उदयने आश्रय पाया।

नरपिशाच बनवीरके अत्याचारसे चित्तौरकी प्रजा घबड़ा उठी। राजपुरुषोंको पता लगानेपर ज्ञात हुआ कि, उदय जीवित है और उसकी अवस्था अब राज्य करने योग्य हो गयी है। सब लोगोंने मिलकर बनवीरको राज्यपदसे च्युत कर, उदयको सिंहासन-पर प्रतिष्ठित किया। यह महोत्सव देखनेके लिये पन्ना जीवित थी। उदयसिंह उसे माँ कहकर पुकारते थे, उसका आदर मातासे बढ़कर था। सब राजपूत एक मुख हो, पन्नाके स्तुति-

स्तोत्र गाने लगे। जहां देखो वहां पन्नाके ही यशकी दुन्दुभी बजती थी।

आज पन्ना नहीं है, पर भारतमें ऐसे अनेक पन्नारत्न हैं, जिनकी गिनती हम आप नहीं कर सकते। यह पन्नाका ही प्रभाव है कि, आज मेवाड़सूर्य्यका सिंहासन भरापूरा हम अपनी आंखोंसे देखते हैं। पन्नाने पुत्रत्याग न किया होता, तो आज हिन्दुओंका मुख उज्ज्वल न रहता। हिन्दुओंके मुखको उज्ज्वल करनेवाले आज भी भारतमें अनेक रमणीरत्न हैं; पर समयके प्रभावसे कूड़े कर्कटमें पड़े रहनेके कारण हमें उनकी चमक नहीं दीख पड़ती। बहिनो, तुम ही बताओ पन्ना कैसी थी? उसके स्वार्थत्यागसे क्या भारतकी कीर्ति अधिक प्रकाशमय नहीं होती?

—o—

शिलाद-पत्नी।

"अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।"

दिल्लीपति हुमायूँके समयमें गुजरात प्रदेश बहादुरशाह नामक एक मुसलमान सरदारके हाथमें था। गुजरातके निकट रायसेन नामक दुर्गमें शिलाद नामक एक राजा रहता था, जिसका आसपासकी भूमिपर पूर्ण अधिकार था। इस भूमिको हस्तगत करनेके अभिप्रायसे बहादुरशाहने दुर्गपर चढ़ाई की और शिलादको कैद कर लिया। अब दुर्गरक्षाका भार शिलादके भाई लक्ष्मणने अपने ऊपर लिया और अन्ततक मुसलमानोंके साथ वह लड़ता रहा।

बहादुरशाहने लक्ष्मणके पास कहला भेजा,—"यदि आप सहजमें दुर्ग छोड़ देंगे, तो हम आपके भाईको मुक्त कर दुर्गके किसी

पुरुष या स्त्रीको क्षति न पहुंचावेंगे; और यदि आप युद्ध ही करते रहें, तो निश्चय समझिये कि, शिलाद तथा आप लोगोंके धन, मान एवं प्राणोंकी रक्षा होना कठिन है।"

बहादुरशाहकी यह एक चाल थी, पर लक्ष्मणने डर कर किला छोड़ दिया। इधर मुसलमानोंने मिथ्या प्रतिज्ञाको भूलकर किलेके स्त्री पुरुषोंपर अत्याचार करना आरम्भ किया। वे हिन्दुओंको लूटने, मारने और भ्रष्ट करने लगे। यह दशा देख, लक्ष्मण घबड़ा उठा। उसने सोचा कि, अब स्त्रियोंका धर्म बचना भी कठिन है। इस समय उन्हें लेकर किसी सुरक्षित स्थानमें भाग जाना ही अच्छा है।

लक्ष्मणने अन्तःपुरमें जाकर भौजाई दुर्गावती अर्थात् शिलादकी पत्नीसे सारा हाल कह सुनाया। बात समाप्त नहीं होने पाई थी कि, दुर्गावती क्रुद्ध सिंहिनीकी तरह गरज कर बोली,—"अरे मूर्ख, डरपोक, भाईके पीछे किला शत्रुओंको सौंपकर अब ज़नानखानेमें आ छिपता है? तूने वीरकुलमें क्यों जन्म लिया? धिःकार है तुझे!"

लक्ष्मणने कहा,—"देवि, क्षमा करो। भाईकी प्राणरक्षा, दुर्गवासियोंकी हितसाधना और आप लोगोंका धर्म बचानेके लिये बहादुरशाहकी प्रतिज्ञाके अनुसार मैंने किला छोड़ दिया। मुसलमानोंने अपनी प्रतिज्ञा छोड़ दी, इसमें मेरा क्या अपराध है?"

दुर्गा:—"शत्रुका कपट तेरे ध्यानमें नहीं आया और बिना युद्धके तूने किला छोड़ दिया; तुझे मूर्ख और डरपोक नहीं तो क्या कहें? फिर भी कहता है मेरा क्या अपराध है? अरे तेरे पूर्व पुरुषोंने-तेरे सगे भाईने—स्वाधीनता तथा दुर्गरक्षाके लिये प्राणोंकी कुछ भी पर्वाह नहीं की। तेरे शूर सरदारोंने रणमें पीछे पैर नहीं रक्खा। हम भी धर्मरक्षाके लिये शत्रुओंसे दया नहीं चाहतीं और तू पुरुष—क्षत्रिय वीर—होकर लड़ाईसे भाग गया! क्या इस बातसे

तेरे मनमें लज्जा नहीं होती ? क्षत्रियगौरव लड़ाईमें मरनेसे है, न कि भागनेसे । तैंने दुर्गरक्षाका भार अपने सिर लिया था, उससे हाथ धोकर अब किस मुंहसे तू अन्तःपुरमें आ रहा है, इसीका मुझे आश्चर्य है !"

लक्ष्मणः—"देवि, मैं अपने प्राण बचानेके लिये यहां नहीं आया; किन्तु तुम्हें ऐसे निरापद स्थानमें ले चलनेके लिये आया हूं कि, जहां तुम्हारा धर्म नष्ट न हो । किला हाथसे गया, तुम जितनी चाहो, मुझे फटकार सुनाओ; पर यह विलम्ब करनेका समय नहीं है । अब चलो कहीं भाग चलें, नहीं तो मुसलमान शीघ्रही यहां आकर अत्याचार करेंगे । मुझसे जहां तक हो सका, शत्रुओंको रोका । वे धोखा देंगे इसका मुझे क्या पता था ?" ।

दुर्गाः—"धर्मरक्षाके लिये क्षत्रिय रमणियोंको भागनेका कोई प्रयोजन नहीं है । जीवनके किस सुख और सम्मानकी आशासे हम भागें ? राज्य गया, स्वाधीनता नष्ट हुई, मान-सम्भ्रम जाता रहा, अब किस लिये सिंहिनी होकर सियारकी तरह भागकर प्राण बचाऊं ? सच्ची क्षत्राणी हीनतासे कभी जीवन नहीं बिताती । तुझे भागना हो तो भागजा, मैं या मेरे दुर्गकी अन्य स्त्रियां जीते जी किला न छोड़ेंगी । जिन्होंने मातृभूमिके लिये प्रिय-पति-पुत्रोंके प्राणोंकी पर्वाह नहीं की, वे अपने प्राण बचानेके लिये किला छोड़ देंगी ? धर्म ही बचाना है, तो अब देख सती स्त्रियां अपना धर्म कैसे बचाती हैं !"

दुर्गावतीने राजमहलमें आग लगा दी । जबतक मुसलमान वहाँ तक पहुंचते हैं, तबतक सारा महल धधक उठा । दुर्गावतीने जलते घरमें पुरवासिनियोंको भी आनेके लिये कहा । हजारों स्त्रियां अपना धर्म बचानेके लिये दुर्गावतीकी सहयोगिनी हुईं । देखते देखते अग्निनारायणने सबको स्वाहा कर दिया । कई दिनोंतक आग

जलती रही। अग्निदेवका रूप शान्त होने पर लोगोंने देखा, तो किसी स्त्रीकी हड्डीतक नहीं मिली ।

इस अग्निलीला और दुर्गावतीके साहसको देखकर हिन्दुओंके घोर शत्रु मुसलमानोंका भी कलेजा कांप उठा। सब कोई दुर्गावतीकी प्रशंसा करने लगे। संसारको यदि सतीत्वरक्षाके दृष्टान्त देखने हों, तो उसके लिये भारतका इतिहास काफ़ी है। धर्म बचाना हिन्दू ही जानते हैं। शुद्ध और सच्चे प्रेमके उज्ज्वल उदाहरण हिन्दुस्थानमें ही दीख पड़ेंगे, यों दुनियाँमें सभी प्रेम करते हैं।

—:*:—

चित्तोरकी रानी ।

"घरकी फूट बुरी ।"

यदि भारतमें घरकी फूट न होती, तो आज इसकी यह दशा न देख पड़ती। अच्छे या बुरे कामोंमें जो अग्रगण्य रहता है, उसीका नाम चिरकाल तक नहीं भूलता। ऐतिहासिक भारतमें फूटका बीजारोपण कन्नौजके राजा जयचन्दने किया था, इससे उसका नाम अमर हो गया है। इस देशमें जब मुसलमानोंका दौरा आया, तब यदि हम चाहते तो उन्हें यहाँ जमने न देते, पर भारतमें सुमति कहाँ? एक दूसरेके अकारण बैरी बननेका हम हिन्दुओंको अभ्यास हो गया है। हम एकताके तत्त्वको भूल गये हैं।

महम्मदगोरीने दिल्लीपर चढ़ाई की और कन्नौजके जयचन्दने उसकी सहायता की। मुसलमानोंने दिल्लीके पश्चात् कन्नौजको भी जीत लिया और क्रमशः बिहार, बङ्गाल तथा उत्तर भारतकी

अधिकांश भूमिपर अधिकार जमा लिया। दोनोंकी लड़ाईमें तीसरेका लाभ हुआ। देखते देखते मुसलमान प्रबल हो गये। महम्मदग़ोरीने वीरता और कूटनीतिसे भारतमें साम्राज्य स्थापन कर उसका भार कुतुबुद्दीन नामक एक सरदारको सौंप दिया। कुतुबुद्दीन भी चतुर था। उसने अपना राज्य बढ़ाना आरम्भ किया और पहिली चढ़ाई वीरभूमि राजपूतानेके सर्वप्रधान राज्य मेवाड़पर की।

इस समय महावीर समरसिंहका पुत्र कर्ण सिंहासनपर था। समरसिंह जैसा वीर वैसा ही धर्मात्मा था। उसका विवाह पृथ्वी-राजकी बहिन पृथासे हुआ था। पर सिरोहीकी लड़ाईमें जब वह मारा गया तब पृथा सती हो गई। पश्चात् समरसिंहकी दूसरी रानी कर्मदेवी राज्य करने लगी। वह भी सती हो जाती, पर राजधर्मके अनुसार अज्ञान पुत्रके होते सती होना निषिद्ध जान, पुत्र कर्णकी अभिभाविकारूपसे रहकर राज्य-शासन करना उसने स्थिर किया। कर्मदेवी पतिके देहान्तसे दुःखित थी ही, इधर कुतुबुद्दीनने उसके राज्यपर चढ़ाई की, फिर कहना ही क्या है? पुत्र अज्ञान-लड़ाईके अयोग्य और साथी कोई नहीं। ऐसी दशामें दूसरी स्त्री होती तो प्राणत्याग कर देती, पर कर्मदेवीने हिम्मत न हारकर इस कठिन प्रसंगमें भी शत्रुओंसे निर्भय होकर सामना किया। जो काम अच्छे अच्छे पुरुषोंसे न होता, वह भारतकी एक ललनाने किया।

"हारिये न हिम्मत—"

"यश अपयश विधि हाथ—"

जिस शक्तिशाली यवनदलने सारा उत्तरभारत हस्तगत कर लिया, उसके लेखे क्षुद्र मेवाड़ क्या वस्तु है? आज समरसिंह नहीं, किसीकी सहायता नहीं, ऐसी दशामें मेवाड़ शत्रुओंके हाथसे

कैसे बच सकता है ? इसी चिन्तामें पड़े हुए राजपुरुष एक दिन कर्मदेवीके पास आकर बोले,—"माताजी, अब मेवाड़की रक्षा होना असम्भव है।"

"क्यों ? समरसिंहके पश्चात् तुम्हारे जैसे अनेक लड़वैये वीर मेवाड़में होते हुए इसकी रक्षा असम्भव कैसी ?"

"हम मरनेके लिये प्रस्तुत हैं, पर मेवाड़ नहीं बच सकता।"

"यदि तुम सब प्राणपणसे लड़ोगे तो पठानोंकी क्या सामर्थ्य है जो वे मेवाड़की ओर आंख उठाकर भी देखें।"

"माँ, हमारे मरनेसे देशका गौरव रहेगा सही, पर देशरक्षा नहीं हो सकती। दुर्दान्त पठानोंने उत्तर भारत हस्तगत कर लिया है। उनके बलके आगे हमारा बल क्या है? यदि आज समरसिंह होते, तो हम साहस कर उनसे सामना करते। उनके नेतृत्वमें हमको भरोसा रहता था कि, हम अवश्य ही मेवाड़की रक्षा करेंगे।"
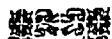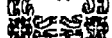
"आज समरसिंह नहीं हैं, किन्तु उनकी सहधर्मिणी कर्मदेवी जीवित है। तुम चिन्ता न करो और हिम्मत न हारो। मैं अपने नेतृत्वमें सैन्यकी परिचालना करूँगी। मेरे प्रिय सरदारो, मुझे रमणी जानकर मेरी बातोंसे तुम आश्चर्य करते होगे, पर ध्यानमें रहे, मैं रजपूत रमणी-योगीन्द्र-वीरेन्द्र-समरसिंहकी सहधर्मिणी हूँ। जिस दिन मैंने हाथमें राजदण्ड लिया, उसी दिन राज्यकी तलवार भी मेरे हाथमें आ चुकी। दानवदलनी दुर्गाकी तरह मैं भी पठान दलका दलन करूँगी। तुम डरते क्यों हो ? निर्भय होकर मेरा साथ दो। रणसे डरना राजपूतोंके स्त्रीपुरुषोंने नहीं सीखा है। पराधीनतामें जीवन बितानेकी अपेक्षा रणमें मरना राजपूतोंके लिये हज़ारगुना अच्छा है।"

कर्मदेवीके उत्साहपूर्ण वाक्य सुनते ही सब राजपूत सरदारोंके हृदयमें नये जोशका सञ्चार हुआ। वे कर्मदेवीके नामसे जयध्वनि

करते हुए एकदम उठकर खड़े हुए। ब्रह्मचारिणी, विधवा कर्मदेवी वीरवेषसे सुसज्जित होकर अपने बहादुर सरदारोंके साथ कुतुबुद्दीनसे सामना करनेके लिये प्रस्तुत हो गयी।

लड़ाई छिड़ी। शक्तिसेवक राजपूत वीर शक्तिरूपा रणरङ्गिणी चित्तौरकी रानीकी परिचालनामें अदम्य उत्साहसे लड़ने लगे। कर्मदेवीका विक्रम मुसलमान सैनिक सह न सके। राजपूत ऐसी वीरतासे लड़ते थे कि, वैरी उनका तमाशा ही देखते देखते कट मरे। वर्षाऋतुके घोर मेघमण्डलमें इधरसे उधर एक बार जैसी बिजली चमक जाती है, वैसी ही राजपूत और मुसलमान सेनामें कर्मदेवी चमक रही थी। उसकी वीरता वर्णनसे बाहर है। परिणाम भी अच्छा हुआ। कुतुबुद्दीन कर्मदेवीके आगे ठहर न सका। उसने देखा कि, एक स्त्रीके साधारण सैन्यने हमारे आधेसे अधिक वीर रणमें काट डाले, यदि किसी अन्य राजपूत राजाकी सहायता मिलती तो न जाने क्या करती! कुतुबुद्दीन भाग गया। कर्मदेवी सेनाके साथ जयघोष करती हुई चित्तौर लौट आई। मेवाड़की स्वाधीनता-रक्षाके आनन्दमें महीनों उत्सव मनाया जाने लगा।

सती खना।

भारतवर्ष ज्योतिष, गणित और विज्ञानकी जन्मभूमि है। प्राचीन समयमें इस देशके कई स्त्री पुरुष उक्त विद्याओंमें निपुण थे। गणितमें लीलावती और ज्योतिषमें खनाका नाम बहुत प्रसिद्ध है। उनकी बराबरी उस समयके विद्वान् पुरुष भी नहीं कर सकते थे।

दो हज़ार वर्ष पहिले मालवा प्रान्तके अन्तर्गत उज्जयिनी नामक नगरीमें राजा विक्रमका राज्य था। उनकी सभामें बड़े बड़े पण्डित, कवि, विज्ञानवेत्ता एकत्रित होते तथा राजाके द्वारा सम्मान पुरस्कार पाते थे। सभाके प्रधान नवरत्नोंमें वराह नामक एक प्रसिद्ध ज्योतिषी था। उसीका पुत्र मिहिर हुआ। जब मिहिरका जन्म हुआ, तब वराहने गणित कर देखा कि, इस बालककी आयु केवल दस वर्षकी है। वास्तवमें यह वराहकी भूल थी। मिहिरकी आयु सौ वर्षकी थी, पर गणित करते समय वराहने एक शून्य भूलसे छोड़ दिया था। वराहने देखा कि, बालक दस ही वर्ष जियेगा, फिर इसे पालने पोसनेसे क्या लाभ है? तुरन्त उसने मिहिरको एक हांड़ीमें रखकर क्षिप्रा नदीमें बहा दिया। हांड़ी बहती हुई जा रही थी। वह एक व्यापारियोंके दलके हाथ लगी। व्यापारियोंने बालकको पाला पोसा और बड़ा होनेपर उसे हीलेसे लगा दिया। मिहिर पिताकी तरह बुद्धिमान् था। देश विदेश घूमता फिरता वह लंकाद्वीपमें पहुँचा। उस समय लंकामें ज्योतिषकी अच्छी चर्चा थी और मिहिरको भी आनुवंशिक संस्कारके कारण उस विद्याकी ओर अधिक रुचि थी; इस लिये कुछ वर्षोंतक उसने वहां रह कर ज्योतिष विद्याका अच्छा अभ्यास किया और वह पुनः अपने देशमें लौट आया।

मिहिर लंकामें जिस गुरुके पास पढ़ता था, उसे खना नामकी ज्योतिष शास्त्रमें अत्यन्त निपुण एक कन्या थी। मिहिरपर गुरुका बड़ा प्रेम था, इससे लौटते समय उसके साथ गुरुने खनाका विवाह कर दिया।

विक्रमकी कीर्त्ति सर्वत्र थी। कोई नया विद्वान् या गुणी होता, तो एक बार विक्रमकी सभामें अवश्य आता था। मिहिरको भी इच्छा हुई कि, विक्रमसे साक्षात् करें। खना और मिहिर दोनों

उज्जयिनीमें आये और सब पण्डितोंके साथ शास्त्रार्थ कर मिहिरने अच्छी योग्यता दिखाई। पता लगानेपर वराहको ज्ञान हुआ कि, मिहिर मेरा ही पुत्र है और मेरे गणितकी भूलसे ही उसे अनेक विपत्तियां उठानी पड़ीं। राजाने मिहिरको अपनी सभामें स्थान दिया, और वराह अपने पुत्र और पुत्रवधूको आदरके साथ घर ले गया।

वराह नहीं जानता था कि, मेरी पुत्रवधू भी ज्योतिष शास्त्रमें पण्डिता है। वास्तवमें वराह और मिहिर दोनोंकी अपेक्षा खना अधिक जानती थी। वराह जब कभी भूलता, तो वह उसे सुधार देती थी। वराहके पास अनेक लोग आते और भाग्यका हाल पूछते थे। लोगोंके सामने भी अन्तःपुरमें बैठकर खना ससुरकी भूलें बताती थी, इससे वह उसपर असन्तुष्ट रहता था। हमारी पाठिकाएँ कहेंगी कि, खना बड़ी ढीठ थी, उसे इस प्रकारसे ससुरको लज्जित करनेकी क्या पड़ी थी? प्रिय बहिनो! किसीके भाग्यको उलटे सीधे बतानेसे ससुरकी जो दुष्कीर्ति होती, उससे तो यह अच्छा था! जिसने बड़ी भारी भूलकर अपने पेटके लड़केको भी नदीमें बहा दिया, उसके अविचारसे लोगोंकी कितनी हानि होती? खना उदारचरिता और लोगोंका कल्याण चाहनेवाली थी, उसकी ढिठाई ससुरकी भलाईके लिये थी, वह निरर्थक उसका अपमान करना नहीं चाहती थी। खनाको ऐसी ऐसी गणनाएँ आती थीं कि, वे न तो वराह जानता था न मिहिर। प्रायः दोनों एकान्तमें बैठकर उससे सीखते और स्त्रीकी प्रधानता देखकर कुछ कुछ मन ही मन जला भी करते थे।

एक दिन राजाने आकाशके तारागणके सम्बन्धमें वराहसे एक अत्यन्त कठिन प्रश्न किया। उस समय वराह उस प्रश्नको हल न कर सका। उसने राजासे कहा;—"महाराज, कल सबेरे इस प्रश्नका

उत्तर दूँगा।" सन्ध्या समय वराह घर लौट आया और उस प्रश्नको हल करने लगा, पर किसी प्रकारसे मीमांसा न हुई।

खना इतनी पण्डिता होनेपर भी अपने हाथों रसोई बनाकर पति और ससुर आदिको भोजन कराती थी। रात्रिमें वह व्यालू करनेके लिये ससुरको बुलाने गई। ससुर चिंतासे व्याकुल थे, यह देखकर खनाने कहा,—"आप इतने चिन्तित क्यों हैं? उठिये, व्यालू कर लीजिये, पीछेसे मैं उस प्रश्नको समझा दूँगी।" वराह व्यालू करने बैठा। खनाने पासमें बैठकर थोड़े ही समयमें वह प्रश्न समझा दिया। वराह लज्जित तो अवश्य हुआ, पर मन ही मन यह सोचकर प्रसन्न भी हुआ कि, पुत्रवधूकी विद्यासे राजसभामें आज मेरा मान बना रहा, नहीं तो कल बड़ी दुर्दशा होती।

दूसरे दिन वराहने राजसभामें जाकर प्रश्नका उत्तर दिया। सब पण्डित उसके उत्तरसे प्रसन्न हुए। राजाने कहा,—"आपने उत्तर दिया सही, पर जबतक मुझे ठीक गणित करके न बताओगे, तबतक मैं नहीं मानूगा।" अब तो वराह घबड़ाकर बगलें झांकने लगा; पर क्या करे, साफ कहना ही पड़ा कि, यह गणित मेरी पुत्रवधूने किया है। पण्डित आश्चर्य करने लगे कि, आजतक ऐसी स्त्री न आंखों देखी न कानों सुनी! राजा भी उसको देखनेके लिये उत्कण्ठित हो गया। उसने वराहको आज्ञा दी कि, कल उसे राजसभामें आदरके साथ लेआओ, हम उससे वार्तालाप करेंगे। हमें यह पता तक नहीं था कि, ऐसी स्त्रीरत्न इस नगरमें है। हमलोग उसका दर्शन कर कृतार्थ होंगे।

वराहने सोचा, खना राजसभामें जायगी, तो हमलोगोंकी प्रतिष्ठा कहां रहेगी? उसीका प्राधान्य रहेगा और हमारी अपकीर्ति होगी। पहिले दिन उसके बताये उत्तरसे मान तो रह गया, पर उसीसे यह विकट प्रसङ्ग उपस्थित भी हुआ। अब वराहने

खनाका सर्वनाश करना विचारा। उसने पुत्रको आज्ञा दी कि, तू अपनी स्त्रीकी जीभ काट डाल। आज्ञा सुन, मिहिरके सिरपर बिजली गिर पड़ी। वह एक ओर देखता है तो पित्राज्ञा-उल्लङ्घन-का दोष लगता है और दूसरी ओर स्त्रीहत्याका पातक सिर आता है! इसके अतिरिक्त विद्या, ज्ञान, गुण आदि सभी बातोंमें खना उसके जीवनकी चिरसङ्गिनी थी, उसका बिना अपराध वध करना मिहिरसे कैसे सम्भव था? वह स्तम्भित हो गया, उसका हाथ न उठा। पिताके सामनेसे हटकर वह खनाके पास पहुंच, रोने लगा।

खनाने सब हाल जानकर पतिसे कहा,—"नाथ, आप क्यों दुःखित होते हैं? इस क्षुद्र दासीके लिये पिताकी आज्ञा उल्लंघन करना आपको उचित नहीं है। आप मायामें पड़कर धर्म-पालनसे विमुख न हों। आघात, मृत्यु और आकस्मिक घटनासे बेकाम होजाना मनुष्यके लिये असम्भव नहीं है। कर्मक्षेत्रमें जो जिसके भाग्यमें बदा होगा, वह टल नहीं सकता। उसको रोक-नेका यत्न करना व्यर्थ है। मैंने अपना फलित देखा है। मेरी मृत्यु दुर्घटनासे होगी। शरीर नाशमान है, उसपर आसक्ति करना आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषोंको उचित नहीं। आप पिताकी आज्ञा पालन करें, मैं अपनी जीभ कटवानेके लिये प्रस्तुत हूं।"

मिहिरको खनाके एक एक शब्द तपे तेलसे जान पड़ते थे। उसका हृदय उबल उठा। ऐसी धर्मपत्नी संसारमें दुर्लभ है। खनाके मरनेपर अपना जीवन व्यर्थ हो जायगा, इन बातोंको जानकर भी केवल पित्राज्ञा-पालनके हेतु मिहिरने खनाकी जीभ काट डाली! कोमल खनाका उसी समय देहान्त हो गया!

कोई यह भी कहते हैं कि, वराहकी भूलें खना बताती थी, इसीसे चिढ़कर उसने पुत्रको ऐसी कठोर आज्ञा दी! जो हो,

भारतका एक स्त्रीरत्न एक प्रसिद्ध विद्वान्के अविचारसे अल्पकालमें ही संसारसे उठ गया। यदि खना और कुछ दिन जीवित रहती; तो हमें उसके बनाये ग्रन्थरत्नोंका भी लाभ होता, पर दुर्भाग्यसे वैसा नहीं हुआ। खेतिहर और गवांरलोग खनाके बताये सिद्धान्तोंसे पानी, सूखा आदिका अभीतक भविष्य बताते हैं। खनाकी मृत्युसे राजासे लेकर रंकतक सबको दुःख हुआ। वराहकी क्रूरता, मिहिरकी पितृभक्ति और खनाकी विद्या, बुद्धि तथा सतीत्व-रक्षा विचार करने योग्य है।

—:*:—

मलयबाई देसाई।

—०*०—

महाराष्ट्रवीर शिवाजी महाराजकी इच्छा थी कि, समग्र भारतमें हिन्दुओंका एकछत्री राज्य हो। तदनुसार एकके बाद दूसरे प्रान्तोंके छोटे बड़े राज्योंको वे अपने राज्यमें मिलाते जाते थे। महाराष्ट्रमें बल्लारी दुर्ग प्रसिद्ध है। शिवाजीके समयमें वहांका राजा शान्तिपूर्वक राज्य कर रहा था। थोड़े ही दिनोंमें राजाका देहान्त हुआ और राज्यका सब भार रानी मलयबाईपर आ पड़ा। इस चतुर क्षत्रियवीराङ्गनाने राज्यका प्रबन्ध बहुत ही अच्छा रक्खा था। इधर शिवाजी चारों ओर विजय सम्पादन करते हुए बल्लारीके निकट आ पहुँचे। रानीने विना संग्रामके अपनी प्यारी स्वाधीनताको खो बैठना उचित नहीं समझा। सैनिक सरदारोंको उत्तेजित करती हुई वह स्वयं युद्धके लिये रणाङ्गणमें उतर पड़ी। जिस नरवीरने दिल्लीके तख्तको भी डगमगा दिया, उसके सामने मलयबाईकी क्षुद्र सेनाकी क्या चल सकती है? तथापि २७ दिनों तक मलयबाई लगातार लड़ती रही,

अन्तमें बल्लारी दुर्गका एक हिस्सा टूटनेसे मराठोंने किला अपने अधीन कर लिया और मलयबाई कैद हो गई।

उसकी वीरता और साहस देखकर शिवाजी तथा उनके वीर सरदारोंको अत्यन्त आश्चर्य होता था। मलयबाई दरबारमें लायी गई। शिवाजीने उसे आदरसे निकटके आसनपर बैठाया। उस समय मलयबाईने कहा,—"महाराज, आप इस देशके राजा हैं और मैं इस क्षुद्र दुर्गकी रानी हूं। आप हिन्दुओंकी स्वाधीनता बचानेके यत्न करते हैं, मैं अपनी स्वाधीनता नष्ट न होनेके यत्न करती हूं, आपकी शक्ति विशाल और मेरी क्षुद्र है। मैं अपनी शक्तिके अनुसार राजधर्म पालन करती रही और इसीसे आपके साथ लड़ी। मुझे सफलता नहीं हुई यह मेरा दोष नहीं है। अब मैं आपके चरणोंपर आत्मसमर्पण करने आई हूं। आप राजधर्म जानते हैं, क्षत्रिय वीराङ्गना प्राण रहते अपने कर्तव्यसे विमुख नहीं होतीं इसका परिचय मैंने आपको दे दिया, अब आप उचित समझें सो करें, मैं किसी प्रकारका अनुग्रह आपसे नहीं चाहती।"

शिवाजीने कहा,—"मां, आप रानी हैं, रानीपदके योग्य हैं और आगे भी आपका रानीपद इस शिवाजीके जीतेजी कोई नहीं छीन सकता। मेरी माता जीजाबाईके अतिरिक्त आप जैसी तेजस्विनी, वीरता तथा राजधर्मपालनमें निपुण मैंने समग्र महाराष्ट्रमें दूसरी स्त्री नहीं देखी। मैं जीजाबाईका पुत्र हूँ, आप जैसी वीराङ्गनाकी मर्यादारक्षा करना मैं जानता हूं। आजसे मेरी माताकी जगह आप हैं, आप अपने दुर्ग और राज्यका शासन करें, मैं किसी प्रकार हस्तक्षेप न करूँगा। आप जैसी देवियोंके स्वाधीनभावमें रहनेसे ही हमारा और इस देशका गौरव है। हमारे अपराधोंको हृदयसे भुला दें और हमें आनन्दसे आशीर्वाद दें, जिससे हम इस देशकी कुछ सेवा कर सकें।"

मलयबाई बोली,—"महाराज, हिन्दुराज्यके आप यथार्थ छत्र-पति हैं। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि, समग्र भारतमें आप विजय सम्पादन करें। हिन्दुराज्यकी आपहीसे प्रतिष्ठा रहेगी। आपके प्रति मेरे हृदयमें चाहे जितनी श्रद्धा, भक्ति और कृतज्ञता क्यों न हो; परन्तु मैं अपनी स्वाधीनता किसी मूल्यपर नहीं बेच सकती। मेरी स्वाधीनता आपने नहीं छीन ली, इस पुण्यकार्यके पुरस्कारमें परमात्मा आपको यश देगा। प्रभो! स्वाधीनता अमूल्य और अवि-क्रेय है। तथापि यह निश्चय समझें कि, यह राज्य आपका है। आपकी प्रबल शक्तिका साथ यह बल्लारीकी क्षुद्रशक्ति कभी न छोड़ेगी। आप दासीको जिस समय आज्ञा करेंगे, हिन्दुराज्यकी रक्षाके लिये यह उसी समय प्राणपणसे उद्योग करेगी।"

बल्लारीमें कुछ दिन रह कर शिवाजी चले गये। पुनः शिवाजीने मलयबाईसे किसी प्रकार राज्यके सम्बन्धमें पूछताँछ नहीं की, तो भी मलयबाई बल्लारी राज्य शिवाजीका दिया हुआ उपहार समझती थी। मलयबाईने स्वपराक्रमसे राज्यकी रक्षा की, इससे बल्लारीकी सब प्रजा उसे देवीके समान मानती थी। "मान रहे तो प्रान, मानहीन जीवन वृथा।" इस उक्तिके अनुसार मलयबाईने अपना मान रक्खा और शिवाजीकी उदारता तथा गुणग्राहकतासे उस समय स्त्रियोंकी कैसी सम्मानरक्षा होती थी, इसका भी पाठकोंको कुछ परिचय मिल गया।

—:o:—

सच्ची सहधर्मिणी-नीर कुमारी।

मारवाड़के राजा अजीतसिंहके पौत्र रामसिंह और उनके चाचा अर्थात् अजीतसिंहके द्वितीय पुत्र भक्तसिंहमें विरोध बढ़कर एक समय बड़ा भारी युद्ध हुआ। राज्याधिकारी

रामसिंह राज्यशासन करते थे, उनके विरुद्ध भक्तसिंहने राजद्रोह किया। सरदारोंमेंसे कुछ भक्तसिंहकी तरफ हो गये और कुछ राजाकी तरफ बने रहे। मेहोत्री सरदार राजाके पक्षमें थे। जब युद्ध आरम्भ हुआ, तब मेहोत्री सरदार दलबल सहित राजाकी सेनामें आ पहुंचा। मेहोत्रीको एक महाबली पुत्र था। राजाने उसे न देखकर सरदारसे पूछा,—"तुम्हारा पुत्र क्यों नहीं आया? उसे शीघ्र बुलाओ। ऐसे ऐसे वीर इस समय हमें सहायता न करेंगे, तो हमारा निवाह कैसे होगा?"

मेहोत्री कुमार नीरके सरदारकी कन्याका पाणिग्रहण करने उसकी रियासतमें गया था। मण्डपमें आप्त इष्ट और माननीय सज्जन विवाहोत्सवमें सम्मिलित हुए थे, पुरोहित मन्त्र पढ़ रहे थे; पुष्पमालासे वरवधूके हाथ बांधे गये थे, इसी अवसरमें मारवाड़के राजदूतने आकर कुमारसे युद्धका सब हाल कह सुनाया। सामने सुन्दर स्त्री और चारों ओर मङ्गल स्वरोंका घोष होनेपर भी जोशसे हृदय उबल उठनेके कारण कुमारको शरीरकी कुछ भी सुध न रही। किसी प्रकार आवश्यक विवाहविधि समाप्त कर, वे उन्हीं वरवस्त्रोंको पहिने हुए घोड़ेपर चढ़ पिताके पास जा पहुंचे। ८० कोसका प्रवास बिना कहीं रुके उन्होंने समाप्त किया। इस स्वामि-भक्ति और पित्राज्ञापालनको देख, सभी लोग कुमारका कौतुकसे अभिनन्दन करने लगे।

कुमारने जाते समय स्त्रीसे केवल इतना ही कहा था कि, "मैं राजपूत वीर हूं और तुम भी राजपूतबाला हो। हमारा जीवन सुख भोगनेके लिये नहीं है। यदि जीवित रहा तो पुनः मिलूँगा।" इसपर नीरकी कुमारी लज्जासे मुँह नीचाकर बोली,—"आप मेरी चिन्ता न कर आनन्दसे विजय प्राप्त करें, यहां नहीं तो वहां अवश्य ही हम मिलेंगे।" कुमारीने उसी समय ससुराल जाना

स्थिर किया । माता-पिताने युद्ध समाप्त होनेतक ठहरनेका बहुत आग्रह किया, पर उसने हठ पकड़ा और उसी समय वह ससुराल विदा हुई ।

नीरकी कुमारी ससुराल जाकर देखती क्या है कि, पतिका शव चितापर रक्खा है और लोग अग्नि देनेकी तैयारीमें हैं । उसने जाते ही गुरुजनोंके चरणोंको स्पर्श किया तथा भग्नहृदय हो, पतिके शवसे लिपट गई । शोकाकुल हो अन्तिम समयमें करुणापूर्ण वाणीसे उसने कहा,—"नाथ, इस जीवनमें मैं आपको नहीं प्राप्त कर सकी, दूसरे जन्ममें आप अपनी सङ्गिनी बनानेसे मुझे क्यों वञ्चित रखते हैं ?" लोगोंने चितामें रोते हुए अग्नि दिया । देखते देखते चिता जलने लगी । नव-वर-वधूकी सोहागरात चितापर हुई । अग्निदेवने दोनोंके पवित्र देह भस्मराशिके रूपमें एकत्र कर दिये । एक घड़ीका भी सम्बन्ध होनेसे भारतकी सती कुमारियां कैसी पतिप्राणा होती हैं, इसका उदाहरण नीरकी कुमारीने दिखा दिया । वास्तवमें ऐसी ही स्त्री सच्ची सहधर्मिणी कही जानेके योग्य हो सकती है ।

हमीर-माता और हमीर-पत्नी ।

चित्तोर छारखार हुआ; उसके कुछ दिन पहले राणा लक्ष्मणसिंहका ज्येष्ठपुत्र अरिसिंह एक दिन आन्दावा नामक जङ्गलमें दलबल सहित शिकार करने गया था, वहां उसने एक वनसूअरपर तीर चलाया । सूअर भागकर निकटके जुनरीके खेतमें घुसा; राजपुत्र भी साथियोंके साथ उसके पीछे लगा । खेतोंमें

पशुपक्षियोंसे अन्नकी रक्षा करनेके लिये प्रायः मचान बना रखते हैं। उस खेतमें भी एक मचान बना हुआ था, जिसपर बैठकर एक कृषक-कन्या खेत रखा रही थी। जब उसने देखा कि, सूअरके पीछे पीछे राजपुरुष भी खेतमें आकर उपद्रव मचा रहे हैं, तब उसने मचानसे उतर कर राजपुत्रसे नम्रतापूर्वक कहा,—"कुमार, आप क्यों इतना कष्ट उठाकर मुझ गरीबिनीका खेत सत्यानाश करते हैं? मैं आपका शिकार अभी आपके सामने ला देती हूं।" बालिकाकी बात सुन सब आश्चर्य ही कर रहे थे कि, उसने जुनरीके एक पेड़को काटकर उसका अग्र छूरीसे खूब तेज बना लिया और उसीसे सूअरको मारकर वह राजपुत्रके सामने ले आयी। पुरुषोंकी अपेक्षा उसकी यह विचित्र शक्ति देख, सभी चकित हो डेरेमें लौट आये।

दूसरे दिन उसी खेतके निकटकी नदीमें अरिसिंह अपने सिपाहियोंके साथ स्नान कर रहा था, इतनेमें एक विशाल पत्थर कहींसे आकर उसके घोड़ेके पैरमें इतने जोरसे लगा कि, घोड़ा मारे पीड़ाके जमीनमें लेट गया। पता लगानेपर ज्ञात हुआ कि, उसी कृषक-कुमारीने वह पत्थर पक्षियोंपर चलाया था, पर चूक कर घोड़ेको लगा। जिस घोड़ेको दस पत्थर मारनेसे कुछ नहीं हो सकता, उसे इस कन्याने एक ही पत्थरसे मार गिराया, ऐसी शक्ति न कभी किसीने सुनी न देखी थी। सब आश्चर्य करते हुए राजधानीको लौटे। रास्तेमें पुनः वह कृषक-कुमारी मिली। सिरपर दूधका घड़ा धरे और दोनों हाथोंमें दो भैंसे डोरीमें बांधे वह आनन्दसे जा रही थी। एक सरदारके जीमें आई कि, घोड़ेका धक्का देकर उसका दूध गिरा दिया जाय। लड़की इस बातको ताड़ गयी। सरदारके पास आते ही उसने उसके घोड़ेके पैरमें रस्सीका फन्दा डालकर खैंचा कि, सरदारराम घोड़े सहित मुँहके

थल जमीन चूमने लगे। लड़कीका तमाशा देखना चाहते थे, स्वयं तमाशा बन गये।

बालिकाकी शक्ति देख, उसपर अरिसिंह मोहित हो गया। पता लगानेसे मालूम हुआ कि, वह क्षत्रियकन्या है। बस्, उसके पितासे कहकर अरिसिंहने उससे विवाह कर लिया। इसी वीर कृषक-कन्याको थोड़े ही दिनोंमें अरिसिंहसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हम्मीरसिंह रक्खा गया। चित्तोर ध्वंस हुआ, उस समय हमीरकी अवस्था बारह वर्षकी थी। सम्हलनेपर इसी पराक्रमी पुरुषने पुनः चित्तोरका उद्धार किया था।

राणा लक्ष्मणसिंहके देहान्त होनेपर उसके द्वितीय पुत्र अजयसिंहने कैलवाड़ा राज्य बसाया था। उस राज्यपर कई राजपूतोंने आक्रमण किया, जिनमें मुख्य राजपूत राजा मुञ्ज था। अजयसिंहको आजिमसिंह और सुजनसिंह नामक दो पुत्र थे, पर उन्होंने पिताको किसी प्रकारकी मदद नहीं दी। वीरवर हम्मीरने अपने चाचाके जानी दुश्मन मुञ्जको मार डाला और उसका सिर उनके चरणोंमें अर्पण किया। इस पराक्रमसे प्रसन्न हो, मुञ्जके रक्तसे अजयसिंहने हम्मीरसिंहको तिलक किया और उसीको अपना उत्तराधिकारी बनाया।

उस समय चित्तोर तथा मेवाड़प्रान्त अलाउद्दीनके अधिकारमें था और वहांका राज्य मालदेव नामक एक राजपूत करता था। हम्मीरके राणा पदपर प्रतिष्ठित होते ही उसने भीलोंकी सहायतासे अपने राज्यका विस्तार करना आरम्भ किया, जिससे मालदेव और हम्मीरमें प्रबल शत्रुता हो गई। राजपूतोंमें यह नियम है कि, कन्याका पिता एक नारियल वरके पास भेजे और यदि वर उसे स्वीकार कर ले तो विवाह निश्चित हो जाता है। तदनुसार परस्पर विद्वेष होनेपर भी मालदेवने हम्मीरके पास अपनी कन्याकी ओरसे

नारियल भेजा और उसे हम्मीरने स्वीकार कर लिया। मन्त्रियोंने राणाजीको इस कामके करनेसे रोका था, पर उन्होंने यह उत्तर दिया कि—"इसी बहानेसे हम अपने पुरखोंकी जन्मभूमि देख आवेंगे।"

विवाहका दिन स्थिर हुआ। हम्मीर पाँचसौ घुड़-सवारोंके साथ चित्तोर पहुंचे। स्वागतके लिये मालदेव केवल अपने पुत्रोंके साथ उपस्थित हुए थे और विवाहका कोई समारम्भ नहीं दीख पड़ा। इसका कारण भी किसीने नहीं बताया। निश्चित समय-पर विवाह हो गया। रातको सुहागरातकी विधि करनेके लिये महलमें हम्मीर बैठे थे, इतनेमें नववधू आ पहुँची। वह राणाजीको प्रणाम कर दूर खड़ी हो गई। राणाजीने उसे पास बुलाया, तब वह नम्रभावसे बोली,—"महाराज, दासीको क्षमा करें, मेरे इतने भाग्य कहां जो मैं आपकी अर्धाङ्गिनी बनूँ?"

हम्मीरने कहा,—"क्यों? जब तुम मेरी विवाहिता पत्नी हुईं तब अर्धाङ्गिनी क्यों नहीं हो सकतीं? शत्रुकी कन्या होनेसे ही कोई स्त्री अयोग्य नहीं हो सकती, इसमें भाग्यकी क्या बात है?" इस पर मालदेवकी कन्याने कहा,—"सो बात नहीं है। मेरे पिता आपके शत्रु हुए तो क्या? जिन यवनोंका नाम भी सुननेसे मेरा शरीर जलने लगता है, उनकी अधीनता स्वीकार कर मेरे पिताने चित्तोरके सिंहासनको कलङ्कित किया है, केवल इसीसे मैं आपके अयोग्य नहीं हूं। वह कारण दूसरा ही है, जिससे मैं निर्णय नहीं कर सकती कि, मुझे महाराणाकी रानी बननेका अधिकार है या नहीं।" आश्चर्यसे हम्मीरने पूछा,—"वह कारण कौनसा है?"

"महाराज, मेरे पिताने आपको धोखा दिया है।"

"कैसा?"

"महाराज, मैं बालविधवा हूँ। मैं छोटी थी, तभी मेरा विवाह भट्टीवंशके किसी सरदारके साथ कर दिया गया था, पर

कुछ ही दिनोंमें उसकी मृत्यु हुई। मुझे स्मरण तक नहीं कि, मेरा कब विवाह हुआ और मेरे स्वामी कैसे थे! पिताने अपना वैर चुकानेके लिये आपको ऐसा धोखा दिया और यही कारण है कि, यह विवाह विना किसी समारोहके गुप्त रीतिसे किया गया। आप यह निश्चय समझें कि, आजतक इस देहने किसी परपुरुषका स्पर्श नहीं किया है और मैं नहीं चाहती कि, मेरे कारणसे निर्मल राणा-वंश कलंकित हो। जो कुछ सत्य था मैंने निवेदन किया, अब आप उचित समझें सो करें। इस जीवनमें इन चरणोंके अतिरिक्त मेरी कोई आराध्य-देवता नहीं है; क्योंकि पहिले पतिका स्मरण न होनेसे अभी तक कुमारीकी तरह मेरा चित्त विशुद्ध है।"

हम्मीर ज्यों ज्यों उस सुन्दरीकी बातें सुनते, त्यों त्यों 'किं कर्तव्य विमूढ़' बनते जाते थे। ऐसी अतुलनीय सरलता, उदारता, स्वार्थत्याग, हृदयकी कोमलता, चरित्रकी दृढ़ता, तेजस्विता और सुन्दरता हम्मीरने पहिले कभी नहीं देखी थी। वे क्रोध और अभिमानसे एक बार क्षुब्ध होते और पुनः विचार कर मन ही मन क्रोधको पानीके घूँटकी तरह पी जाते थे। अन्तमें उदारता और प्रेमने उनके हृदयमें स्थान पाया। उन्होंने सुन्दरीको गले लगाकर कहा,—"देवि, तुम्हारे जैसी महाप्राणा, वीरबाला इस संसारमें दुर्लभ हैं। मालदेवकी कुटिलताका फल उसको मिलेगा, मैंने देव ब्राह्मणोंके सामने जिसका हाथ पकड़ा, उसे जीवन पर्यन्त नहीं छोड़ सकता। मेरे इस कार्य्यसे राणावंश कभी मलिन नहीं होगा।

"रघुकुल रीति यही चलि आई।
प्राण जायँ पर वचन न जाई॥"

भारतका यदि धर्म बचा हो, तो वह स्त्रियोंके स्वार्थत्यागका ही फल है। कुछ दिनोंके बाद मौका देख, राणासे नवपरिणीता वधूने

चित्तौरके उद्धारका प्रस्ताव किया। उसने कहा,—"इस काममें 'जाल' नामक सरदारसे आपको विशेष सहायता मिलेगी, इसलिये उसे दहेजमें आप मेरे पितासे माँग लें।" राणाने ऐसा ही किया। वास्तवमें इस कार्य्यसे मालदेवको हानि पहुंचनेका सम्भव था, पर बुद्धिमती कन्याने देश-कल्याणके आगे व्यक्तिगत स्वार्थकी पर्वाह न की और वह 'जाल' को ले, पतिके साथ कैलवाड़ेमें चली आई। कुछ दिनोंमें हम्मीरको एक पुत्र हुआ, उसके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें मालदेवने हम्मीरको कैलवाड़ा और उसके आसपासका पहाड़ी प्रदेश उपहारमें दे डाला।

एक वार चित्तौरके क्षेत्रपाल नामक देवताकी मनौती पूर्ण करनेके लिये मालदेवकी कन्या अपने पुत्रके साथ वहां गई। उस समय मालदेव पुत्रोंके साथ किसी शत्रुसे लड़नेके लिये जा रहा था। यह अवसर अच्छा देख उसने वहांके राजपूतोंको उत्साहित किया और पति हम्मीरको भी सैन्यके साथ आनेके लिये लिखा। यथासमय हम्मीरने आकर मुसलमानोंसे युद्ध किया और चित्तौर स्वतन्त्र बना डाला। मालदेवने भी कुछ आपत्ति नहीं की और स्वपराक्रमसे प्राप्त राज्यका अधिकार जामाताको ही आनन्दसे अर्पण किया। बहुत दिनोंतक राज्योत्सव होता रहा और इसका यश मालदेवकी कन्याको ही दिया गया।

—:※:—

सती संयोगिता।

ऐतिहासिक युगमें बारहवीं सदीके शेषभागसे ही भारतमें फूटका बीज बोया गया और आपसके झगड़ोंमें दूसरोंको हस्तक्षेप करनेका अवसर देकर हमने अपने हाथों अपनी उन्नतिके पथमें कांटे बिछा लिये। सुलतान महमूद गजनवीने ११

वीं सदीके आरम्भमें भारतपर कई बार आक्रमण किया, पर बहुत हानि उठाकर भी पञ्जाबके कुछ भागके अतिरिक्त उसके हाथ कुछ न लगा। तबसे सौ डेढ़सौ वर्षतक मुसलमानोंने हिन्दुस्थानकी ओर देखा भी नहीं।

बारहवीं सदीमें भारतके चार राज्य अत्यन्त प्रसिद्ध थेः—दिल्ली, अजमेर, कन्नौज और मेवाड़। दिल्लीपति अनङ्गपालको कोई पुत्र नहीं था, केवल दो कन्याएँ थीं, जिनमेंसे एक अजमेरनरेश चौहान सोमेश्वरसे और दूसरी कन्नौजराज राठौर विजयपालसे व्याही गई थी। इन्हीं कन्याओंसे राजा सोमेश्वरको पृथ्वीराज और राजा विजयपालको जयचन्द नामक पुत्र हुआ। वृद्ध सम्राट् अनङ्गपालने देहान्तके समय अपने दौहित्र पृथ्वीराजको दिल्लीके सिंहासनपर बैठाया, क्योंकि पृथ्वीराज जयचन्दकी अपेक्षा छोटा होनेपर भी बहुत चतुर, पराक्रमी और राज्य चलानेके सर्वथा योग्य था। इस बातसे जयचन्दको बहुत बुरा लगा और वह उससे डाह करने लगा। हमारी चरित्रनायिका संयोगिता जयचन्दकी पुत्री थी। संयोगिताके रूपकी ख्याति बहुत होनेसे सभी राजपुत्र उसके लिये लालायित रहते थे, पर उसका मन जयचन्दके परम वैरी पृथ्वीराजपर था और वास्तवमें वह पृथ्वीराज जैसे पराक्रमी पुरुषके ही योग्य थी।

उस समय भारतमें यह प्रथा थी कि, जो राजा सबसे अधिक बलवान् होता, वही 'सार्वभौम' अथवा 'सम्राट्' कहलाता था। पृथ्वीराजके अधिकारमें अजमेर और दिल्ली ये दो राज्य थे। वास्तवमें जयचन्दको इससे आनन्द होना चाहता था, पर उसे पृथ्वीराजकी कीर्त्ति असह्य हो उठी, उसने कई राजाओंको मिलाकर अपनेको सार्वभौम पदपर प्रतिष्ठित करा लिया। केवल मेवाड़-नरेश समरसिंह और पृथ्वीराज इस बातसे सहमत नहीं हुए।

इसका बदला चुकानेके लिये जयचन्दने एक राजसूय यज्ञ किया, जिसमें सब राजाओंको बुलाया, पर समरसिंह और पृथ्वीराजको न बुलाकर उनकी प्रतिमूर्त्तियाँ द्वार-रक्षकके स्थानपर रखवा दी। जयचन्दने यह भी घोषणा करवा दी थी कि, इसी यज्ञमें संयोगिता स्वयम्वर करेगी। यथासमय संयोगिता सभामें पहुँची, एक एक करके सब राजाओंको देखती हुई वह उस द्वारके निकट गई, जहां पृथ्वीराज और समरसिंहकी प्रतिमूर्त्तियां रक्खी थीं। संयोगिता मन ही मन पृथ्वीराजको आत्म-समर्पण कर चुकी थी, उसने उन्हींकी प्रतिमूर्त्तिके गलेमें माला पहिना दी। संयोगिताके इस कार्य्यसे जयचन्द आग बबूला हो गया, उसने कन्याकी ओर कड़ी नज़रसे देखा, पर संयोगिता यह कहती हुई अन्तःपुरमें चली गई कि,—"जिसको मैं एक बार मनसे वर चुकी, उसके अतिरिक्त संसारके सब पुरुष मेरे बन्धु और बेटोंके समान हैं।" इस बातका पता पृथ्वीराजको लगते ही उसने कन्नौजपर चढ़ाई की और जयचन्दको पराजित कर वह संयोगिताको ले लाट आया। अब तो जयचन्दके क्रोधकी डिगरी और भी बढ़ गई। वह दिन रात पृथ्वीराजसे बदला चुकानेके विचारमें खाना पीना तक भूल गया। उसका बल इतना नहीं था कि, वह अकेले पृथ्वीराजसे सामना करता; इससे दूसरोंकी सहायता लेनेका विचार करने लगा।

सन् ११९१ में शहाबुद्दीन महम्मदगोरी पश्चिमोत्तर प्रदेशमें बड़ी भारी सेनाको लेकर उपद्रव मचा रहा था। जयचन्दने पृथ्वीराजसे बदला चुकानेकी घृणित इच्छासे उसका आश्रय लेकर पृथ्वीराजपर चढ़ाई की। पृथ्वीराजने अपने बहिनोई समरसिंहको लिखा। वे भी दलबल सहित पहुंच गये और दोनोंने मिलकर जयचन्द और शहाबुद्दीनको मार भगाया। रणमें जातेहुए पृथ्वीराजको संयोगिताने स्वयं रणसज्जासे सजाकर यों उत्तेजित किया था,—"नाथ, घरकी

फूट बुरी होती है, जयचन्दने गोरीसे मिलकर अपना सर्वनाश करना विचारा है; परन्तु परमात्मा सत्यका पक्षपाती है, अन्तमें सत्यकी ही विजय होगी। आप आनन्दसे रणमें जाकर शत्रुओंको अपना पराक्रम दिखा दें। देवगण, पितृगण और ऋषिगण आपकी रक्षा करेंगे। आप पार्थिवशरीरकी चिन्ता न करें, यह तो नाशमान है, कीर्त्तिरूपी देहका नाश करनेकी किसीमें सामर्थ्य नहीं है। आप शत्रुओंको मारकर उन्हींके रक्तसे भींगे हुए हाथोंसे कुलदेवताकी पूजा करें। जाइये, समस्त देवता आपका मङ्गल करेंगे।"

दूसरे वर्ष जयचन्दकी सहायतासे बड़ी भारी सेना एकत्र कर गोरीने पुनः पृथ्वीराजके राज्यपर आक्रमण किया। पृथ्वीराजकी सहायताके लिये पुनः मेवाड़से समरसिंह आये। संयोगिताने पतिको पुनः उत्तेजना दी, पर नहीं मालूम आज संयोगिताका हृदय पतिको संग्राममें विदा करते हुए क्यों डरता है। उसने अपने मनका भाव रोकनेका बहुत यत्न किया, पर सब निष्फल हुआ। आलिङ्गन करते हुए उसकी आंखोंसे दो आंसू पृथ्वीराजकी भुजापर गिर पड़े। पृथ्वीराजने उसकी ओर देखा, पर उसने अपना मुंह छिपा लिया। बाहर समरसिंह खड़े थे, इससे पृथ्वीराजने स्त्रीके पास बहुत देर तक ठहरना उचित नहीं समझा। वे वहांसे विदा हुए। संयोगिताने जाते समय केवल इतनाही कहा,-"जीवनमें यही अब अन्तिम विदा है। हा भगवन्! क्या मैं पुनः यह मुख देखूंगी?"

पहिलेकी तरह दृषद्वती नदीके तटपर तिरौरी नामक स्थानमें पुनः हिन्दू-मुसलमानोंका युद्ध आरम्भ हुआ। गोरीने जान लिया कि, पृथ्वीराजके साथ युद्धमें विजय पाना टेढ़ी खीर है, इसलिये उसने कूटनीतिसे अपना काम बनाना स्थिर किया। पृथ्वीराजके पास सन्धिका प्रस्ताव किया गया। सरल और उदारचेता पृथ्वी-

राजने उसे स्वीकार कर सेनाको विश्राम करनेकी आज्ञा दी। हिन्दु-सेना निश्चिन्तभावसे विश्राम कर रही थी, कि विश्वासघातक गोरीने उसपर सहसा आक्रमण किया। पृथ्वीराज और समरसिंहने पुनः व्यूह बांधकर लड़नेकी बहुत कोशिश की, पर कोई कोशिश काम न आई। सैन्य तितरबितर होगया था, इससे महावीर समरसिंह उसी समय निहत हुए और पृथ्वीराज बन्दी बना लिये गये। हमें लिखते लज्जा होती है कि, नराधम गोरीने वीरकेसरी पृथ्वीराजका बड़ी निर्दयतासे वध किया और उत्तरभारतमें हमारी मूर्खतासे लाभ उठाकर अपना झण्डा गाड़ दिया। तिरौरी क्षेत्रमें हिन्दू-गौरव-रविका सदाके लिये अस्त होगया। हा भारत! आजसे ही तेरे यहां पराधीनताने अपना पौरा जमाया!

जिस दिनसे पृथ्वीराजको करुणापूर्ण हृदयसे संयोगिताने विदा किया, उसी दिनसे वह केवल जल पीकर दिन काटने लगी थी। थोड़ेही दिनोंमें पृथ्वीराजका अन्तिम समाचार उसने सुना। शीघ्र ही चिता बनानेकी आज्ञा हुई। संयोगिताने अग्निनारायणके साथ पतिलोकमें प्रयाण किया। मुसलमान कुछ दिनोंमें भारतव्यापी होगये।

—:o:—

सती पद्मिनी।

—:o:—

भारतमें कुरुक्षेत्र और मेवाड़ ये दो स्थान ऐसे हैं, जहांकी भूमिको अनन्त वीर स्त्रीपुरुषोंने अपने रक्तसे सिञ्चन कर पवित्र और चिरगौरवान्वित बना डाला है। संग्रामसिंहकी मृत्यु होनेपर करीब सौ सवासौ वर्षोंके बाद मेवाड़की गद्दीपर राणा लक्ष्मणसिंह विराजमान हुए। लक्ष्मणसिंह नाबालिग होनेके

कारण सब राजकार्य उनके पितृव्य भीमसिंह ही करते थे। सिंहल-कुमारी पद्मिनी राणा भीमसिंहकी धर्मपत्नी थी। बहुत दिनोंके पहिले वङ्गराज सिंहबाहुके पुत्र विजयसिंह सैकड़ों अनुचरोंके साथ सिंहलमें जा बसे थे, पद्मिनी उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुई थी।

पद्मिनीके समान रूपवती स्त्री आजतक भारतमें उत्पन्न नहीं हुई। वह जैसी रूपवती वैसी ही पतिप्रेम-परायणा थी। पर उसके सतीत्वकी कल्पना मुसलमानोंको कैसे हो सकती है? उनका भाई बहिनोंमें भी विवाह हो जाता है, तब अन्य धर्म और जातिकी कन्याओंकी कौन कहे? दिल्लीपति अलाउद्दीन पद्मिनीके रूपकी कीर्त्ति सुन उसपर मोहित होगया और उसे हस्तगत करनेके विचारसे उसने मेवाड़के राणासे युद्ध करना निश्चित किया। दल-बलके साथ उसके मेवाड़में आतेही राजपूत और मुसलमानोंमें युद्ध आरम्भ होगया। दोनों बहुत दिनोंतक लड़ते लड़ते थक गये। दोनोंमें लड़नेकी शक्ति नहीं रही, यह देख अलाउद्दीनने राणाके पास प्रस्ताव किया कि,—"मैं पद्मिनीको नहीं चाहता, आप उसे केवल एक बार मुझे दिखा दें, मैं देखकर फौरन दिल्ली लौट जाऊंगा।" राणाजी विचार करने लगे कि, राजपूतकुलवधूका मुख म्लेच्छ यवनराजा क्योंकर देख सकता है? उन्होंने निश्चय करलिया कि, हम अलाउद्दीनको पद्मिनीका मुख कभी न दिखाएंगे। यह बात पद्मिनीने सुनी। उसने पतिसे कहा,—"नाथ, केवल इसी शर्तपर यदि अलाउद्दीन लड़ाई बन्द करता हो, तो आप क्यों आपत्ति करते हैं? मेरे मुंहमें क्या नग जड़े हैं, या मैं ऐसी कौन अप्सरा हूं जो मेरे लिये असंख्य वीरोंका व्यर्थ प्राणनाश हो। मैं प्रत्यक्ष तो नहीं किन्तु आईनेमें देखती रहूंगी; वह आकर मेरी छाया देखले। देखना ही है तो वह मुझे इस प्रकार देख सकता है और इससे आपकी प्रतिज्ञा भी भङ्ग नहीं होगी।"

भीमसिंहने दूरदर्शितासे विचारकर पत्नीका कहना मान लिया और अलाउद्दीनको एक दिन अपने यहाँ निमन्त्रित किया। अलाउद्दीन पद्मिनीको आईनेमें ही देखनेपर राजी हो गया और निमन्त्रण स्वीकार कर निश्चित समयपर राजप्रासादमें उपस्थित हुआ। अलाउद्दीनने पद्मिनीकी छवि आइनेमें देखी। उसने अपने हृदय-पटल-पर पद्मिनीका कल्पना-चित्र सुन्दरसे भी सुन्दर खैंचा था; पर इस छविके आगे वह फीका ठहरा और उसके घृणित मनोविकार और भी प्रबल हो उठे। राणाजीसे किये हुए प्रस्तावको भूलकर, अब उसने पद्मिनीको हरण करनेका मन ही मन निश्चय कर लिया। यथाविधि आदर सत्कार समाप्त होनेपर अलाउद्दीन चला गया। दूसरे दिन उसने राणाजीको दावत दी। सरलचित्त राणाजी दो चार नौकरोंके साथ यवनशिविरमें ज्यों ही पहुंचे, त्योंही दुष्ट अलाउद्दीनने उन्हें कैद कर लिया और महलमें मन्त्रियोंसे कहला भेजा कि,—"जबतक पद्मिनी मेरे पास न भेज दोगे, तबतक राणाजी कैदमें ही रहेंगे। यही नहीं, किन्तु उनके प्राणोंको भी धोखा पहुँचेगा।" यह सम्वाद सुन सब राजपूत मारे क्रोधके आगबबूला हो गये और नीच यवन-कुलकलङ्कको उचित शासन करनेका आयोजन करने लगे।

महाकवियोंने भारतकी स्त्रियोंको विचार करते समय मन्त्रीका पद दिया है। यदि बालिकाओंको आरम्भसे ही अच्छी शिक्षा दी जाय, तो इसमें सन्देह नहीं कि, वे ही गृहिणी पदपर प्रतिष्ठित होनेपर पतिके मन्त्रीका काम कर सकती हैं। पद्मिनी केवल रूपवती ही नहीं, किन्तु व्यवहार-चतुरतामें भी अद्वितीया थी। यह हम पहिले लिख चुके हैं कि, कई दिनोंतक जो हिन्दू-मुसलमानोंमें युद्ध होता रहा, उससे दोनों दलवालोंकी नसें ढीली पड़गई थीं। ऐसे अवसरमें अलाउद्दीनके धोखेका प्रतीकार संग्राममें तलवारसे करना थोड़ेसे

राजपूतोंके लिये असम्भव ही था। सब राजपूत लोग लाख बार आग बबूला होकर जान देनेके लिये भी तैयार हो जाते, तो भी राणाजीका छुटकारा करना उनकी शक्तिके बाहर था। 'कण्टके-नैव कण्टकम्' इस न्यायसे पद्मिनीने अलाउद्दीनको धोखा देनेका निश्चय कर, सब राजपूतोंको शान्त किया और वृद्ध मन्त्रियोंकी सलाहसे यवन-राजको इस आशयका एक पत्र लिखा,—"जब आप मेरे न पानेसे ही मेरे स्वामीके पवित्र प्राणोंको हरण करना चाहते हैं, तब मैं यह उचित नहीं समझती कि, मेरे लिये मेवाड़के सूर्यका अस्त हो! मैं आपके निकट आत्मसमर्पण करनेके लिये प्रस्तुत हूं, पर आप जानते हैं कि, मैं राजपत्नी और राजकन्या हुँ। मैं अकेली आपके यहाँ न आऊँगी। मेरे साथ मेरी सात सौ सहचरी—जो सम्भ्रान्त राजपूतोंकी कन्याएं तथा महिलाएं हैं-रहेंगीं। जिनमेंसे कुछ तो मेरे साथ दिल्ली चलेंगीं और कुछ यहींसे मुझे पहुंचा कर लौट आवेंगीं। इसके अतिरिक्त आपको आत्मसमर्पण करनेके पहिले जिन पतिके चरणोंकी मैं आजतक दासी थी, उनका कुछ समय तक दर्शन करूंगी, तब आपके पास आऊंगी। कारागृह या जहां मेरी सहचरियोंकी डोलियां आवेंगीं, वहां किसी मुसलमानका पहरा न होना चाहिये, क्योंकि हम सब स्वतन्त्रतासे रहती आई हैं, पराधीनतामें वन्दीकी तरह रहना हमें पसन्द नहीं है। स्वेच्छासे घूमने फिरनेमें मुसलमान पुरुषोंके रहनेसे हमें बाधा होगी! यदि आपको मेरी उक्त शर्त्तें कबूल हों, तो मुझे सूचना दें, मैं आनेका प्रबन्ध करूँगी।"

पत्र पढ़ते ही अलाउद्दीन आनन्दसे उछल पड़ा। उसे इतना विचार करनेकी भी फ़ुरसत नहीं हुई कि, इसमें कुछ धोखा तो नहीं है? पद्मिनीकी सब शर्तें उसने मंजूर कर लीं और यथासमय बिना पहरा चौकीके यवनशिबिरमें राजपूतानियोंकी डोलियाँ

आने लगीं। कुछ डोलियाँ आतीं और पुनः लौट जाती थीं, इससे दूरसे बैठकर देखता हुआ अलाउद्दीन यही समझता था कि, जो स्त्रियाँ दिल्ली न जायँगी, वे यहींसे लौट रही हैं। पद्मिनीने अला-उद्दीनसे यह शर्त कर ली थी कि, आपके पास आनेके पहिले मैं पतिसे मिलूँगी। तदनुसार वह भीमसिंहके पास गई और उन्हें अपनी डोलीमें बिठाकर उसने सीधे किलेमें डोली ले जानेको कहारोंसे कहा। भीमसिंह और पद्मिनी दोनों सकुशल किलेमें पहुँच गये। यह समाचार पाते ही, हरएक डोलीमें बैठी हुई दो दो और डोलीके साथवाली चार चार महापतिव्रता दाढ़ी मोछवाली स्त्रियाँ एकाएक डोलयोंसे निकल पड़ीं और अव्यवस्थित तथा मदोन्मत्त हुए मुसलमानोंका संहार करने लगीं। बहुत देर हुई और पद्मिनी अभीतक नहीं आई, यह देख अलाउद्दीन शिविरमें उसे ढूंढने गया। वहां जाकर क्या देखता है कि, न वहाँ पद्मिनी है, न भीमसिंह है और न वे सात सौ राजपूत स्त्रियाँ ही हैं। सर्वत्र असंख्य राजपूत मुसलमानोंको भेड़ बकरियोंकी तरह काट रहे हैं। यह भयंकर दशा देख वह घबड़ाकर जो भागा, सो सीधा दिल्लीकी ओर रवाना हुआ।

इस युद्धमें 'गोरा' तथा उसके भतीजे 'बादल' नामक महा-पुरुषने बड़ा काम किया था। ये दोनों पद्मिनीके पितृवंशीय वीर पुरुष थे। बादलकी अवस्था केवल १२-१३ वर्षकी होनेपर भी उस अकेले बालकने हज़ारों पठानोंको मार गिराया था। 'गोरा' रणमें निहत हुआ और 'बादल' जब विजय प्राप्तकर घर आया, तब गोराकी स्त्रीने उससे कहा, तुम मेरे पतिके पराक्रमका वर्णन करो तो, मैं आनन्द-से गद्गद होकर पतिलोकमें प्रयाण करूँगी। बादलने अपनी चाचीको गोराकी वीरता ऐसी ओजस्विनी भाषामें सुनाई कि, सभी सुनने-वाले मुग्ध हो गये। गोराकी स्त्रीने प्रसन्नतासे चितापर आरोहण

किया और गोराका सेनानायकका पद राणाजीने बादलको बड़े प्रेमसे अर्पण किया।

यद्यपि अलाउद्दीन रणसे भाग गया था, तथापि पद्मिनीके प्रति उसका अभिलाष कम नहीं हुआ था। थोड़े ही समयमें उसने पुनः एक बड़ी सेना एकत्र कर ली और मेवाड़पर आक्रमण किया। अबकी बार मेवाड़में इतना सामर्थ्य नहीं था, जो वह अलाउद्दीनका सामना करता, तो भी राजपूत रणसे कभी पीछे नहीं हटते। लक्ष्मणसिंह अब बालिग़ हो गया था। उसके अधिपतित्वमें राजपूतोंने पुनः तलवार उठाई। कई दिनों तक युद्ध होता रहा, पर न किसी पक्षकी हार हुई और न जीत ही। एक दिन रात्रिके समय लक्ष्मणसिंहको स्वप्न हुआ कि, राणाजीकी कुलदेवता भयानक रूप धारण कर आई हैं और कहती हैं "मैं भूखी हूं"। सवेरे लक्ष्मणसिंहने स्वप्नका वृत्तान्त सब लोगोंको कह सुनाया। सब राजपूत कुलदेवताकी भूख शत्रुओं तथा निजके रक्तसे बुझाने लगे। इस युद्धमें राणाकुलके १२ वीरपुरुष रणमें मारे गये।

राणाकुलमें एक अजयसिंहके अतिरिक्त सब निहत हुए देख, लक्ष्मणसिंहने अजयसिंहको कहीं दूसरी ओर भेज दिया और आप भीमसिंहके साथी हुए। चित्तौरकी स्त्रियोंने यह दशा देख जुहार करना स्थिर किया। किसीका पति, किसीका पुत्र, किसीका पिता, राणाजीकी तथा देशकी सम्मानरक्षाके लिये आत्मार्पण कर चुके थे। सब स्त्रियोंने मिलकर शहरके बीचमें एक विशाल सूखा हुआ कुआँ था, उसीमें चिता जला दी। अग्निकी ज्वालाएँ देखते देखते आकाशसे बातें करने लगीं। पद्मिनी सब स्त्रियोंके आगे खड़ी होकर बोली,—"बहिनो, आज हम आर्य्यनारियोंकी मर्यादा-रक्षाके लिये, देशका मुख उज्ज्वल करनेके लिये और प्रिय मृता-

स्माओंके सन्तोषके लिये अग्निनारायणको अपने शरीर अर्पण करती हैं। हमारी इस कृतिसे पठान आँखें फाड़कर देखें कि, भारतकी स्त्रियोंके हृदयोंमें कैसा धर्मबल कूट कूटकर भरा है।"

परमात्माका स्मरण कर सब स्त्रियाँ चितामें कूदकर भस्म हो गईं। सारा शहर धूएँसे भर गया। लक्ष्मणसिंह और भीमसिंहने प्रबल वेगसे मुसलमानोंपर धावा किया, परन्तु दुर्भाग्यसे जीत मुसलमानोंकी ही हुई और लक्ष्मणसिंह तथा भीमसिंह रणमें मारे गये। विजयपताका लेकर मुसलमान शहरमें घुसे। पर वहां क्या था? बालबच्चों सहित सब स्त्री-पुरुष मरे पड़े थे, या जलकर भस्म हो गये थे। शून्य मेवाड़ अवाक् होकर मुसलमानोंको धिःकार देता था और उनके कानोंमें गुप्तरीतिसे राजपूत स्त्री-पुरुषोंकी कीर्त्ति सुना रहा था।

—:*:—

रानी दुर्गावती।

मध्यप्रदेशमें गढ़ामण्डला नामक एक छोटासा प्राचीन राज्य था। यह राज्य चारों ओरसे पर्वतोंसे घिरा होनेके कारण बहुत ही सुरक्षित था और १६ वीं सदीमें—अकबरके आक्रमणके पहिले-उत्तर भारत, मध्यभारत तथा दक्षिणभारत मुसलमानोंके हस्तगत होनेपर भी इस पर किसी राजा या बादशाहने चढ़ाई नहीं की थी। गढ़ामण्डलेके राजा दलपतशाह बड़े प्रतापी, वीर, तेजस्वी और सुन्दर पुरुष थे।

उसी प्रदेशमें महोबा नामक एक दूसरा राज्य था। हमारी चरितनायिका दुर्गावती महोबा-नरेशकी कन्या थी। वह उपवर हुई, तब उसके लिये वर खोजनेको उसके पिताने चारों ओर दूत भेजे,

परन्तु दुर्गावतीने दलपतशाहको मन ही मन वर लिया था और दलपतशाह भी दुर्गावतीपर अनुरक्त थे। अन्यान्य राजाओंके साथ दपलतशाहने भी दुर्गावतीके लिये उसके पिताके पास याचना की, परन्तु महोवा-नरेशने उन्हें उत्तर दिया कि,—"तुम हमसे नीच कुलके हो, इसलिये तुमसे हम सम्बन्ध नहीं कर सकते।"

कन्या देना दूर रहा, उलटे हमारे पवित्र कुलको महोवा नरेश दोष लगाते हैं, यह जानकर दलपतशाहको बड़ा क्रोध चढ़ा और सेना सजकर महोवाके राजाको दण्ड देनेके लिये निकले। युद्ध शुरू हुआ। इस युद्धमें महोवा-नरेश हार गये और लाचार हो, उन्हें दलपतशाहके साथ दुर्गावतीका विवाह कर देना पड़ा। दुर्गावती गढ़ा-मण्डला राज्यकी राजमहिषी हुई।

इस समय पठानोंका साम्राज्य नष्ट होकर भारतमें मोगलोंका आधिपत्य बढ़ रहा था। वावरशाहने दिल्लीका सिंहासन प्राप्त किया सही, परन्तु पठानोंका वल कम होते ही जो हिन्दू और मुसलमान राजा स्वाधीन हो गये थे, उन्हें दिल्लीके अधीन बनानेमें वह समर्थ नहीं हो सका था। यह काम अकवरने किया। दिल्लीके सिंहासनपर पैर रखते ही अकवरने अनेक युद्धकार्य्यकुशल, चतुर सेनापति चारों दिशाओंमें विजय करनेके लिये भेजे और थोड़े ही दिनोंमें अपना राज्य निष्कण्टक कर लिया। मध्यप्रदेशमें आसफखां नामक सरदार भेजा गया था। यद्यपि गढ़ामण्डला राज्यने अभी तक किसी वादशाहकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी, तथापि उस राज्यकी समृद्धि और प्राकृतिक शोभापर मुग्ध हो, उसे हस्तगत करनेका आसफखांके मनमें लोभ उत्पन्न हुआ और तदनुसार उसने उक्त राज्यपर चढ़ाई की।

कहाँ दिल्लीकी प्रचण्ड शक्ति और कहाँ गढ़ामण्डलेका क्षुद्र राज्य! जिस शक्तिने देशके ओरसे छोरतक अपना प्रभाव जमाया,

उसके आगे गढ़ामण्डला किस खेतकी मूली था। राज्यकी प्रजाने मोगलोंके आक्रमणसे भयभीत हो मनही मन निश्चय करलिया कि, अब इस राज्यकी स्वाधीनता नहीं बच सकती;—रानीका सोने जैसा राज्य छार खार होनेमें अब विलम्ब नहीं है।

मोगलोंके आक्रमणका दूसरा कारण यह था कि, राज्यमें इस समय कोई प्रतापी पुरुष नहीं था, जो शत्रुओंसे सामना कर सकता। दुर्गावतीका विवाह होनेके चारही वर्षोंके पश्चात् वीरनारायण नामक तीन वर्षके एक पुत्रको छोड़ दलपतशाह इहलोककी यात्रा समाप्त कर चुके थे। दुर्गावती चतुर और गम्भीर प्रकृतिकी स्त्री थी। इससे पतिके पश्चात् बिना घबड़ाये सब दुःखोंको भूलकर १५ वर्षतक बहुत ही उत्तम रीतिसे उसने राज्य किया और पुत्रको राजकुलके योग्य शिक्षा देकर उसे आदर्श राजपुत्र बना डाला। मोगलोंके आक्रमणसे सब प्रजा भयभीत हुई, परन्तु वीरनारायण या रानीने किसी प्रकारकी कायरता नहीं दिखायी। माँ बेटे दोनों शत्रुओंसे सामना करनेके लिये प्रस्तुत हो गये। सिरपर राज-मुकुट धारण कर एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे हाथमें धनुष बाण ले, रानी दुर्गावती साक्षात् भगवती दुर्गादेवीके समान हाथीपर सवार हुईं और उन्हें सहायता करनेके लिये वीरवेषसे सुसज्जित वीरनारायण भी अश्वारूढ़ हो, उनके साथ हो लिये। दोनों अपनी सेनामें आ पहुंचे और रानीने सैनिक गण तथा प्रजाजनको लक्ष्य कर वीरवाणीसे उन्हें उत्तेजित करते हुए कहाः—

"मेरे प्राणप्रिय पुत्रो! जो राज्य आज तक तुम्हारा था, वह तुमसे छीननेके लिये शत्रु आये हुए हैं! इस सुन्दर देशके जल और फलसे तुम्हारे और तुम्हारे पुरखोंके देह पले हैं। इस पवित्र देशके धूलिकण तुम्हारे पूर्वजोंकी अस्थियोंमें और इसकी मधुरवायु उनके प्राणवायुमें मिली हुई है। यह स्वर्गीय देश तुम्हारी जननी,

दाई और पालन करनेवालीके समान होनेके कारण सर्वथा तुम्हारे लिये पूजनीय है। क्या तुम्हारे होते यह देवदेश दानवोंके पदाघातसे कलङ्कित होगा? यदि इसकी मानमर्यादा बचाना तुम अपना धर्म समझते हो, तो चलो मेरा साथ दो, नहीं तो चुल्लूभर पानीमें डूबकर मर जाओ!

"मान लिया कि, मोगलोंकी शक्ति अधिक है और तुम मुट्ठीभर हो। परन्तु देशरक्षा-स्वर्गतुल्य जन्मभूमिकी रक्षा—के लिये जिस समय तुम हथेली पर प्राण लेकर रणभूमिमें उत्साहके साथ वैरियोंसे सामना करोगे, उस समय निश्चय समझो कि, परमात्माकी कृपासे तुम्हारे एक एक वीरमें सहस्र सहस्र वीरोंकी शक्ति सञ्चार करेगी और मोगलोंमें इतना बल न रहेगा कि, वे इस गढ़का एक तिनका भी उखाड़ सकें! गढ़के बचानेमें यदि रणभूमिमें तुम्हें मरण भी प्राप्त हो, तो उससे कोई हानि नहीं, उलटे लाभ ही है। जहां तुम्हारा खून गिरेगा, वहांकी उर्वराभूमि तुमसे भी वीर और जगत्‌विजयी सन्तानको उत्पन्न किये बिना न रहेगी। मरण तो एक दिन सभीको आने वाला है, इस संसारमें अमर कोई नहीं है; फिर अपनी आँखों अपने देशकी दुर्दशा हम क्योंकर देख सकते हैं? यदि तुम सच्चे वीर हो, तो देशरक्षाके निमित्त भगवान्‌का स्मरण कर चलो और दलपतशाहकी अर्धाङ्गिनीको-तुम अपनी माताको—इस विपत्तिमें सहायता कर, क्षत्रियजातिका मुख उज्वल करो। नहीं तो अभी यहाँसे भागकर अपने प्राण बचाओ; मैं अकेली मोगलोंसे सामना करूँगी।"

एक वीर स्त्रीके मुखसे निकले हुए बिजली जैसे प्रभावशाली इन शब्दोंको सुन, ऐसा कौन वीर होगा, जो रणसे विमुख होनेका साहस करेगा? भयानक हुंकार करते हुए रणमदसे मत्त हो, सब सैनिक एकदम मोगलोंपर टूट पड़े। मारकाट शुरू हुई। घमासा-

नीका युद्ध होने लगा। दुर्गावतीने दो बार मोगलोंको हराया। मोगल तितर बितर हो गये, यह देख दुर्गावतीने अपनी सेनाको कुछ समय तक विश्राम करनेकी आज्ञा दी।

घड़ीभरमें दुर्गावतीने अपने सैनिकोंको पुनः तितर बितर हुए मोगलोंका संहार करनेकी सलाह दी, परन्तु सैनिक दिन भर लड़ाई कर बिलकुल थक गये थे, इससे उन्होंने रानीसे रातभर विश्राम करनेकी प्रार्थना की। रानीने प्रार्थना स्वीकार कर ली। यह अवसर देख, रातको मोगलोंने राजपूतोंपर अचानक धावा किया; परन्तु दुर्गावतीकी चातुरी और युद्धकौशलसे इस बार भी मोगलों की हार हुई।

सवेरे आसफखांके पास बादशाहकी भेजी हुई और भी नयी सेना तथा तोपें आ पहुँचीं। अबकी बार दुर्गावतीकी क्षुद्र सेना मोगलोंके आगे ठहर न सकी। राजपूतोंके भाग्यने पलटा खाया। जिस ओर राजपूतोंका पड़ाव था, उसीके पीछे चौमासेकी एक नदी हर हर करके बह रही थी, इससे वे एक पैर भी पीछे हट नहीं सकते थे और आगेसे मोगलोंकी तोपें बराबर आग बरसा रही थीं। बेचारे देशभक्त राजपूत जहांके तहां स्वाहा हो गये; परन्तु दुर्गावतीने धीरज नहीं छोड़ा। जो कुछ वीर बच गये थे, उन्हींको ले, वह प्राणपणसे लड़ रही थी।

थोड़ी देरमें एक बाण आकर दुर्गावतीकी आंखमें घुस गया। दुर्गावतीने उसे निकालनेका बहुत यत्न किया, परन्तु वह नहीं निकला। दुर्गावती उसी तरह लड़ने लगी। वह धनुषको कब तीर लगाती और कब छोड़ती थी, इसका भी पता नहीं चलता था। एकाएक रानीकी सेनामें हाहाकार मच गया। रानीने ज्योंही मुड़कर पीछे देखा, त्योंही उसके गलेमें दूसरा एक बाण आकर लगा! वीरनारायण घायल हो पृथिवीपर गिर पड़े थे;

इसीका वह हाहाकार था ! रानीने पुत्रको वहाँसे हटा लेनेकी आज्ञा दी और अपने घावोंकी ओर दुर्लक्ष्य कर, शत्रुओंपर वह तीर चलाने लगी ।

सहनशक्तिकी भी सीमा होती है । दुर्गावती घावोंकी पीड़ासे व्याकुल हो उठी । हाथीके माहुतने उसकी वह दशा देख, रणसे हाथी हटा लेजानेकी आज्ञा चाही, पर रानीने रणसे पीठ फेरना उचित नहीं समझा । वह बराबर लड़ती रही । अन्तमें उसके गात्र शिथिल हो गये, आँखोंके आगे अन्धकार छा गया । उस भयानक अवस्थामें भी रानीने कुछ सम्हलकर कमरसे छूरा निकाला और अपनी छातीमें भोंक लिया । देशके लिये, कुलकी मानमर्यादा रक्षाके लिये रानी दुर्गावतीने अपना पवित्र देह रणगङ्गामें धोकर अधिक पवित्र किया ।

आसफ़खांने गढ़ामण्डलेका राज्य ले लिया । वीरनारायणकी मृत्यु हुई । दुर्गावतीका जीवन समाप्त हुआ; परन्तु उसकी कीर्ति अमर है । जहाँ लड़ाई हुई थी, वहाँ दो बड़े बड़े गोल पत्थर दुर्गावतीके स्मारक स्वरूप स्थापित किये गये हैं, जिनकी पूजा वहाँके लोग बड़े प्रेमसे करते हैं ।

—:*:—

सती जयावती ।

—o*o—

अकबरके राजत्वकालमें प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रतापसिंहके अतिरिक्त करीब करीब सब राजपूतोंने मोगलोंकी अधीनता स्वीकार कर ली थी । जो राजपूत मोगलोंकी अधीनता स्वीकार करनेमें अड़ गये थे, उन्हें अकबरने कैद कर रक्खा था । बीकानेरके महाराजा पृथ्वीराज ऐसे ही कैदियोंमेंसे एक थे ।

पृथ्वीराज देशाभिमानकी ज्वलन्त मूर्ति होनेपर भी पिंजड़ेमें फँसे हुए सिंहकी तरह उनका कुछ बस नहीं चलता था।

एक समय महाराणा प्रतापसिंह तो ऐसे दुःखी हुए कि, उन्होंने मोगलोंकी अधीनता स्वीकार करनेका निश्चय कर लिया। परन्तु इसका पता पृथ्वीराजको लगते ही उन्होंने दिल्लीसे महाराणाको एक कविता बद्ध उत्तेजना-पूर्ण पत्र लिखा, जिससे महाराणाने वह घृणित विचार छोड़ दिया। दैवयोगसे कुछ ही दिनोंमें महाराणा को उनके एक पुराने मन्त्री भामाशाकी ओरसे अच्छी आर्थिक सहायता मिली, जिससे राणाजी अपनी स्वाधीनता पूर्णरूपसे सम्हाल सके।

राणाजीके भाई शक्तिसिंह (सक्ताजी) की कन्या जयावती पृथ्वीराजसे ब्याही थी। जब पृथ्वीराज कैद होकर दिल्ली गये, तब जयावतीने भी पतिके पास जानेका सङ्कल्प कर लिया। अकबर उदारचेता महापुरुष था। उसने कैद किये हुए राजाओंको मान-सम्भ्रमके साथ रक्खा था। इससे किसीकी स्त्रियोंको पतिके पास रहने या आने जानेकी मनाई नहीं थी। जयावती जब दिल्लीमें पतिके पास जानेको उद्यत हुई, तब उसके आत्मीय परिजनोंने कहा कि,—"शत्रुओंमें रहकर तुम अपना धर्म कैसे बचा सकोगी?" जयावतीने कमरसे छुरा निकालकर कहा,—"यही मेरे धर्मकी रक्षा करेगा।" जयावती थोड़े ही दिनोंमें दिल्लीमें पतिके पास पहुँच गयी।

मुसलमानोंमें नवीनवर्षके आरम्भमें 'नौरोज़ा' नामक एक उत्सव होता है। इसी तरह अकबरने 'खुशरोज़ा' नामक एक नया उत्सव अपने राज्यमें प्रचलित किया था। इस उत्सवमें एक मीनाबाज़ार लगाया जाता था, जिसमें स्त्रियाँ ही सब तरहकी वस्तुएँ बेचती और स्त्रियाँ ही उन्हें खरीदती थीं।

अकबर यद्यपि राजनीति-चतुर और उदारचेता था, तथापि उसका चरित्र अच्छा नहीं था। सैकड़ों हिन्दू-मुसलमानोंकी सुन्दरी स्त्रियोंको उसने ज़नानखानेमें डाल रक्खा था और राज्यकी प्रायः कोई सुन्दरी स्त्री उससे बचने नहीं पाती थी। मीना-बाज़ार लगानेका भी उसका यही उद्देश्य था कि, शहरकी सब सभ्य और सर्वसाधारणकी स्त्रियोंके देखनेका अनायास उसे मौका मिले।

जयावती दिल्लीमें पहिले पहिल आयी थी और अपने राज्यकी तरह वहां भी वह स्वतन्त्रतासे रहती थी। एक दिन वह मीना-बाज़ारमें कई सभ्य स्त्रियोंके साथ पहुँची। उसकी सुन्दरता देख, उसपर अकबर मोहित होगया। अकबरने कई कुटनियाँ इसलिये रख छोड़ी थीं, जो उसके पास इच्छित स्त्रीको ला पहुंचाती थीं।

अकबरने एक चतुर कुटनीको जयावतीको लेआनेके लिये आज्ञा की। तदनुसार वह कुटनी जयावतीको बहाली दे, साथकी सभ्य-स्त्रियोंमेंसे उसे अलगकर अकबरके पास ले आयी। अकबरको सामने देखकर जयावती पहिले तो बहुत घबड़ाई; परन्तु जब उसने देखा कि, इस दुष्टसे अपना धर्म बचाना कठिन है, तब मनही मन उसने अकबरको दण्ड देनेका निश्चय कर लिया। स्वर्गीय बा० राधाकृष्णदासजीने यह प्रसङ्ग अपने प्रतापसिंह नाटकमें बहुत ही उत्तमतासे दिखाया है, इसलिये उसीका कुछ अंश यहांपर उद्धृत कर दिया जाता है।

अकबर—[रानीके पास जाकर] प्यारी, इधर आओ, ज़रा आराम फर्माओ। तुम किस सोचमें हो? देखो, यह वह शाहनशाहे देहली जिसकी निगाहकी ओर दुनियांके बादशाह देखते रहते हैं, आज तुम्हारे क़दमोंकी गुलामीकी ख्वाहिश करता हुआ हाज़िर है।

रानी—[मुंह फेर और रूखे स्वरसे] देख अकबर, तूं बहुत बड़े सिंहासनपर बैठा है। ऐसे दुष्कर्मोंसे इस राज्य सिंहासनको कलुषित न कर और मुझे अभी मेरे घर पहुंचा।

अकबर—[रानीका हाथ पकड़ना चाहता है और रानी झटककर हट जाती है] ऐ जानेजां, इस नीमजांको अब न सताओ।

रानी—[क्रोधसे] देख नराधम दिल्लीपति कुलांगार! मैं राजपूतबाला हूं। मेरा अङ्ग स्पर्श न करना, नहीं अभी तुझे भस्म कर दूंगी।

अकबर—[हाथ जोड़कर] नहीं नहीं, खफ़ा होनेकी बात नहीं है, देखो, यह नौलखा हार, यह बेशकीमत चम्पाकली, यह बेबहा मोतियोंका सतलड़ा, यह सब एकसे एक उमदा जवाहिरात सब तुम्हारी नज़र है, और यह दिल्लीका बादशाह हमेशाके लिये तुम्हारा गुलाम है। आज अपनी ज़रासी मेहरकी निगाहसे इस बादशाहको बिला कीमत ख़रीद सकती हो।

रानी—[लाल लाल आंखें निकालकर और निर्लज्ज भावसे] क्योंरे नरपिशाच, तू मेरी बात न सुनेगा? क्या तेरा काल ही तेरे सिरपर नाच रहा है? क्या आज मुझीको नरपति-हत्यासे अपना हाथ अपवित्र करना होगा? सुन, मैं तेरी सब दुष्टता सुन चुकी हूं और आज तेरे हाथसे निर्बोध राजपूतबालाओंके सतीत्वरक्षार्थ तैयार होकर आई हूं। तुझसे फिर भी यही कहती हूं कि, तू अपने इस नीचताके कामको छोड़ और अपने कर्तव्यकी ओर देख। [अकबर फिर रानीका हाथ पकड़ना चाहता है, रानी झपटकर अकबरको धरतीपर पटक कर अपनी कमरसे कटारको निकाल, अकबरकी छातीपर बैठ, क्रोधसे हांपती हुई] ले नराधम, जो तू मानता ही नहीं, तो आज तेरा यहीं निबटेरा किये देती हूँ और तेरे बोझसे पृथ्वीको हलकी करती हूँ। (कटार अकबरके गलेके पास लेजाती है।)

अकबर—(आर्त्तस्वरसे) तौबा तौबा, मैं हाथ जोड़ता हूं, मेरी बात खुदाके लिये सुन लो। मुझे न मारना, मेरी एक बात सुन लो।

रानी—कह, क्या कहता है?

अकबर—मैं अपने गुनाहोंके लिये सख्त नादिम हुआ। मेरा कुसूर मुआफ़ करो। मेरी जांबख्शी करो। मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं कि, मुझे मेरी उम्रे नातज्रुर्बाकार और दुनियांवी यारोंने धोखा दिया। मैं अबतक इस पाकदामनी, इस बहादुरी, इस नेकचलनीको कभी ख्वाबमें भी न सोच सका था। मेरे खयालमें औरतोंका रकीक दिल तमःके फन्देमें फंसाना आसान था। वह परदा आज दूर हुआ। मुझे बखशिए, लिल्लाह, मुझे बखशिए! अब कभी किसीके साथ ऐसी गुनाह सरजद न होगी।

रानी—मुझे तेरी बातका विश्वास कैसे हो? हाय! जिन राजपूतवीरोंकी सहायतासे आज तुझे यह प्रताप प्राप्त हुआ है, रे कुलांगार, उन्हींकी बहू बेटियोंपर हाथ डालते तुझे लज्जा नहीं आती? धिक्कार है तुझको!

अकबर—आप मुझ नापाक गुनहगारको जितना धिक्कार दें बजा है, मगर याद रक्खो, यह हुमायूंका बेटा अकबर जब कि, खुदायेपाकके नामपर आज अहद करता है, अगर कभी फिर उससे यह गुनाह हुआ तो इस दुनियाँमें मुंह न दिखाएगा। अब मुझे ज्यादः न शर्माएं और मेरी जांबख्शी करें।

रानी—देख तूं बड़ा बादशाह है। मेरे स्वामीने तेरा नमक-खाया है, इसलिये तुझे आज छोड़ देती हूं, परन्तु समझ रख, तेरा राज्य केवल राजपूतोंके बाहुबलसे है। यदि आज पीछे कभी तेरी यह हरकत सुननेमें आएगी, तो सारे राजपूतानेमें तेरे इस भेदको खोल दूंगी और एक दिनमें राजपूतमात्रको तेरा वैरी बनाऊंगी। (अकबरको छोड़ देती है।)

अकबर—(रानीके पैरोंपर गिरकर) मैं आपके इहसानसे कभी सुबुकदोश नहीं हो सकता। आपने न सिर्फ आज मेरी जां बख्शी की, बल्कि मुझे बहुत बड़े गुनाहसे बचाया। मेरे ऊपर जैसे इतना करम हुआ, यह भी वादा फर्माया जाय कि, यह भेद किसीसे ज़ाहिर न किया जाय और मेरी गुनाह मुआफ फर्मायी जाय।

रानी—मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि, यह भेद किसीसे न प्रकाश करूंगी। परन्तु मैं गुनाह मुआफ़ करनेवाली कौन? उस करुणामय जगत्पितासे सच्चे जीसे क्षमा-प्रार्थना कर, वही तुझे क्षमा करेगा।

साध्वी मीराबाई।

मेड़ताके राणा राव दूदाजीके तीन पुत्र थे। तीनोंमें राणा रत्नसिंह ज्येष्ठ थे और उन्हींकी कन्या साध्वी मीराबाई थीं। मीराका जन्म कुड़की ग्राममें संवत् १६६१ में हुआ था। मीरा तीन वर्षकी थी, तभी उसकी माताका देहान्त होगया था। तबसे वह दूदाजीके पास रहने लगी और दूदाजी भी उसको बहुत प्यार करते थे। बचपनसे ही मीराका हृदय श्रीकृष्ण-प्रेममें मगन था तथा उसके खेल भी श्रीकृष्णकी मूर्तिसे होते थे। मीरा ज्यों ज्यों बड़ी हुई त्यों त्यों उसकी कृष्णभक्ति दृढ़ होती गई। इससे वृद्ध दूदाजीको उसकी भावी अवस्थाकी चिन्ता लगी। उन्होंने उसका विवाह चित्तौरके राणा संग्रामसिंहके पुत्र भोजराजसे करदिया। मीरा निजको श्रीकृष्णके चरणोंपर अर्पण कर चुकी थी, इससे विवाह करनेको वह राजी नहीं थी, परन्तु

लोकलज्जाके कारण दूदाजीको उसका विवाह जबरदस्ती कर देना पड़ा। वधू वर चितौर पहुंचे, तब कुलाचारानुसार मीरासे एकलिङ्गजीकी पूजा करनेको वहांके लोगोंने अनुरोध किया; परन्तु मीरा राज़ी नहीं हुई। उसने कहा—"हरि और हरमें भेद ही क्या है? दोनों एकही हैं, फिर यदि मैं श्रीकृष्णकी ही पूजा करूं, तो क्या दोष है?" अज्ञान राजपूत मीराकी बात समझ न सके और उन्होंने उसकी शिकायत राणा संग्रामसिंहसे की। उसपर राणाजीने क्रोधकर मीराको नगरके बाहर किसी भुतहे मकानमें रखनेकी आज्ञा दी। इस बातसे मीराको दुःखके बदले सन्तोष ही हुआ। क्योंकि श्रीकृष्णका चिन्तन करनेमें उसे स्वतंत्रता मिली। कुछ दिनोंमें वहीं उसने श्रीकृष्णका एक छोटासा मंदिर बनवाया और उसीमें दिनरात भजन, पूजन करती हुई अपने देहको सार्थक करने लगी। एक समय स्वयं दिल्लीपति अकबर मीराबाईका दर्शन करगया था और उसकी उसपर श्रद्धा भी हो गयी थी। मीराबाई-की पवित्र कीर्त्ति चारों ओर फैलने लगी, परन्तु राणाजीको उससे दुःख ही होता था।

एक समय मीराबाई बहुत बीमार हुई। यह बात सुन राणाजी बहुत प्रसन्नहुए। वे चाहते ही थे कि, मीराका इसी बीमारीमें अन्त हो जाय। और इसी विचारसे उन्होंने मीराको किसी प्रकार-का औषधोपचार नहीं किया, परन्तु मीरा थोड़े ही दिनोंमें श्रीकृष्ण-के चरणामृतसे चंगी हो गयी। राणाजी रोज कुछ न कुछ उसका कष्ट देते ही थे, अन्तमें मीराने इन कष्टोंसे छुटकारा पानेके लिये गोस्वामी तुलसीदासजीसे सलाह ली और तीर्थयात्रा करनेकी इच्छा प्रकट की। गोस्वामीजीने भी मीराबाईके विचारपर जोर दिया, तब मीराने श्वशुरसे आज्ञा माँगी। श्वशुरने यह सोचकर उसे तुरन्त आज्ञा दे दी कि, इसके चले जानेसे इसीके कारण होनेवाली

बदनामीसे बचे रहेंगे। मीराबाई घरसे निकलकर पहिले अपने भाई भौजाईसे मिली, उन्होंने उसका अच्छा आदर किया। फिर वहांसे वह सीधी वृन्दावन चली आयी। वहां पहुँचकर उसने श्रीगिरधरका दर्शन किया और वहीं वह संतसमाजमें आनन्दसे दिवस बिताने लगी। एक दिन रात्रिके समयमें श्रीकृष्ण भगवान्ने स्वयं प्रकट होकर मीराबाईको दर्शन दिया तथा मीराके प्रेमपूर्ण हृदयका समाधान किया। कुछ दिन वृन्दावनमें रहनेपर मीराबाईको ज्ञात हुआ कि, यहांपर 'जीव' गोस्वामी नामक एक भगवद्भक्त रहते हैं। मीराने उनसे भेंट करनेकी इच्छा प्रकट की। परन्तु 'मैं स्त्रियोंका मुख नहीं देखता' यह कहकर गोस्वामीजी उससे नहीं मिले। मीरा निराश हुई, परन्तु फिर भी उसने एक बार उनसे प्रार्थना की। अबकी बार गोस्वामीजीने उससे परदेकी ओटसे बात चीत करनेका वचन दिया और तदनुसार मीरा एक दिन उनके पास पहुँची। स्वामीजीको प्रणामकर मीराने कहा,—"स्त्री और पुरुष एक ही परमेश्वरके अंश हैं, फिर आपने ऐसा विचित्र नियम क्यों किया है?" मीरा अच्छी कवयित्री थी; उसने तुरन्त एक कविता बनाकर गोस्वामीजीको सुनायी। जिसका आशय यह था:-"पुरुष और स्त्री एक ही तत्त्वसे संघटित हुए हैं, उनमें भेद मानना व्यर्थ है।" 'जीव' गोस्वामी समझ गए कि, मीराबाई कोई सामान्य स्त्री नहीं है, इसको ईश्वरका ज्ञान प्राप्त हुआ है। उन्होंने तुरन्त पट दूर कर दिया तथा मीराको दण्डवत कर कहा,—"मा, आप गुरु हैं।"

मीरा प्रतिदिन अनेक भजन बनाकर भगवान्‌को रिझाती थी। एक दिन स्वयं भगवान् स्वप्नमें आकर बोले:—"मीरा, अब तूँ द्वारकामें चल।" मीराने तुरन्त द्वारकाकी ओर प्रस्थान किया। मीराको द्वारकामें दिव्यरूपका दर्शन हुआ। उसे देख आश्चर्यचकित हो, वह घबड़ा गई। भगवान्ने मीराके कोमल हृदयका परिचय प्राप्त

कर अपना रूप पुनः पहिलेकी तरह शान्त और मनोहर बना लिया।

इसी समयमें उदयपुरमें बड़ी हलचल मची और उत्पात होने लगे। मीराबाईके आनेसे इस उपद्रवका शमन होगा, यह जान-कर राणा उदयसिंहने उसकी खोज की तथा उसको लानेके लिये अपने पुरोहितको भेजा। परन्तु मीरा कैसे आ सकती थी? वह तो श्रीकृष्णकी दासी हो गयी थी। उनकी आज्ञाके बिना वह एक पैर भी इधरका उधर नहीं रख सकती थी। पुरोहितके बहुत अनुरोध करनेपर मीराबाईने कहा,-"आप श्रीभगवान्से आज्ञा मागें। यदि वे आज्ञा दें, तो मैं चलूँ।" एक दिन मीराबाईने श्रीगिरधर-लालजीके मन्दिरमें स्वयं जाकर आज्ञा माँगी। परन्तु भगवान् अपने प्रिय भक्तको एक घड़ीके लिये भी दूर नहीं कर सकते। श्रीकृष्णने उसी क्षणमें मीराको गोदमें रख लिया! मीराका शरीर देखते देखते चेतनाशून्य हो गया!

मीरा इस लोकमें नहीं है; परन्तु उसके प्रेमपूर्ण भजन भारतके सब प्रान्तोंमें प्रेमसे गाये जाते हैं, जिससे उसकी कीर्ति अचल हो गई है। मीराकी भक्तिका केवल स्मरण ही करनेसे हृदय गद्गद हो जाता है। सती और साध्वी स्त्रियोंके सागरस्वरूप भारतका मीराबाई एक तेजस्वी रत्न था। अनेक सांसारिक यातनाओंको सहकर भी मीराकी ईश्वरभक्ति कम नहीं हुई थी, इसीसे भगवान् श्रीकृष्णका उसपर अनुग्रह हुआ। मीराकी तरह वे ही भक्त-भय-हारी श्रीकृष्ण हमें भी पावन करें।

रानी प्रभावती ।

पिता, भाई और अन्य विपक्षियोंको अन्यायसे कैद कर या मारकर दिल्लीके सिंहासनपर प्रसिद्ध अत्याचारी मोगल सम्राट् औरङ्गजेब विराजमान था । औरङ्गजेब हिन्दुओंको ज़बर्दस्ती मुसलमान तो बनाता ही था, साथ ही हिन्दु-राजकन्याओं-के साथ विवाह सम्बन्ध भी छल-बल कौशलसे कर लेता था। उसके दूत देश-देशांतरोंमें फैले रहते थे, वे ही कुलीन तथा सुन्दर हिन्दू कन्याओंका पता उसे देते और वह उन कन्याओंको किसी न किसी तरह अपनी अन्तःपुरवासिनी बना लेता था ।

मारवाड़के कुछ राठौर राजकुमारोंको रूपनगरकी जागीर मिली थी । रूपनगरके उस समयके जागीरदार राजाकी प्रभावती नामकी असाधारण सुन्दरी कन्याकी कीर्ति जब औरङ्गजेबने सुनी, तब उसने रूपनगरके राजाको पत्र लिखा,—"या तो प्रभावती मुझे देदो, या मुझसे लड़नेके लिये तैयार हो जाओ ।" साथ ही दो हज़ार सशस्त्र घुड़सवार भेज दिये । उन्होंने रूपनगर घेर लिया । औरङ्गजेब समझा एक ज़ागीरदार मुझसे सामना नहीं कर सकेगा, मेरे प्रस्तावसे सहमत हो जायगा, सवारोंको आगे भेजकर वह स्वयं बड़ीसी सेना लेकर, दूल्हा बनकर दिल्लीसे चल पड़ा ।

प्रभावतीके पिता नहीं थे । वह अपने पितृव्यके पास रहती थी । औरङ्गजेबका पत्र पढ़कर प्रभावतीके काका उद्विग्न हो उठे । उन्होंने यह अपना अपमान समझा, पर कर ही क्या सकते थे । प्रभावतीको भी इस समाचारसे बड़ी घबड़ाहट हुई । चचा-भतीजी दोनों शोक-सागरमें डूब गये । वे सोचने लगे, इतने बड़े

सम्राट्से यदि हम लड़ते हैं, तो हमारा हार जाना स्वाभाविक है, क्योंकि एक साधारण ज़ागीरदारके कुछ सिपाही सम्राट्की विशाल सेनाके सम्मुख 'दरियामें खसखस' के समान हैं और नहीं लड़ते तो क्षत्रियकुलको कलंकित करते हैं। इधर ये इस दुविधामें पड़े पड़े भौंचक्के हो रहे थे, उधर औरङ्गज़ेब बराबर बढ़ता हुआ चला आ रहा था। प्रभावती अहर्निश भगवान्की आराधना, भगवद्गीताका पाठ और अन्यान्य शास्त्रीय ग्रन्थोंका अध्ययन किया करती थी। उसका अब उन पवित्र कार्योंमें भी चित्त नहीं लगता था। एक दिन सहसा प्रभावतीके पास उसके काका आकर कहने लगे,—"बेटी! मैंने बादशाहसे युद्ध करनेका निश्चय कर लिया है, तुम चिन्ता न करो। मेरे प्राण रहते तुम्हारे नखको भी यवनोंकी छाया स्पर्श नहीं कर सकती। रणमें मेरे मरनेपर इसी कटारीसे तुम आत्महत्या कर लेना। मुझे या तुम्हें क्षात्रधर्मसे कदापि च्युत न होना चाहिये। हमें जगन्मङ्गलमय परमात्मा अवश्य सहायता करेंगे।"

प्रभावतीने कहा,—"काकाजी! आपके विचार क्षत्रिय जातिके योग्य ही हैं। इससे कौन आर्यकन्या सहमत न होगी? परन्तु किसी वीरकी आप सहायता ले सकें, तो आपकी विजय अवश्य होगी।" काकाजीको यह सम्मति अच्छी जान पड़ी। दोनोंके विचारसे निश्चित हुआ कि, उदयपुरके प्रतापी राणा राजसिंहसे सहायता ली जाय और उनसे प्रार्थना की जाय कि, प्रभावतीसे वे विवाह करलें। दोनोंने राजसिंहको पत्र लिखे। प्रभावतीके पत्रका राणाके चित्तपर विशेष प्रभाव पड़ा। उसमें लिखा था,—"क्या राजहंसी कौएसे ब्याही जायगी? क्या सिंहका भाग भेड़िया ले जायगा? क्या क्षत्रिय कन्या यवनाधमकी अर्धाङ्गिनी होगी? क्या असहाय अबलाका उद्धार करनेमें राजसिंह भी असमर्थ होंगे?

यदि ऐसा ही है, तो यह वीरबाला आत्महत्या करनेसे कभी न चूकेगी ; परन्तु फिर आपकी प्रतिष्ठा कहाँ रहेगी ?"

राजसिंह तुरन्त ५०० सवार लेकर रूपनगर जा पहुँचे और विवाह कार्य आनन्दसे सम्पन्न कर प्रभावतीके साथ सकुशल अपने राज्यमें लौट आये। यवनोंके २ सहस्र योधाओंको राजसिंहके ५ सौ वीरोंने यमसदनका मार्ग दिखा दिया। साथ ही चन्दावत सरदार,—जो राजसिंहके मातुल वंशके थे,—बड़ी सेना लेकर औरङ्गजेबसे सामना करनेके लिये भेजे गये। तीन दिन उभय दलों-में तुमुल युद्ध हुआ। असंख्य हिन्दु-मुसलमान मारे गये। अन्तमें मुसलमानोंके पैर उखड़े। चन्दावत सरदार शत्रु-सैन्यमें घुसकर ठीक औरङ्गजेबके हाथीके सामने पहुंचे और उन्होंने एक ऐसा तान-कर भाला मारा कि, महावत दो टूक होकर गिर पड़ा। दूसरा भाला औरङ्गजेब पर उन्होंने ज्यों ही चलाना चाहा, त्यों ही हाथीसे कूद कर उसने चन्दावत सरदारके पैर पकड़ लिये। युद्ध समाप्त हो गया। चन्दावतने उदारतापूर्वक उसे इस प्रतिज्ञापर छोड़ दिया कि, वह दश वर्षोंतक मेवाड़पर चढ़ाई न करे। चन्दावत सरदारको इस युद्धमें इतने अधिक घाव लगे थे कि, उनकी वेदनाएँ असह्य होकर घर लौटते लौटते वे वीरगतिको प्राप्त हुए।

औरङ्गज़ेबको खाली हाथ लौटते हुए बड़ा लज्जित होना पड़ा। उसकी सब प्रजा उसका उपहास करने लगी। इधर राजसिंहके यशका विस्तार हुआ और सभी प्रभावतीकी बुद्धिमत्ताको सराहने लगे।

महारानी लक्ष्मीबाई ।

शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि ।

(चाहे शत्रु ही क्यों न हो, उसके गुण और गुरुके भी दोष वर्णन करनेमें सङ्कोच नहीं करना चाहिये ।)

यह गुण पौर्वात्योंकी अपेक्षा पाश्चात्योंमें अधिक देख पड़ता है । झांसीकी महारानीको चाहे किसी कारणसे क्यों न हो, हमारी सार्वभौम ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करना पड़ा था; परन्तु ब्रिटिश जातिने उसका उचित गौरव ही किया । उक्त रानीको प्रसिद्ध इतिहासकार मार्टिन, सर एड्विन आर्नोल्ड और डब्लू॰ सी॰ टारेन्स प्रभृति अंग्रेजोंने राजपूत-वीर 'राणा उम्रा' रोम राष्ट्रके साथ लड़नेवाली आंग्लरमणी 'बोडिशिया' और १५ वीं सदीकी फ्रान्स-निवासिनी 'जोन आफ आर्क' नाम्नी शूर महिलाकी उपमा देकर उसके संग्राम-कौशलकी भूरिभूरि प्रशंसा की है। यही नहीं, किन्तु उसके साथ संग्राममें प्रत्यक्ष लड़नेवाले अद्वितीय सेनापति मेजर जनरल सर ह्यूरोज, कमाण्डर इनचीफ सर कालिन क्यांबेल, ब्रिगेडियर जनरल ह्विट-लाक तथा गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग प्रभृति अधिकारियोंने भी उसका रणकौशल देख कौतुकके साथ दांतोंमें अंगुली दबाई थी ।

तोभी यह नहीं कहा जा सकता कि, उसका चरित्र स्मरण करने योग्य नहीं है। उसने अपने चरित्रसे यह बात सिद्ध कर

दी है कि, भारतमाता केवल वीरपुत्रोंकी ही नहीं, किन्तु वीर कन्याओंकी भी जननी है। उसके इतिहाससे यह भी स्पष्ट हो गया कि, ब्रिटिश जाति कैसी गुणग्राहिणी है। एक ओर देश-भक्तिका उज्वल दृष्टान्त और दूसरी ओर ब्रिटिश राज्यकी नीतिका दृश्य देखनेके लिये झांसीकी रानीके चरित्रसे बढ़कर दूसरा उदाहरण कम मिलेगा।

१६ वीं सदीके पहिले झांसीका अस्तित्व नहीं था। १६ वीं सदीके अन्तमें ओरछाके राजा वीरसिंहदेवने वहां एक मज़बूत किला बांधा, यही इतिहासप्रसिद्ध झांसीका किला है। उक्त राजाने दिल्लीपति शाहजहाँके प्रान्तमें उपद्रव मचाना आरम्भ किया, इससे बादशाहने उसके हाथसे वह किला छीन लिया और फिर सन् १७०७ में पन्नाके राजा छत्रसालको वह जागीरके तौर पर दिया गया। छत्रसालकी वृद्धावस्थामें मालवाके सूबेदार और इलाहाबादके नवाब महम्मद खान बंगशने उनके राज्यपर चढ़ाई की, तब उन्होंने पहिले बाजीराव पेशवासे सहायता मांगी। बाजीरावने महम्मद खानसे लड़कर उसका पराजय किया। इसी विजयके उपलक्ष्यमें छत्रसालने १ करोड़ रुपयोंकी आयका प्रान्त बाजीरावको अर्पण किया। बाजीरावने उस प्रान्तके तीन विभाग कर उनपर अपने तीन सूबे नियुक्त किये। ४० लाखके सागर, गुलसराई और जालौन प्रान्तपर गोविन्दपन्त बुँदेला, ४० लाखके बांदा, काल्पी आदिके प्रान्तपर समशेर बहादुर * और झाँसी प्रान्तपर नारोशंकर मोतीवालाकी नियुक्ति हुई थी। नारोशंकरने बुँदेलखण्ड और रोहेलखण्डपर अपना प्रभुत्व स्थापन कर पेशवा-

* बाजीरावपर मस्तानी नामक जो यवन राजकन्या अनुरक्त हुई थी; उसीसे यह पुत्र हुआ था।

ओंसे राजा बहादुरकी पदवी प्राप्त की थी। नारोशंकरके पश्चात् पेशवाओंकी ओरसे रघुनाथ हरी नेवालकर झाँसीके सूबेदार हुए। ये ही झाँसीके राजघरानेके पूर्व पुरुष हैं। रघुनाथ हरीने ४० वर्ष तक झाँसीका उत्तम राज्य कर और आसपासके अनेक क्षत्रिय राजाओंको अधीन कर बुँदेलखण्डमें महाराष्ट्रियोंका विजयध्वज फहरा दिया तथा उस देशके लोगोंको मराठोंके स्वधर्माभिमान, स्वदेशाभिमान, तेजस्विता, पराक्रम आदि गुणोंका परिचय करा दिया।

रघुनाथ हरीके बाद उनके भाई शिवरामभाऊ झांसीके राजा हुए। इन्होंने भी उत्तम राज्य किया। शिवरामभाऊकी प्रतिष्ठा उस प्रान्तमें इतनी बढ़ गई थी कि, आसपासके राजाओंका अन्तर्कलह मिटानेके लिये सभी इनकी बिचवई स्वीकार करते थे और उन्हें 'चाचाजी' कहते थे। इस समय दूसरे बाजीराव पूनेकी गद्दीपर थे। उनके साथ ब्रिटिशोंका स्नेहसम्बन्ध हो गया था। इस कारण अंगरेज लोग पेशवाओंकी ओरसे सिन्धिया, होलकर, भोसले आदि मराठा सरदारोंके साथ लड़कर उनकी शक्ति क्षीण कर रहे थे। पेशवाओंके दरबारमें अन्धाधुन्दी थी, इसीसे अंगरेजोंको मराठी राज्योंमें हस्तक्षेप करनेका अच्छा अवसर मिला। शिवराम्-भाऊने पेशवाओंको कर देना बन्द कर दिया था। यह निमित्त देख, सन् १८०४ में मि० लेक साहबने शिवरामभाऊसे मित्रता की और उनसे पेशवाओंको नियमितरूपसे कर देना आरम्भ कराया। शिवरामभाऊने अंग्रेजोंकी अच्छी सहायता कर, उनसे सम्मान प्राप्त किया था। सन् १८१७ में पेशवाओंके साथ ब्रिटिशोंका जो नवीन सुलहनामा हुआ, उसके अनुसार बुँदेलखण्डपर अंगरेजोंका अधिकार स्थापित हुआ। उस समय शिवरामभाऊके पौत्र रामचन्द्रराव झांसीके राजा थे। रामचन्द्ररावके साथ उसी साल अंगरेजोंने

नयी सन्धि की, उससे झांसीका राज्य रामचन्द्ररावको वंशपरम्परा मिल गया। नाना परिडतने जब अंगरेजोंके काल्पी आदि कई गांव लड़कर छीन लिये थे, तब रामचन्द्ररावने अंगरेजोंको अच्छी सहायता कर और शत्रुसे वह प्रान्त छीनकर ब्रिटिशोंके स्वाधीन कर दिया था। इस उपलक्ष्यमें उस समयके गवर्नर जनरल लार्ड बैंटिकने झांसीमें ता० १६ दिसंबर सन् १८३२ को एक बड़ा दरबार कर रामचन्द्ररावको 'महाराजाधिराज' और 'फिदवी बादशाह जानुजा इङ्गलिस्ताँ' की पदवी दी तथा उनको छत्रचामर आदि राजचिन्होंसे अलंकृत किया। अब रामचन्द्रराव पेशवाओंके सूबेदार नहीं, किन्तु ब्रिटिश राज्यके स्वतंत्र माण्डलीक हुए। झांसीपर अंगरेजोंका यूनियन जैक (अंगरेजी झण्डा) फहराने लगा। रामचन्द्ररावकी मृत्युके पश्चात् उनके पितृव्य (शिवरामभाऊके द्वितीय पुत्र) रघुनाथराव झांसीके स्वामी हुए। परन्तु इनके समयमें २० लाखकी झांसीकी आमदनी ३ लाख तक पहुंच गई थी। इस कारण राज्यव्यवस्था ब्रिटिश सरकारने अपने हाथ लेली और सन् १८३८ में उनके मरणके उपरान्त उनके छोटे भाई गंगाधररावको सन् १८४२ में राज्यपर प्रतिष्ठित किया। गंगाधररावसे सरकारने नयी संधि की। उसके अनुसार करीब ३ लाखका परगना बुँदेलखण्डकी अंगरेजी फौजके खर्चके लिये छोड़कर बाकीका सब प्रान्त गंगाधररावको दे डाला। महाराज गंगाधरराव हमारी चरित्र नायिकाके पति थे। गंगाधररावकी राज्यप्रणाली उस समय आदर्श स्वरूप मानी जाती थी और वे अपने पूर्वपुरुषोंकी तरह अंगरेज सरकारके परम भक्त थे।

अन्तिम पेशवा दूसरे बाजीराव अंगरेज सरकारके हाथपर महाराष्ट्र राज्यका सङ्कल्प छोड़ जब सालाना ८ लाखकी पेंशन स्वीकार कर ब्रह्मावर्त (बिठूर जिला कानपुर) में हरिभजन करनेके

लिये आ बसे, तब उनके साथ दीवान मोरोपंत तांबे भी आये थे। मोरोपंतको मार्गशीर्ष वदी १४ संवत् १८९१ सन् १८३५ नवम्बरकी १९ वीं तारीखको काशीमें एक अत्यन्त रूपवती कन्या हुई। इसका आगे चलकर झांसीके महाराज गंगाधररावके साथ विवाह हुआ था। पाठकोंको यह नहीं कहना होगा कि, येही महारानी लक्ष्मीबाई हैं। लक्ष्मीबाईका पेशवाओंके कुमार नाना साहब और राव साहबके साथ बाल्यकाल व्यतीत हुआ था। इससे अनायास ही उन्हें शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शिक्षा मिल गई थी। और यही कारण है कि, झांसीके राज्यसूत्र भलीभांति संचालन करनेमें वे समर्थ हो सकी थीं। सन् १८५१ में महारानीको एक पुत्र हुआ। परन्तु तीन महीनोंके बाद ही कराल कालने उसको उठा लिया। सन् १८५३ में महाराज गंगाधररावका देहान्त हो गया। तभीसे महारानीके दुर्भाग्य अथवा सौभाग्यका आरम्भ हुआ।

महाराज गंगाधररावने मरणके दो दिन पहिले अपने वंशके एक ५ वर्षके बालकको (जो उनका कौटुम्बिक पौत्र था) कैप्टन मार्टन, मेज़र एलिस तथा अन्यान्य सरदारोंके सामने गोद लिया और मेरे पश्चात् इस दत्तक पुत्र दामोदररावको मेरा उत्तराधिकारी बनाया जाय, ऐसा एक निवेदन लिखकर गवर्नर जनरल लार्ड डलहौसीके पास भेजा था। परन्तु डलहौसी साहबकी अतृप्त राजनीतिसे महाराज गंगाधररावकी मनीषा पूर्ण नहीं हो सकी। सरकारने दत्तक अस्वीकार किया और झाँसीका राज्य ब्रिटिश राज्यमें मिला लिया।

महाराज गङ्गाधररावकी उत्तर क्रिया होनेके पश्चात् सरकारने किला अपने काबूमें कर, महारानीको रहनेके लिये एक महल दे दिया। महारानी अरण्यवासिनीकी तरह परिमित सेवकोंके साथ एकान्तमें भगवद्भजन करती हुई अपना जीवन बिताने लगीं।

जब वहांके पोलिटिकल् एजेंटने उन्हें झांसी खाली कर देनेका हुकुम सुनाया, तब उन्होंने उद्वेगपूर्वक रुद्धकण्ठसे कहा,—'हम अपना झांसी नहीं देगा।' एक साधारण अबलाके ये असाधारण उद्गार श्रोताओंके अन्तःकरणमें चुभ गये।

महारानीने सरकारसे निवेदन किया कि,—"जब दतिया, टेहरी, जालोन, ओरछा आदि रियासतोंको दत्तकका अधिकार दिया गया है, तब मेरे साथ क्यों अन्याय किया जाता है? मेरे पूर्वजोंने समय समयपर सरकारको उत्तम सहायता कर अनेक मान प्राप्त किये हैं और इसीसे सरकारने झाँसीकी सनद्में 'निरन्तर' (Dawana) यह शब्द उदार हृदयसे लिख रक्खा है। ऐसे शब्द उक्त राज्योंकी सनदोंमें नहीं है। अतः मुझे दत्तकका अधिकार सबसे पहिले मिलना चाहिये।" इस निवेदनका कोई फल नहीं हुआ। सरकारने अपनी नीति कायम रक्खी। लाचार महारानी चुप हो गई।

रानीने दो व्यक्तियोंको (एक बंगाली और एक हिन्दुस्थानी) ८० हज़ार रुपये देकर विलायत तथा ५ हज़ार रुपये देकर लाट-साहबके पास पैरवीके लिये भेजा। पर वे बेईमान अभी तक पैरवी कर रहे हैं। रानीका सत्यानाश हुआ और उनकी मौज कटी।

सन् १८५७ के जून मासमें 'दमदम' नामक बंगालकी छावनीमें सिपाहियोंने बलवा किया। उसके धागे मध्यप्रान्त, दिल्ली तथा झाँसी तक पहुँच गये। बलवाइयोंने मेरठ, दिल्ली, झाँसी आदिके राज्य हस्तगत किये। झाँसीके किलेसे अंग्रेजी सेना हार कर भाग गई। झाँसीमें कई अंग्रेज़ मारे गये। ध्यानमग्न दरिद्रा रानीसे सरकारने सहायता चाही। परन्तु रानीके पास १००।२०० सिपाही भी सरकारने नहीं रखने थे, ऐसे समयमें वह क्या सहायता करती?

तौ भी बहुतसे अंग्रेजों और उनके स्त्री पुत्रोंको उस प्रेममयीने अपने महलमें छिपा रक्खा और उन्हें तीन तीन मन आटेकी रोटियाँ बनाकर खिलाने लगी। इसके अतिरिक्त 'फधरा' राज्यसे १०० सिपाही मांगकर वे उसने अंग्रेजोंकी सहायताके लिये भेज दिये। खुद कष्ट और अपमान सहकर जो सरकारकी सेवा सब अवस्थामें करनेके लिये प्रस्तुत थी, क्या उसकी राजभक्तिमें किसी प्रकारका सन्देह किया जा सकता है? परन्तु समयके प्रभावसे सरकारको उसके हृदयकी परीक्षा नहीं हो सकी। मि० मार्टिन, मि० के— प्रभृति विद्वान् अंग्रेजोंने यह बात निष्पक्ष होकर लिख रक्खी है कि, रानीका बलवाइयोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं था। इस विषय-में वह बिलकुल निरपराधिनी थी।

झाँसीका किला हाथ आनेपर बलवाइयोंने महारानीके महलको घेरकर कहा कि, हमें ३ लाख रुपये दो, नहीं तो, हम अभी महल जला देंगे। रानीने कहला भेजा कि, मैं आप राज्यहीना निर्धना हूं, मुझे क्यों सताते हो? मेरे पास इतना रुपया नहीं है। बलवाइयोंने चिढ़ कर महलपर तोप दागी। तब रानीने अंग्रेजोंकी सुरक्षाका विचार कर, बड़े दुःखसे एक लाख रुपयोंकी कीमतके जेवर बलवा-इयोंको देकर अपना जी छुड़ाया। बलवाई 'खल्क खुदाका, मुल्क बादशाहका, अमल महारानी लक्ष्मीबाईका' यह कहते हुए झाँसी छोड़कर चले गये। झाँसीसे अंग्रेजी राज्य उठ गया। यह दुर्दशा लक्ष्मीबाईसे नहीं देखी गई। उसने तुरन्त किलेमें जाकर अंग्रेजी निशान खड़ा किया और अंग्रेजोंका जब तक कोई अफसर न आवे, तब तक स्वयं उनके प्रतिनिधिरूपसे राज्य प्रबन्ध करना आरम्भ किया। इस समय परम बुद्धिमान् पं० गोपालराव लधाटेने (जो पीछेसे झाँसीके डिप्टीकलेक्टर और सरकारी जागी-रदार हुए) रानीको अच्छी सलाह दी और उन्हें यहांकी सब बातें

जबलपुर, सागर तथा अन्यान्य जिलोंके कमिश्नरोंको विदित करने-को कहा। पर महारानीके मूर्ख सेवकोंने इसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और उनको झाँसीसे भगा दिया। उनके चले जानेसे झाँसीके दरबारमें कोई अंग्रेजीका ज्ञाता नहीं रहा। सर्वत्र अन्धा-धुन्दी मच गई। यह अवसर अच्छा जानकर 'सदाशिव नारायण' नामक एक फर्जी राजाने तथा ओरछा नरेशने क्रमशः ५ हजार और २० हजार फौज लेकर झाँसीपर चढ़ाई की। ओरछा नरेशने कहला भेजा कि, जो मासिक तुम्हें अंग्रेज देते हैं वह हम भी देंगे, तुम हमें झाँसी दे दो। महारानीने उत्तर दिया कि,—"मैं शिव-रामभाऊकी पुत्रवधू हूं। तुम जैसे बुन्देलोंको औरतें बनाकर छोड़नेकी शक्ति मुझमें है। पहिले खूब विचार कर लो तब युद्ध करनेका निश्चय करो।" इस उत्तरसे क्रुद्ध हो, ओरछाकी ओरसे युद्ध आरम्भ हुआ। रानीके साथ उनका कई दिनों तक युद्ध हुआ। पर झाँसीकी रानीके चातुर्य्य, युद्धनीतिकौशल और दूरदर्शितासे उनका कुछ न चल सका। सब हारकर भाग गये। महारानीने अंग्रेजी निशानकी रक्षाकर अपनी राजभक्ति अटल कर दी। यह वार्ता लक्ष्मीबाईने सरकारसे निवेदन करनेके लिये अनेक पत्र भेजे, पर उनके सेवकोंकी असावधानतासे वे यथा समय सर-कारके पास पहुंच न सके। इधर सरकारके मनमें निश्चय हो गया कि, लक्ष्मीबाई बलवाइयोंसे मिल गई हैं। इन घटनाओंका कारण दुर्भाग्यके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

क्षणविध्वंसिनी काया का चिंता मरणे रणे।

झाँसी राज्य छिन जानेके बाद महारानीने अपने दत्तक दामोदर-रावका यज्ञोपवीत करनेका विचार किया। दामोदररावके लिये छः लाख रुपये सरकारने खजानेमें रख छोड़े थे, जो उनके बालिग होनेपर मिलते। महारानीके पास उपवीतके लिये धन नहीं था,

इस कारण उन्होंने सरकारसे उक्त रकममेंसे एक लाख रुपया मांगा, जो बड़ी कठिनाईसे कुछ सेठोंकी ज़मानतपर मिला; जिससे पुत्रका जनेऊ किसी प्रकारसे सम्पन्न हुआ। महारानी बड़ी दानशीला, तपस्विनी, सच्चरित्रा, प्रतिभाशालिनी और उदारहृदया थीं। ऐसी दरिद्रावस्थामें जीवन-निर्वाह करनेमें उन्हें प्राणान्त वेदनाएँ होती थीं; परन्तु दुर्भाग्यके आगे उनका कुछ भी बस नहीं चला।

इधर पेशवाओंके सेनापती तात्याटोपे, जिनके अद्वितीय रण-कौशलकी अंग्रेजोंने भी प्रशंसा की है, राव साहब और नाना साहब (बाजीरावके पुत्र) बलवाइयोंके अगुआ बनकर काल्पी, चरखारी, कानपुर आदि अंग्रेजोंके जीते हुए नगरों तथा राज्योंपर अधिकार कर बैठे थे। एवं झाँसीके विरोधी ओरछा आदि राज्योंने अंग्रेजोंके कान भर दिये कि, हम अंग्रेजोंकी ओरसे झाँसीसे लड़ते थे। झाँसीका राज्य अंग्रेजोंके विरुद्ध और बलवाइयोंके पक्षमें है। इससे अंग्रेज झाँसीकी रानीपर बड़े क्रुद्ध हुए और झाँसी तथा कानपुर आदिमें अंग्रेजोंका नाश होनेका प्रधान कारण उन्होंने झाँसीकी रानीको ही समझ कर प्रसिद्ध सेनापति सर ह्यूरोज़को झाँसीपर चढ़ाई करनेके लिये भेजा। महारानीके हृदयकी राजनिष्ठा दुर्भाग्यसे अंग्रेजोंको विदित नहीं हुई। सर ह्यूरोज़ने झाँसीमें पहुंचते ही रानीसे कहला भेजा कि, तुम अपने अष्ट प्रधानों सहित निःशस्त्र होकर हमसे मिलो। महारानीके हृदयपर वज्रपात हुआ। उन्होंने समझ लिया कि, मेरे पूर्वजोंकी तथा मेरी की हुई अंग्रेजोंकी सहायतापर पानी फिर गया। वह मानिनी सर ह्यूरोज़की असंगत आज्ञाका पालन करनेमें अपना अपमान समझने लगी। उसने सोच लिया कि, अपमानसे जीनेकी अपेक्षा मानसे मरना अच्छा है। प्रजासे दुःखित हो उसने कहा कि, अब

मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकती, तुम अपनी जहां रक्षा करते बने कर लो। इस आज्ञासे कुछ लोग शहरसे भाग गये, कुछ लोग महारानीके साथ प्राणविसर्जन करनेके लिये उद्यत हुए और कुछ लोग झाँसीमें ही रहे, जिनके खाने पीने और रहनेका प्रवन्ध वहाँके प्रसिद्ध गणेश-मन्दिरमें कर दिया गया। महारानीने स्वयं सेना सञ्चालनका तथा किलेका उत्तम प्रवन्ध कर, लाचार तथा शोकमग्न हो अंग्रेजोंके विरुद्ध युद्ध करनेका दुष्परिणामकारी विचार किया। उदार नीतिज्ञ अंग्रेजोंके विपक्षमें शस्त्रग्रहण करनेकी अपेक्षा अधिक खेदकी क्या बात हो सकती है? परन्तु 'जैसी हो भवितव्यता वैसी उपजे बुद्धि।'

ता० २३ मार्च सन् १८५८ से १२ दिनों तक महारानी अंग्रेजोंके साथ बड़ी वीरताके साथ लड़ीं। सर ह्यूरोज, तात्याटोपे आदि बलवाइयोंका साधारण दमन कर झाँसीपर आ टूटे थे। इससे उनकी सेनाने भी रानीके साथ उत्साहसे घोर युद्ध किया। गोले गोलियोंकी वर्षा और अनेक मोहल्लोंके जलते रहनेसे सन्ध्यासे ही ऐसी अग्निलीला मालूम होने लगी, मानो झाँसीके शहरपर आगकी चादर बिछ गई हो। अन्तिम दिन किला अंग्रेजोंके अधीन हो गया। अब महारानीने यह सोचकर कि, यदि मैं यहीं रही तो, मुझे पकड़कर अंग्रेज मेरी बड़ी दुर्गति करेंगे, पुरुषवेष धारण कर युद्धोपयोगी अस्त्रशस्त्रोंसे सज्जित हो, झाँसीसे हट जानेका विचार किया। उस समय महारानीके हृदयकी जो दशा हुई होगी, उसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं। उन्होंने पीठमें बालकको बाँध लिया, उसको पानी पिलानेके लिये एक चांदीका ग्लास साथमें रख लिया और वे कुछ कट्टर स्वामिभक्त सेवकोंको साथ लेकर झाँसीसे सदाके लिये विदा हुईं। उस समयकी साक्षात् तेजोमयी देवीके समान उनकी ओजस्विनी पवित्र मूर्ति उनके कट्टर शत्रु

अंग्रेजोंके हृदयोंमें भी कौतुक उत्पन्न करती थी। झाँसीसे निकल-कर उनके आगे जो आता उसे वे यमसदनमें भेजती हुईं काल्पीकी ओर रवाना हुईं। उनकी तलवारसे कितने ही विरोधी वीर ज़मीन चूमने लगे और कितने भयके मारे इतस्ततः भाग गये। यह समाचार अंग्रेजी फौजको मिलनेपर उसने रानीका बहुत दूर तक पीछा किया, पर रानी हाथ न आईं। एक बार तो अंग्रेजोंके एक उत्तम सेनापति लेफ्टनेण्ट बौकरने उनको अपनी असंख्य सेना द्वारा चारों ओरसे घेर लिया था। परन्तु रानी चपलताके साथ उस सेनापतिकी जांघमें एक तलवारका वार फटकारकर भाग गईं। सब-लोग मुंह बाये रहगये।

झांसीपर अंग्रेजोंका पुनः अधिकार होजानेपर उन्होंने अपना पुराना बदला चुकानेके लिये झांसी शहरमें विजन (कतले आम) बोल दिया। अब झांसीकी दुर्दशाका पारावार नहीं रहा। शहरकी सब हवेलियाँ और दूकानें जला दी गईं। जलते हुए मनुष्य जब सड़कोंपर प्राण रक्षाके लिये भागने लगे, तब अंग्रेज सिपाहियोंने उनका नाश करना आरम्भ किया। सर्वत्र मरण समयका हाहाकार सुनाई देने लगा। गोरोंको देखकर कोई साष्टाङ्ग दण्डवत करने लगे, कोई चूड़ियाँ पहिनकर स्त्रियोंमें जा घुसे और कोई मरणके भयसे बैठे बैठे ही मर गये। इस प्रकार तीन दिनोंतक मनुष्यवध होता रहा। झांसीकी प्रजाको गोरा यमदूतसा जान पड़ने लगा। प्रायः सब प्रजाका सत्यानाश होनेपर अंग्रेजी सेनाको तीन दिनों तक शहर लूटनेकी आज्ञा हुई। अंग्रेज़ोंने बड़ी बहादुरीके साथ झांसीकी अनगिनती सम्पत्ति लूटी। फिर काली पलटनकी लूट आरम्भ हुई। ज़र ज़वाहिरात गोरोंने पहिले ही लूट लिया था। तौ भी बचे बचाये थाली-लोटा, लुंटिया-लत्ते काली फौजके हाथ लगे। मनमानी लूट होनेके पश्चात् अंग्रेजोंने अभय प्रदान किया।

लूटके मालका बाजार लगा। चारों ओरके लोग क्रमशः एकत्र हो अपने अपने उपयोगकी मामूली चीजें खरीदकर उस उजड़ी दीन झांसीमें उदासीनताके साथ अंग्रेज बहादुरोंके कृपाछत्रकी छायामें आकर बसने लगे।

लक्ष्मीबाईने जब अपने बचावका कोई उपाय नहीं देखा, तब वे झांसीसे भागकर काल्पीमें पेशवाओंसे जा मिलीं। काल्पीपर एकवार अंग्रेजोंने पुनः चढ़ाई की, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। झांसीकी रानी पेशवाओंकी सेनापति हुईं। इससे पेशवाओंके पहिले सेनापतियोंका मन कुछ उदास हो गया। इस कारण जब सर ह्यूरोजकी प्रचण्ड सेनाने पुनः काल्पीपर धावा किया, तब पेशवाओंको किला खाली कर देना पड़ा। रानी वहांसे भागकर कूँच नामक ग्राममें आगईं। वहांपर नाना साहब, रावसाहब, तात्याटोपे, बांदेके नवाब, बाणपुरके राजा तथा गवालियरकी कई एक फौजें उनको आ मिलीं। इससे उनका बल कई गुना बढ़ गया।

अब सबने मिलकर ग्वालियरपर चढ़ाई करना विचारा। क्योंकि ग्वालियरके महाराज जयाजीराव अंग्रेजोंसे मिले हुए थे। यदि उस समय सिंधिया इन लोगोंसे मिले होते, तो यह युद्ध भारतवर्षव्यापी हो जाता। परन्तु अंग्रेजोंका भाग्य अच्छा था, इससे ऐसा न हो सका। सिंधियासे रानीने सहायता मांगी, इसपर वे अंग्रेजोंका पक्ष लेकर रानीसे तथा अपने देश भाइयोंके साथ लड़नेके लिये तैयार हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि, बलवाइयोंने उनसे ग्वालियरका किला छीन लिया और उनको राज्य छोड़कर आगरेके किलेमें भाग जाना पड़ा। ग्वालियरकी गद्दीपर सिंधियाके प्रभु रावसाहब पेशवा प्रतिष्ठित हुए और उनकी ओरसे राज्यकार्य आरम्भ हुआ।

सब सेनापतियोंमें रानी अधिक बुद्धिमती थीं। पेशवा विजयानन्दमें मग्न होकर ब्राह्मणसन्तर्पणमें लग गये, यह बात रानीको अच्छी नहीं लगी। उन्होंने पेशवाको समझाया कि, पहले राज्यका प्रबन्ध करलो, फिर ब्राह्मणोंको खिलाते रहना; पर इस सलाहको किसीने नहीं माना और सब यही समझने लगे कि, अब हम निर्भय हो गये हैं।

इधर अंग्रेजसरकारकी सेनाएँ बलवाइयोंके हाथसे अनेक ग्राम नगरोंको छुड़ाती हुई गवालियरके पास आ पहुंची। यह देख पेशवाओंके लोग घबड़ा कर रानीकी शरण लेने लगे। रानीने सबको अभय दिया और वे अपनी सेनाका प्रबन्ध कर अन्तिम युद्ध करनेको सिद्ध हुईं। ता० १ जून १८५८ से ता० १५ तक उन्होंने कानपुरसे गवालियर तकका देश अपने अधीन कर लिया था, पर पेशवाओंके अप्रबन्धसे उनकी शक्ति व्यर्थ ही नष्ट हुई। हजारों लोगोंका प्राण नाश होनेपर भी अब विजयकी आशा नहीं रही। ता० १५ से १८ तक महारानीने घनघोर संग्राम कर अंग्रेजोंके दांत खूब खट्टे किये। कितने विपक्षी तो रानीकी मनोहर मूर्ति ही देखते खड़े रहे और उनकी तलवारसे अपने शरीरका अन्त कर लेनेमें कृतार्थता मानने लगे। हिन्दू, मुसलमान और अंग्रेजोंके श्वेत, श्याम और आरक्त वर्णके त्रिविध मेघमण्डलमें वे विजलीके समान चमक रही थीं। धुँआँ, धूल और रक्तका कीचड़ उस रणभूमिमें इतना हुआ था कि, उसके देखनेसे रणचण्डीके विकटरूपका हृदयमें उग्रभाव उत्पन्न होता था। महारानी ३ दिनोंतक लड़ते लड़ते थक गई थीं। सन्ध्याके चार बज गये थे। सूर्यनारायणने अपने सुनहले किरण महारानीके गौर शरीरपर फेककर उन्हें अपना मण्डल भेद कर जानेका संकेत किया। इतनेमें एक दम शत्रुओंसे महारानी घेर ली गई। एक नरवीरने उनके सिरपर वार किया।

दूसरेने पेटमें गोली दागी और तीसरेने निर्दयतासे उनकी छातीमें किरिच भोंक दी। महारानीका आधा सिर लटकने लगा और एक आंख बाहर निकल आई। रानीके साथ रामचन्द्रराव देश-मुख लड़ रहे थे। उनसे रानीने कहा, मेरे शरीरको म्लेच्छ स्पर्श न कर सकें, शरीर गिरते ही तुम इसे एकान्तमें लेजाकर जला देना। यह कहते हुए रानीने उन तीनोंको मार गिराया, जिन्होंने उन पर वार किये थे। अब महारानीका शरीर काँपने लगा और वे मूर्छित हो गईं। रामचन्द्रराव बड़ी सावधानीसे उन्हें वहांसे उठा लेगये और सूर्यदेवके साथ सहगमन करनेपर रामचन्द्ररावने एक चिता तैयार कर महारानीके शरीरको अग्निनारायणके अधीन किया। मराठोंका राज्यरविअस्ताचलमें जा छिपा। सन्ध्याके पश्चात् सर्वत्र अन्धकार छा गया।

महारानी लक्ष्मीबाईका देहान्त ज्येष्ठ सुदी ७ संवत् १९१४ ता० १८ जून १८५८ में हुआ। उनकी मृत्युका समाचार सुन अंग्रेज बहादुरोंको भी बहुत दुःख हुआ। गवालियरसे हारकर पेशवा भागे। पेशवा तथा तात्याटोपे बहुत दिनों तक अनेक राजा तथा ब्रिटिशोंको तंग कर रहे थे। एक दिन अनायास वे अंग्रेजोंके हाथ लग कर फाँसी पर चढ़ाये गये।

अब लार्ड डलहौसीकी जगहपर लार्ड कैनिंग आये थे। आप बहुत दूरदर्शी थे। आपने जान लिया था कि, एकके बाद एक कई राज्योंके छीन लेनेसे भारतीय प्रजा असन्तुष्ट हुई है, इससे उन्होंने शान्ति स्थापन करनेकी उदार नीतिका अवलम्बन किया। महा-रानी विक्टोरियाका अविरोधी जाहिरनामा उसी समय प्रसिद्ध हुआ। इससे सब प्रजा निर्भय हुई और ब्रिटिशोंके प्रति भारती-योंका आदर बढ़ने लगा।

बलवा शान्त होनेपर राजा दामोदररावको इन्दौरके रेसिडे-

एटकी कृपा और उद्योगसे २००) रु० मासिक मिलने लगा और वे अब भी इन्दौरमें अपनी दुर्दशाके दिन भोग रहे हैं। उनके नामका ५ लाख रुपया सरकारके खजानेमें जमा था, वह सरकारने जप्त कर लिया ।

महारानीने यद्यपि अंग्रेजोंको विरोध किया, तथापि स्त्री-शरीर पाकर उन्होंने अपनी बुद्धि, चपलता, संग्रामकुशलता, धैर्य्य, गांभीर्य, दृढ़ता आदि गुणोंसे अपना नाम इतिहासमें अमर कर लिया है। इससे कहना पड़ता है :—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः ।

❀ श्रीरस्तु । ❀
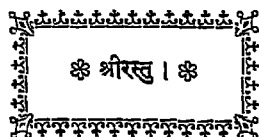
श्रीविश्वनाथो जयति।

धर्मप्रचारका सुलभ साधन।

समाजकी भलाई! मातृभाषाकी उन्नति !!

देशसेवाका विराट् आयोजन !!!

इस समय देशका उपकार किन उपायोंसे हो सकता है? संसारके इस छोरसे उस छोरतक चाहे किसी चिन्ताशील पुरुषसे यह प्रश्न कीजिये, उत्तर यही मिलेगा कि, धर्मभावके प्रचारसे; क्योंकि धर्मने ही संसारको धारण कर रक्खा है। भारतवर्ष किसी समय संसारका गुरु था, आज वह अधःपतित और दीन हीन दशामें क्यों पच रहा है? इसका भी उत्तर यही है कि, वह धर्मभावको खो बैठा है। यदि हम भारतसे ही पूछें कि, तू अपनी उन्नतिके लिये हमसे क्या चाहता है? तो वह यही उत्तर देगा कि, मेरे प्यारे पुत्रों! धर्मभावकी वृद्धि करो। संसारमें उत्पन्न होकर जो व्यक्ति कुछ भी सत्कार्य करनेके लिये उद्यत हुए हैं, उन्हें इस बातका पूर्ण अनुभव होगा कि, ऐसे कार्योंमें कैसे विघ्न और कैसी बाधाएँ उपस्थित हुआ करती हैं। यद्यपि धीर पुरुष उनकी पर्वाह नहीं करते और यथासंभव उनसे लाभ ही उठाते हैं; तथापि इसमें सन्देह नहीं कि, उनके कार्योंमें उन विघ्नबाधाओंसे कुछ रुकावट अवश्य ही हो जाती है। श्रीभारतधर्ममहामण्डलके धर्मकार्य्यमें इस प्रकारकी अनेक बाधाएँ होनेपर भी अब उसे जनसाधारणका हित-साधन करनेका सर्वशक्तिमान् भगवान्ने सुअवसर प्रदान कर दिया है। भारत अधार्मिक नहीं है, हिन्दूजाति धर्म्मप्राण जाति है, उसके रोम रोममें धर्मसंस्कार ओतप्रोत हैं। केवल वह अपने रूपको, धर्मभावको, भूल रही है। उसे अपने स्वरूपकी पहिचान करा देना—धर्मभावको स्थिर रखना ही श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलका एक पवित्र और प्रधान उद्देश्य है। यह कार्य्य २२ वर्षोंसे महामण्डल कर रहा है और ज्यों ज्यों उसको अधिक सुअवसर मिलेगा, त्यों त्यों वह जोर शोरसे यह काम करेगा। उसका विश्वास है कि; इसी

उपायसे देशका सच्चा उपकार होगा और अन्तमें भारत पुनः अपने गुरुत्वको प्राप्त कर सकेगा।

इस उद्देश्यसाधनके लिये सुलभ दो ही मार्ग हैं। (१) उपदेशकों द्वारा धर्मप्रचार करना और (२) धर्म-रहस्य सम्बन्धीय मौलिक पुस्तकोंका उद्धार और प्रकाश करना। महामण्डलने प्रथम मार्गका अवलम्बन आरम्भसे ही किया है और अब तो उपदेशक महाविद्यालय स्थापित कर महामण्डलने वह मार्ग स्थिर और परिष्कृत कर लिया है। दूसरे मार्गके सम्बन्धमें भी यथायोग्य उद्योग आरम्भसे ही किया जा रहा है, विविध ग्रन्थोंका संग्रह और निर्माण करना, मासिकपत्रिकाओंका सञ्चालन करना, शास्त्रीय ग्रंथोंका आविष्कार करना, इस प्रकारके उद्योग महामण्डलने किये हैं और उनमें सफलता भी प्राप्त की है; परन्तु अभी तक यह कार्य संतोषजनक नहीं हुआ है। महामण्डलने अब इस विभागको उन्नत करनेका विचार किया है। तदनुसार दस लाखके मूलधनसे भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड नामकी कम्पनी महामण्डलने स्थापित की है उसके द्वारा कमसे कम दो लाख मूलधन लगाकर पुस्तक प्रकाशनका कार्य प्रारम्भ हो गया है। महामण्डलने अपनी संरक्षकतामें परिचालित निगमागम बुकडिपो भी उक्त सिण्डिकेटको दे दिया है।

उपदेशकों द्वारा जो धर्मप्रचार होता है उसका प्रभाव चिरस्थायी होनेके लिये उसी विषयकी पुस्तकोंका प्रचार होना परम आवश्यक है; क्योंकि वक्ता एक दो बार जो कुछ सुना देगा, उसका मनन विना पुस्तकोंका सहारा लिये नहीं हो सकता। इसके सिवाय सब प्रकारके अधिकारियोंके लिये एक वक्ता कार्यकारी नहीं हो सकता। पुस्तकप्रचार द्वारा यह काम सहल हो जाता है। जिसे जितना अधिकार होगा, वह उतने ही अधिकारकी पुस्तकें पढ़ेगा और महामण्डल भी सब प्रकारके अधिकारियोंके योग्य पुस्तकें निर्माण करेगा। सारांश, देशकी उन्नतिके लिये, भारत गौरवकी रक्षाके लिये और मनुष्योंमें मनुष्यत्व उत्पन्न करनेके लिये महामण्डलने अब पुस्तक प्रकाशन विभागको उक्त सेण्डिकेट द्वारा अधिक उन्नत करनेका विचार किया है और उसकी सर्वसाधारणसे प्रार्थना है कि, वे ऐसे सत्कार्य्यमें इसका हाथ बटावें एवं इस ज्ञानप्रचारक

कार्य्यमें इसकी सहायता कर अपनी ही उन्नति कर लेनेको प्रस्तुत हो जावें।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके व्यवस्थापक पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजकी सहायतासे काशीके प्रसिद्ध विद्वानोंके द्वारा सम्पादित होकर प्रामाणिक, सुबोध और सुदृश्यरूपसे यह ग्रन्थमाला निकलेगी। ग्रंथमालाके जो ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं उसकी नीचे सूची प्रकाशित की जाती है।

स्थिर ग्राहकोंके नियम।

(१) इस समय हमारी ग्रन्थमालामें निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं:—

मंत्रयोगसंहिता (भाषानुवाद-सहित) १)
हठयोगसंहिता ,, ॥)
भक्तिदर्शन (भाषाभाष्य सहित) १)
योगदर्शन (भाषाभाष्य सहित नूतन संस्करण) २)
दैवीमीमांसादर्शन प्रथम भाग (भाषाभाष्यसहित) १॥)
कल्किपुराण (भाषानुवाद सहित) १)
नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत (नवीन संस्करण) १)
उपदेश पारिजात (संस्कृत) ॥)
गीतावली ॥)
भारतधर्ममहामण्डल रहस्य (नूतन संस्करण) १)
धर्मकल्पद्रुम प्रथम खण्ड २)
द्वितीय खण्ड १॥)
,, तृतीय खण्ड २)
,, चतुर्थ खण्ड २)
,, पञ्चम खण्ड २)
,, षष्ठ खण्ड १॥)
श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खण्ड (भाषाभाष्यसहित) १)
गुरुगीता (भाषानुवाद सहित) ।)
शम्भुगीता(भाषानुवादसहित) ॥।)
धीशगीता ,, ॥)
शक्तिगीता ,, ॥।)
सूर्य्यगीता ,, ॥)
विष्णुगीता ,, ॥।)
संन्यासगीता ,, ॥।)
रामगीता (भाषानुवाद और टिप्पणी सहित सजिल्द) २॥)
आचारचन्द्रिका ॥)
नीति चन्द्रिका ॥)
धर्म चन्द्रिका १)
साधन चन्द्रिका १॥)

(२) इनमेंसे जो कमसे कम ४) मूल्यकी पुस्तकें पूरे मूल्यमें खरीदेंगे अथवा स्थिरग्राहक होनेका चन्दा १) भेज देंगे उन्हें शेष और आगे प्रकाशित होनेवाली सब पुस्तकें ¾ मूल्यमें दी जायँगी।

(३) स्थिर ग्राहकोंको मालामें ग्रथित होनेवाली हर एक पुस्तक खरीदनी होगी। जो पुस्तक इस विभाग द्वारा छापी जायगी वह एक विद्वानोंकी कमेटी द्वारा पसन्द करा ली जायगी।

(४) हर एक ग्राहक अपना नम्बर लिखकर या दिखाकर हमारे कार्यालयसे अथवा जहां वह रहता हो वहां महामण्डलकी शाखा सभा हो तो वहांसे, स्वल्प मूल्य पर पुस्तकें खरीद सकेगा।

(५) श्रीमहामण्डलकी जो धर्मसभा इस धर्म्मकार्य्यमें सहायता करना चाहे और जो सज्जन इस ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक होना चाहें वे मेरे नाम पत्र भेजनेकी कृपा करें।

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, अध्यक्ष शास्त्रप्रकाश विभाग,
श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधानकार्य्यालय,
मार्फत भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड भवन.
स्टेशनरोड जगत्‌गंज बनारस शहर।

इस विभाग द्वारा प्रकाशित समस्त धर्मपुस्तकोंका विवरण।

सदाचारसोपान। यह पुस्तक कोमलमति बालक बालिकाओंके धर्म्म शिक्षाके लिये प्रथम पुस्तक है। उर्दू और बंगला भाषामें इसका अनुवाद होकर छपचुका है और सारे भारतवर्षमें इसकी बहुत कुछ उपयोगिता मानी गयी है। इसकी आठ आवृत्तियाँ छप-चुकी हैं। अपने बच्चोंकी धर्मशिक्षाके लिये इस पुस्तकको हर एक हिन्दूको मँगवाना चाहिये। मूल्य -) एक आना।

कन्याशिक्षासोपान। कोमलमति कन्याओंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक बहुतही उपयोगी है। इस पुस्तककी बहुत कुछ प्रशंसा हुई है। इसका बंगला अनुवाद छप चुका है। हिन्दूमात्रको अपनी अपनी कन्याओंको धर्म्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक मंगवानी चाहिये। मूल्य -) एक आना।

धर्मसोपान। यह धर्मशिक्षा विषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इससे धर्मका साधारण ज्ञान भली भांति होजाता है।

यह पुस्तक क्या बालक बालिका, क्या वृद्ध स्त्री पुरुष, सबके लिये बहुत ही उपकारी है। धर्मशिक्षा पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जन अवश्य इस पुस्तकको मंगावें। मूल्य ।) चार आना

ब्रह्मचर्य्यसोपान। ब्रह्मचर्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। सब ब्रह्मचारी आश्रम, पाठशाला और स्कूलोंमें इस ग्रंथकी पढ़ाई होनी चाहिये। मूल्य ≡) तीन आना

साधनसोपान। यह पुस्तक उपासना और साधनशैलीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें बहुत ही उपयोगी है। इसका बंगला अनुवाद भी छपचुका है। बालक बालिकाओंको पहलेसे ही इस पुस्तकको पढ़ना चाहिये। यह पुस्तक ऐसी उपकारी है कि बालक और वृद्ध समानरूपसे इससे साधनविषयक शिक्षा लाभ कर सकते हैं। मू०≡)

शास्त्रसोपान। सनातनधर्मके शास्त्रोंका संक्षेप सारांश इस ग्रन्थमें वर्णित है। सब शास्त्रोंका कुछ विवरण समझनेके लिये प्रत्येक सनातनधर्म्मावलम्बीके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। मूल्य ।) चार आना।

धर्मप्रचारसोपान। यह ग्रंथ धर्मोपदेश देनेवाले उपदेशक और पौराणिक पण्डितोंके लिये बहुत हितकारी है। मू० ≡) तीन आना।

राजशिक्षासोपान। राजा महाराजा और उनके कुमारोंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह ग्रन्थ बनाया गया है; परन्तु सर्वसाधारण-की धर्मशिक्षाके लिये भी यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। इसमें सनातन धर्म्मके अंग और उसके तत्त्व अच्छी तरह बताये गये हैं। मू० ≡) तीन आना।

ऊपर लिखित सब ग्रन्थ धर्मशिक्षा विषयक हैं इस कारण स्कूल, कालेज और पाठशालाओंको इकट्ठे लेनेपर कुछ सुविधासे मिल सकेंगे और पुस्तक विक्रेताओंको इनपर योग्य कमीशन दिया जायगा।

मन्त्रयोगसंहिता। योगविषयक भाषानुवादसहित ऐसा अपूर्व्व ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें मन्त्रयोगके १६ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण, साधनप्रणाली आदि सब अच्छीतरहसे वर्णन किये गये हैं। गुरु और शिष्य दोनों ही इससे परम लाभ उठा सकते

हैं। इसमें मंत्रोंका स्वरूप और उपास्यनिर्णय बहुत अच्छा किया गया है। घोर अनर्थकारी साम्प्रदायिक विरोधके दूर करनेके लिये यह एक मात्र ग्रन्थ है। इसमें नास्तिकोंके मूर्तिपूजा, मन्त्रसिद्धि आदि विषयोंमें जो प्रश्न होते हैं उनका अच्छा समाधान है। मूल्य १) एक रुपया।

हठयोग संहिता। योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें हठयोगके ७ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण, साधन प्रणाली आदि सब अच्छी तरह वर्णन किये गये हैं। गुरु और शिष्य दोनों ही इससे परम लाभ उठा सकते हैं। मू० ॥)

भक्तिदर्शन। श्रीशाण्डिल्य सूत्रोंपर बहुत विस्तृत हिन्दी भाष्यसहित और एक अति विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रणीत हुआ है। हिन्दीका यह एक असाधारण ग्रन्थ है। ऐसा भक्ति-सम्बन्धी ग्रन्थ हिन्दीमें पहले प्रकाशित नहीं हुआ था। भगवद्भक्तिके विस्तारित रहस्योंका ज्ञान इस ग्रन्थके पाठ करनेसे होता है। भक्तिशास्त्रके समझनेकी इच्छा रखनेवाले और श्रीभगवान्में भक्ति करनेवाले धार्मिकमात्रको इस ग्रन्थको पढ़ना उचित है। मूल्य १)

योगदर्शन। हिन्दीभाष्य सहित। इस प्रकारका हिन्दी भाष्य और कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। सब दर्शनोंमें योगदर्शन सर्व-वादिसम्मत दर्शन है और इसमें साधनके द्वारा अन्तर्जगत्के सब विषयोंका प्रत्यक्ष अनुभव करा देनेकी प्रणाली रहनेके कारण इसका पाठन और भाष्य एवं टीका निर्माण वही सुचारु रूपसे कर सकता है जो योगके क्रियासिद्धांशका पारगामी हो। इस भाष्यके निर्माणमें पाठक उक्त विषयकी पूर्णता देखेंगे। प्रत्येक सूत्रका भाष्य प्रत्येक सूत्रके आदिमें भूमिका देकर ऐसा क्रमबद्ध बना दिया गया है कि जिससे पाठकोंको मनोनिवेश पूर्वक पढ़नेपर कोई असम्बद्धता नहीं मालूम होगी और ऐसा प्रतीत होगा कि महर्षि सूत्रकारने जीवोंके क्रमा-भ्युदय और निःश्रेयसके लिये मानों एक महान् राजपथ निर्माणकर दिया है। इसका द्वितीय संस्करण छपकर तय्यार है इसमें इस भाष्यको और भी अधिक सुस्पष्ट, परिवर्द्धित और सरल किया गया है। मू० २)

दैवीमीमांसा दर्शन प्रथम भाग। वेदके तीन काण्ड हैं, यथाः—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञानकाण्ड-का वेदान्त दर्शन, कर्मकाण्डका जैमिनी दर्शन और भरद्वाज दर्शन

और उपासनाकाण्डका यह अङ्गिरा दर्शन है। इसका नाम दैवी-मीमांसा दर्शन है। यह ग्रंथ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ था। इसके चार पाद हैं, यथाः—प्रथम रस पाद, इस पादमें भक्तिका विस्तारित विज्ञान वर्णित है। दूसरा सृष्टि पाद, तीसरा स्थिति पाद और चौथा लय पाद, इन तीनों पादोंमें दैवीमाया, देवताओंके भेद, उपासनाका विस्तारित वर्णन और भक्ति और उपासनासे मुक्तिकी प्राप्तिका सब कुछ विज्ञान वर्णित है। इस प्रथम भागमें इस दर्शन शास्त्रके प्रथम दो पाद हिन्दी अनुवाद और हिन्दी भाष्यसहित प्रकाशित हुए हैं। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

कल्किपुराण। कल्किपुराणका नाम किसने नहीं सुना है। वर्तमान समयके लिये यह बहुत हितकारी ग्रन्थ है। विशुद्ध हिन्दी अनुवाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। धर्म्म जिज्ञासुमात्रको इस ग्रन्थको पढ़ना उचित है। मूल्य १)

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत। भारतका प्राचीन गौरव और आर्य्य-जातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। इसका द्वितीय-संस्करण परिवर्द्धित और संस्कृत होकर छप चुका है। मूल्य १)

उपदेशपारिजात। यह संस्कृत गद्यात्मक अपूर्व ग्रन्थ है। सनातनधर्म्म क्या है, धर्मोपदेश किसको कहते हैं, सनातनधर्म्मके सब शास्त्रोंमें क्या विषय है, धर्म्मवक्ता होनेके लिये किन किन योग्यताओंके होनेकी आवश्यकता है इत्यादि अनेक विषय इस ग्रन्थमें संस्कृत विद्वान्मात्रको पढ़ना उचित है और धर्म्मवक्ता, धर्मोपदेशक, पौराणिक पण्डित आदिके लिये तो यह ग्रन्थ सब समय साथ रखने योग्य हैं। मूल्य ॥) आठ आना

इस संस्कृत ग्रन्थके अतिरिक्त संस्कृत भाषामें योगदर्शन, सांख्य दर्शन, दैवीमीमांसादर्शन, आदि दर्शन सभाष्य, लययोगसंहिता, राजयोगसंहिता, हरिहरब्रह्मसामरस्य, योगप्रवेशिका, धर्मसुधाकर, श्रीमधुसूदनसंहिता आदि ग्रन्थ छप रहे हैं और शीघ्रही प्रकाशित होनेवाले हैं।

गीतावली। इसको पढ़नेसे सङ्गीतशास्त्रका मर्म्म थोड़ेमें ही समझमें आसकेगा। इसमें अनेक अच्छे अच्छे भजनोंका भी

संग्रह है। सङ्गीतानुरागी और भजनानुरागियोंको अवश्य इसको लेना चाहिये। मूल्य ॥) आठ आना।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलरहस्य। इस ग्रन्थमें सात अध्याय हैं, यथा—आर्यजातिकी दशाका परिवर्त्तन, चिन्ताका कारण, व्याधिनिर्णय, औषधि प्रयोग, सुपथ्यसेवन, बीजरक्षा और महायज्ञ साधन। यह ग्रन्थरत्न हिन्दूजातिकी उन्नतिके विषयका असाधारण ग्रन्थ है। प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीको इस ग्रन्थको पढ़ना चाहिये। द्वितीयावृत्ति छप चुकी है। इसमें बहुतसा विषय बढ़ाया गया है। इस ग्रन्थका आदर सारे भारतवर्षमें समान रूपसे हुआ है। धर्मके गूढ़ तत्व भी इसमें बहुत अच्छी तरहसे बताये गये हैं। इसका बंगला अनुवाद भी छप चुका है। मूल्य १) एक रुपया।

श्रीमद्भगवद्गीता प्रथमखण्ड। श्रीगीताजीका अपूर्व हिन्दी भाष्य यह प्रकाशित हो रहा है जिसका प्रथम खण्ड, जिसमें प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्यायका कुछ हिस्सा है, प्रकाशित हुआ है। आजतक श्रीगीताजी पर अनेक संस्कृत और हिन्दी भाष्य प्रकाशित हुए हैं परन्तु इस प्रकारका भाष्य आजतक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। गीताका अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूपी त्रिविध स्वरूप, प्रत्येक श्लोकका त्रिविध अर्थ और सब प्रकारके अधिकारियोंके समझने योग्य गीता-विज्ञानका विस्तारित विवरण इस भाष्यमें मौजूद है। मूल्य १) एक रुपया।

तत्वबोध। भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित। यह मूल ग्रन्थ श्रीशङ्कराचार्यकृत है। इसका बंगानुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। मूल्य =) दो आना।

स्तोत्रकुसुमाञ्जलि मूल। इसमें पञ्चदेवता, अवतार और ब्रह्मकी स्तुतियोंके साथ साथ आज कलकी आवश्यकतानुसार धर्म्म-स्तुति, गंगादि पवित्र स्थानोंकी स्तुति, वेदान्तप्रतिपादक स्तुतियां और काशीके प्रधान देवता श्रीविश्वनाथादिकी स्तुतियां हैं। मूल्य।)

निगमागमचन्द्रिका। प्रथम और द्वितीय भागकी दो पुस्तकें धर्म्मानुरागी सज्जनोंको मिल सकती हैं। प्रत्येकका मूल्य१)एक रुपया।

पहलेके पाँच सालके पाँच भागोंमें सनातनधर्म्मके अनेक गूढ़

रहस्यसम्बन्धी ऐसे २ प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं कि, आजतक वैसे धर्म्मसम्बन्धी प्रबन्ध और कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। जो धर्मके अनेक रहस्य जानकर तृप्त होना चाहें, वे इन पुस्तकोंको मँगावें। मूल्य पाँचों भागोंका २॥) रुपया।

सप्त गीताएं।

पञ्चोपासनाके अनुसार पाँच प्रकारके उपासकोंके लिये पाँच गीताएँ—श्रीविष्णुगीता, श्रीसूर्य्यगीता, श्रीशक्तिगीता, श्रीधीशगीता और श्रीशम्भुगीता एवं, सन्न्यासियोंके लिये सन्न्यासगीता और साधकोंके लिये गुरुगीता भाषानुवादसहित छप चुकी है। श्रीभारतधर्म-महामण्डलने इन सात गीताओंका प्रकाशन निम्नलिखित उद्देश्योंसे किया है:—१म, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको धर्मके नामसे ही अधर्म्म सञ्चित करनेकी अवस्थामें पहुँचा दिया है, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको अहंकारत्यागी होनेके स्थानमें घोर साम्प्रदायिक अहंकारसम्पन्न बना दिया है, भारतकी वर्तमान दुर्दशा जिस साम्प्रदायिक विरोधका प्रत्यक्ष फल है और जिस साम्प्रदायिक विरोधने साकार उपासकोंमें घोर द्वेषदावानल प्रज्वलित कर दिया है, उस साम्प्रदायिक विरोधका समूल उन्मूलन करना और २य, उपासनाके नामसे जो अनेक इन्द्रियासक्तिकी चरितार्थता-के घोर अनर्थकारी कार्य होते हैं, उनका समाजमें अस्तित्व न रहने देना तथा ३य, समाजमें यथार्थ भगवद्भक्तिके प्रचार द्वारा इह-लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयसप्राप्तिकी अनेक सुविधाओंका प्रचार करना। इन सातों गीताओंमें अनेक दार्शनिक तत्त्व, अनेक उपासनाकाण्डके रहस्य और प्रत्येक उपास्य देवकी उपासनासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय सुचारुरूपसे प्रतिपादित किये गये हैं। ये सातों गीताएं उपनिषद्रूप हैं। प्रत्येक उपासक अपने उपास्यदेवकी गीतासे तो लाभ उठावेगा ही, किन्तु, अन्य चार गीताओंके पाठ करनेसे भी वह अनेक उपासनातत्त्वोंको तथा अनेक

वैज्ञानिक रहस्योंको जान सकेगा और उसके अन्तःकरणमें प्रचलित साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे जैसा विरोध उदय होता है, वैसा नहीं होगा और वह परमशान्तिका अधिकारी हो सकेगा। सन्न्यास-गीतामें सब सम्प्रदायोंके साधु और सन्यासियोंके लिये सब जानने योग्य विषय संन्निविष्ट हैं। सन्न्यासिगण इसके पाठ करनेसे विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। गृहस्थोंके लिये भी यह ग्रन्थ धर्म्म-ज्ञानका भाण्डार है। श्रीमहामण्डलप्रकाशित गुरुगीताके सदृश ग्रन्थ आज तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें गुरु-शिष्य-लक्षण, उपासनाका रहस्य और भेद, मन्त्र, हठ, लय और राजयोगोंके लक्षण और अङ्ग एवं गुरुमाहात्म्य, शिष्यकर्तव्य, परम तत्त्वका स्वरूप और गुरुशब्दार्थ आदि सब विषय स्पष्टरूपसे हैं। मूल, स्पष्ट सरल और सुमधुर भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित यह ग्रन्थ छपा है। गुरु और शिष्य दोनोंका उपकारी यह ग्रन्थ है। इसका अनुवाद वंगभाषामें भी छप चुका है। पाठक इन सातों गीताओंको मंगाकर देख सकते हैं, ये छप चुकी हैं। विष्णुगीताका मूल्य ॥।) सूर्यगीताका मूल्य ॥) शक्तिगीताका मूल्य ॥।) धीशगीताका मूल्य ॥) शंभुगीताका मूल्य ॥।) सन्न्यासगीताका मूल्य ॥।) और गुरुगीताका मूल्य ।) है। इनमेंसे पञ्चोपासनाकी पांच गीताओंमें एक एक तीन रंगा विष्णुदेव सूर्य्यदेव भगवती और गणपतिदेव तथा शिवजीका चित्र भी दिया गया है। इनके अतिरिक्त शम्भुगीतामें प्रकाशित वर्णाश्रमबन्ध नामक अद्भुत और अपूर्व्व चित्र भी सर्वसाधा-रणके देखने योग्य है।

धार्मिक विश्वकोष।

(श्रीधर्मकल्पद्रुम)

यह हिन्दुधर्म्मका अद्वितीय और परमावश्यक ग्रन्थ है। हिन्दू जातिकी पुनरुन्नतिके लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयोंकी ज़रूरत है, उनमेंसे सबसे बड़ी भारी जरूरत एक ऐसे धर्म्मग्रन्थकी थी कि, जिनके अध्ययन-अध्यापनके द्वारा सनातनधर्मका रहस्य और उसका विस्तृत स्वरूप तथा उसके अङ्ग उपांगोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और साथ ही साथ वेदों और सब शास्त्रोंका आशय तथा वेदों और सब शास्त्रोंमें कहे हुए विज्ञानोंका यथाक्रम स्वरूप

जिज्ञासुको भलीभाँति विदित हो सके। इसी त्रुटिके अभावको दूर करनेके लिये भारतके प्रसिद्ध धर्मवक्ता और श्रीभारतधर्म्म-महामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजीने इस ग्रन्थका प्रणयन करना प्रारम्भ किया है। इसमें वर्तमान समयके आलोच्य सभी विषय विस्तृत रूपसे दिये जायंगे। अबतक इसके छः खण्डोंमें जो अध्याय प्रकाशित हुए हैं वे ये हैं:—धर्म्म, दानधर्म्म, तपोधर्म, कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ, ज्ञानयज्ञ, महायज्ञ, वेद, वेदाङ्ग, दर्शनशास्त्र (वेदोपाङ्ग) स्मृतिशास्त्र, पुराणशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, उपवेद, ऋषि और पुस्तक, साधारण धर्म्म और विशेष धर्म्म, वर्णधर्म्म, आश्रमधर्म्म, नारीधर्म (पुरुषधर्म्मसे नारीधर्म्मकी विशेषता), आर्यजाति, समाज और नेता, राजा और प्रजाधर्म्म, प्रवृत्तिधर्म्म और निवृत्तिधर्म्म, आपद्धर्म, भक्ति और योग, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, गुरु और दीक्षा, वैराग्य और साधन, आत्मतत्त्व, जीवतत्त्व, प्राण और पीठतत्त्व, सृष्टिस्थितिप्रलयतत्त्व, ऋषि देवता और पितृतत्त्व, अवतारतत्त्व, माया तत्त्व, त्रिगुणतत्त्व, त्रिभावतत्त्व, कर्मतत्त्व, मुक्तितत्त्व, पुरुषार्थ और वर्णाश्रमसमीक्षा, दर्शनसमीक्षा, धर्मसम्प्रदायसमीक्षा, धर्मपन्थसमीक्षा और धर्ममतसमीक्षा। आगेके खण्डोंमें प्रकाशित होनेवाले अध्यायोंके नाम ये हैं:—साधनसमीक्षा, चतुर्दशलोकसमीक्षा, कालसमीक्षा, जीवन्मुक्ति-समीक्षा, सदाचार, पञ्च महायज्ञ, आह्निककृत्य, षोडश संस्कार, श्राद्ध, प्रेतत्व और परलोक, सन्ध्या, तर्पण, ओंकार-महिमा और गायत्री, भगवन्नाम-माहात्म्य, वैदिक मन्त्रों और शास्त्रोंका अपलाप, तीर्थ महिमा, मूर्त्तिग्रहपूजा, गोसेवा, संगीत-शास्त्र, देश और धर्मसेवा इत्यादि इत्यादि। इस ग्रन्थसे आज कलके अशास्त्रीय और विज्ञानरहित धर्मग्रन्थों और धर्मप्रचारके द्वारा जो हानि हो रही है; वह सब दूर होकर यथार्थ रूपसे सनातनवैदिकधर्मका प्रचार होगा। इस ग्रन्थरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपातका लेश मात्र भी नहीं है और निष्पक्षरूपसे सब विषय प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे सकल प्रकारके अधिकारी कल्याण प्राप्त कर सकें। इसमें और भी एक विशेषता यह है कि, हिन्दुशास्त्रके सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके सिवाय, आज कलकी पदार्थविद्या (Science) के द्वारा भी प्रतिपादित किये गये

हैं, जिससे आज कलके नवशिक्षित पुरुष भी इससे लाभ उठा सकें। इसकी भाषा सरल, मधुर और गम्भीर है। यह ग्रंथ चौसठ अध्याय और आठ समुल्लासोंमें पूर्ण होगा और यह बृहत् ग्रन्थ रायल साइजके चार हजार पृष्ठोंसे अधिक होगा, तथा बारह खण्डोंमें प्रकाशित होगा। इसीके अन्तिम खण्डमें आध्यात्मिक शब्दकोष भी प्रकाशित करनेका विचार है। इसके छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम खण्डका मूल्य २), द्वितीयका १॥), तृतीयके द्वितीय संस्करणका २), चतुर्थका २) पञ्चमका २) और षष्ठका १॥) है। इसके प्रथम दो खण्ड बढ़िया कागज पर भी छापे गये हैं और दोनों ही एक बहुत सुन्दर जिल्दमें बांधे गये हैं। मूल्य ५) है। सातवाँ खण्ड यन्त्रस्थ है।

मैनेजर, निगमागम बुकडिपो,

भारतधर्मसिण्डिकेट भवन, स्टेशनरोड जगतगंज, बनारस (शहर)

श्रीरामगीता।

यह सर्व जीवहितकर उपनिषद् ग्रन्थ अबतक अप्रकाशित था। श्रीमहर्षि वशिष्ठकृत 'तत्त्व सारायण' नामक एक विराट ग्रंथ है, उसीके अन्तर्गत यह गीता है। इसके १८ अध्याय हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं, १-अयोध्यामण्डपादिवर्णन, २-प्रमाणसारविवरण, ३-ज्ञानयोगनिरूपण, ४-जीवन्मुक्तिनिरूपण, ५-विदेहमुक्तिनिरूपण, ६-वासनाक्षयादिनिरूपण, ७-सप्तभूमिकानिरूपण, ८-समाधिनिरूपण, ९-वर्णाश्रमव्यवस्थापन, १०-कर्मविभागयोगनिरूपण, ११-गुणत्रयविभागयोगनिरूपण, १२-विश्वरूपनिरूपण, १३-तारकप्रणवविभागयोग, १४-महावाक्यार्थविवरण, १५-नवचक्रविवेकयोगनिरूपण, १६-अणिमादिसिद्धिदूषण, १७-विद्यासन्ततिगुरुतत्त्वनिरूपण, १८-सर्वाध्यायसङ्गतिनिरूपण। कर्म, उपासना और ज्ञानका अद्भुत सामञ्जस्य इस ग्रन्थमें दिखाया गया है। विषयोंके स्पष्टीकरणके लिये ग्रन्थमें ७ त्रिवर्ण चित्र भी दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—१-श्री राम, सीतामाता, वीर लक्ष्मण, २—श्री राम, लक्ष्मण और जटायु, ३—श्रीराम, सीता और हनूमान्, ४—बृहत् श्रीरामपञ्चायतन, ५—श्रीसीताराम, ६—श्रीरामपञ्चायतन, ७—श्रीराम

हनूमान्। इनके सिवाय इसके सम्पादक स्वर्गीय श्रीदरबार महारावल बहादुर डूँगरपुर नरेश महोदयका भी हाफ टोन चित्र छापा गया है। बढ़िया कागज पर सुन्दर छपाई और मजबूत जिल्दबन्दी भी हुई है। स्वर्गीय महारावल बहादुरने बड़े परिश्रमसे इस ग्रन्थका सरल हिन्दी भाषामें अनुवाद किया है और उनके पूज्यपाद गुरुदेवने अति सुन्दर वैज्ञानिक टिप्पणियाँ लिखकर ग्रंथको सर्वाङ्ग सुन्दर बनाया है। ग्रन्थके प्रारम्भमें जो भूमिका दी गई है, उसमें श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रकी समालोचना अलौकिक रीति पर की गई है, जिसके पढनेसे पाठक कितनेही गूढ़ रहस्योंका परिचय पा जायंगे। आज तक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित न होनेसे यह अप्राप्य और अमूल्य है। आशा है, सर्व साधारण इसका संग्रह कर नित्यपाठ कर और इसमें उल्लिखित तत्त्वोंका चिन्तन कर कर्म, उपासना और ज्ञानके अद्भुत सामञ्जस्यका अलभ्य लाभ उठावेंगे और श्रीभारतधर्म-महामण्डलके शास्त्रप्रकाशक विभागको अनुगृहीत करेंगे। मूल्य २॥)

अंग्रेजी भाषाके धर्म्मग्रन्थ।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल–शास्त्रप्रकाशक विभाग द्वारा प्रकाशित सब संहिताओं गीताओं और दार्शनिक ग्रन्थोंका अंग्रेजी अनुवाद तैयार हो रहा है जो क्रमशः प्रकाशित होगा। सम्प्रति अंग्रेजी भाषामें एक ऐसा ग्रन्थ छप गया है जिसके द्वारा सब अंग्रेजी पढ़े व्यक्तियोंको सनातनधर्मका महत्त्व, उसका सर्वजीवहितकारी स्वरूप, उसके सब अङ्गोंका रहस्य, उपासनातत्त्व, योगतत्त्व, काल और सृष्टितत्त्व, कर्म्मतत्त्व, वर्णाश्रमधर्मतत्त्व इत्यादि सब बड़े बड़े विषय अच्छी तरह समझमें आ जावें। इसका नाम "वर्ल्ड्स इटरनल रिलिजन" है। इसका मूल्य, रायलएडीशनका ५) और साधारणका ३) है। दोनोंमें जिल्द बंधी हुई है और सात त्रिवर्ण चित्र भी दिये हैं।

विविध विषयोंकी पुस्तकें।

असभ्यरमणी =) आनन्द रघुनन्दन नाटक ||) आचारप्रबन्ध १) इङ्गलिशग्रामर |) उपन्यास कुसुम ≡) कल्किपुराण, उर्दू ||) कार्त्तिकप्रसादकी जीवनी =) काशीमुक्ति विवेक |) गोवंशचिकित्सा |) दुर्गेशनन्दिनी द्वितीय भाग |=) धनुर्वेद संहिता |) पारिवारिक प्रबन्ध १) प्रयाग-माहात्म्य ||=) प्रवासी =) बारहमासी -) मानस-

मञ्जरी ।) मङ्गलदेव पराजय ≈) रागरत्नाकर २) रामगीता ≈)
वीरबाला ॥) वैष्णवरहस्य)॥ शास्त्रीजीके दो व्याख्यान ≈) सार
मञ्जरी ।) सिद्धान्तकौमुदी २) क्षत्रियहितैषिणी ~)

नोट-पचीस रुपयोंसे अधिककी पुस्तक खरीदनेवालेको योग्य कमीशनी भी दिया जायगा ।

शीघ्र छपने योग्य ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यकी पुष्टिके अभिप्रायसे तथा धर्मप्रचारकी शुभ वासनासे निम्नलिखित ग्रन्थ छापनेको तैयार हैं। यथाः-भरद्वाजकृत कर्ममीमांसादर्शनके भाष्यभाष्यका प्रथम खंड, सांख्यादर्शनका भाषाभाष्य, व्रतोत्सवचन्द्रिका नित्यकर्मचन्द्रिका।

मैनेजर, निगमागम बुकडीपो
भारतधर्मसिण्डिकेटभवन, स्टेशनरोड जगतगंज बनारस (शहर)

श्रीमहामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालय ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधानकार्य्यालय काशीमें साधु और गृहस्थ धर्मवक्ता प्रस्तुत करनेके अर्थ श्रीमहामण्डल-उपदेशक-महाविद्यालय नामक विद्यालय स्थापित हुआ है। इसमें उपयुक्त छात्रावास और छात्रवृत्तिका भी प्रबन्ध है जो साधुगण दार्शनिक और धर्मसम्बन्धी ज्ञानलाभ करके अपने साधु जीवनको कृतकृत्य करना चाहें और जो विद्वान् गृहस्थ धार्मिक शिक्षा लाभ करके धर्म-प्रचार द्वारा देशकी सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वाह करना चाहें वे निम्नलिखित पते पर पत्र भेजें।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्ममहामण्डल, प्रधान कार्यालय,
जगतगंज, बनारस (छावनी)।

श्रीभारतधर्म्म महामण्डलमें नियमित धर्मचर्चा ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल धर्मपुरुषार्थमें जैसा अग्रसर हो रहा है, सर्वत्र प्रसिद्ध है। मण्डलके अनेक पुरुषार्थोंमें 'उपदेशक महाविद्यालय' की स्थापना भी गणना करने योग्य है। अच्छे धार्म्मिक वक्ता इसमें निर्माण हुए, होते हैं और होते रहेंगे, ऐसा इसका प्रबन्ध हुआ है। अब इसमें दैनिक पाठ्यक्रमके अतिरिक्त यह भी प्रबन्ध

हुआ है कि रात्रिके समय महीनेमें दस दिन व्याख्यान-शिक्षा, दस दिन शास्त्रार्थ-शिक्षा और दस दिन संगीत-शिक्षा भी दी जाया करे। वक्तृताके लिये संगीतका साधारण ज्ञान होना आवश्यक है और इस पंचम वेदका (शुद्ध संगीतका) लोप हो रहा है। इस कारण व्याख्यान और शास्त्रार्थ-शिक्षाके साथ संगीत-शिक्षाका भी समावेश किया गया है। सर्वसाधारण भी इस धर्मचर्चाका यथासमय उपस्थित होकर लाभ उठा सकते हैं।

निवेदक—सेक्रेटरी महामण्डल,
जगत्‌गंज, बनारस।

हिन्दू धार्मिक विश्वविद्यालय।

(श्री शारदामण्डल)

हिन्दूजातिकी विराट् धर्म्मसभा श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलका यह विद्यादान विभाग है। वस्तुतः हिन्दूजातिके पुनरभ्युदय और हिन्दूधर्म्मकी शिक्षा सारे भारतवर्षमें फैलानेके लिये यह विश्व-विद्यालय स्थापित हुआ है। इसके प्रधानतः निम्न लिखित पाँच कार्य विभाग हैं।

(१) श्री उपदेशक महाविद्यालय (हिन्दू कालेज ओफ डिवि-निटी) इस महाविद्यालयके द्वारा योग्य धर्मशिक्षक और धर्मोपदे-शक तैयार किये जाते हैं। अंग्रेजी भाषाके बी० ए० पास अथवा संस्कृत भाषाके शास्त्री आचार्य्य आदि परीक्षाओंकी योग्यता रखने-वाले पण्डित ही छात्ररूपसे इस महाविद्यालयमें भरती किये जाते हैं। छात्रवृत्ति २५) माहवार तक दी जाती है।

(२) धर्मशिक्षाविभाग। इस विभागके द्वारा भारतवर्षके प्रधान प्रधान नगरोंमें ऊपर लिखित महाविद्यालयसे परीक्षोत्तीर्ण एक एक पण्डित स्थायीरूपसे नियुक्त करके उक्त नगरोंके स्कूल, कालेज और पाठशालाओंमें हिन्दूधर्मकी धार्मिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया जाता है। वे पण्डितगण उन नगरोंमें सनातनधर्मका प्रचार भी करते रहते हैं। ऐसा प्रबन्ध किया जा रहा है कि जिससे महामण्डलके प्रयत्नसे सब बड़े बड़े नगरोंमें इस प्रकार धर्मकेद्र स्थापित हो और वहां मासिक सहायता भी श्रीमहामण्डलकीओरसे दी जाय।

(३) श्रीआर्य्यमहिलामहाविद्यालय भी इसी शारदामण्डलका अंग समझा जायगा और इस महाविद्यालयमें उच्च जातिकी विधवाओंके पालन पोषणका पूरा प्रवन्ध करके उनको योग्य धर्मोपदेशिका, शिक्षयित्री और गवर्नेस आदिके काम करनेके उपयोगी वनाया जायगा।

(४) सर्वधर्मसदन (हाल आफ आल रिलिजन्स) इस नामसे यूरोपीय महायुद्धके स्मारक रूपसे एक संस्था स्थापित करनेका प्रवंध हो रहा है। यह संस्था श्रीमहामण्डलके प्रधान कार्य्यालय तथा उपदेशक महाविद्यालयके निकट ही स्थापित होगी। इस संस्थाके एक ओर सनातन धर्मके अतिरिक्त सव प्रधान प्रधान धर्ममतोंके उपासनालय रहेंगे जिनमें उक्त धर्म्मोंके जाननेवाले एक एक विद्वान् रहेंगे। दूसरी ओर सनातनधर्मके पञ्चोपासनाके पाँच देवस्थान और लीलाविग्रह उपासना आदिके देवमन्दिर रहेंगे। इसी संस्थामें एक वृहत् पुस्तकालय रहेगा कि जिसमें पृथिवी भरके सव धर्ममतोंके धर्मग्रंथ रक्खे जायँगे और इसी संस्थासे संश्लिष्ट एक व्याख्यानालय और शिक्षालय (हाल) रहेगा जिसमें उक्त विभिन्न धर्मोंके विद्वान् तथा सनातन धर्मके विद्वान्‌गण यथाक्रम व्याख्यानादि देकर धर्मसम्बन्धीय अनुसन्धान तथा धर्मशिक्षा—कार्य्यकी सहायता करेंगे। यदि पृथिवीके अन्य देशोंसे कोई विद्वान् काशीमें आकर इस सर्वधर्मसदनमें दार्शनिक शिक्षा लाभ करना चाहेगा तो उसका भी प्रवन्ध रहेगा।

(५) शास्त्रप्रकाशक विभाग। इस विभागका कार्य स्पष्ट ही है। इस विभागसे धर्मशिक्षा देनेके उपयोगी नाना भाषाओंकी पुस्तकें तथा सनातनधर्मकी सव उपयोगी मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं और होंगी।

इस प्रकारसे पाँच कार्य्यविभाग और संस्थाओंमें विभक्त होकर श्रीशारदामण्डल सनातनधर्मावलम्बियोंकी सेवा और उन्नति करनेमें प्रवृत्त रहेगा।

प्रधान मंत्री
श्रीभारतधर्म महामण्डल,
प्रधान कार्यालय, वनारस।

आर्यजातिकी वास्तविक उन्नति।

अनन्तकालसे यह आर्य्यजाति अपने स्वरूपमें विद्यमान है। इस जातिके देखते देखते पृथिवीकी कितनी ही मनुष्य जातियाँ थोड़े समयमें ही कालसमुद्रमें डूबकर अपनी सत्ता खो बैठीं। इसकी निद्रावस्थामें ही कितनी जातियाँ आईं और कितनी चली गईं और यह अबतक भी इस घोर कलिकालमें अपनी रक्षा करती चली जा रही है—इसका कारण केवल शिक्षा है। पहले इस जातिकी शिक्षा-प्रणाली ऐसी सुधरी हुई थी कि, यवनकालमें सैकड़ों हृदयविदारक घोर अत्याचार होनेपर भी इसका बाल बांका नहीं हो सका। परन्तु आश्चर्य्य है कि, आज अनायास ही यह जाति विजातीय धारा-प्रवाहमें बहती चली जा रही है। वास्तविकमें, किसी जातिका रहना या न रहना उसकी शिक्षा ही पर निर्भर है। शिक्षाके ही प्रभावसे विदेशीय अनेक जातियोंकी सत्ता नष्ट हो चुकी है,—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पाश्चात्य इतिहास दे रहा है। आजकल भी जो यह जाति विदेशीय प्रवाहमें बहती है, विचार करनेपर पता लगेगा कि, इसका कारण भी शिक्षा ही है। आर्य्यजातिके दुर्भाग्य-वश किसी स्कूल-कालेज, हिन्दी या संस्कृत विद्यालय कहीं भी इस धर्मप्राण आर्य्यजातिकी धार्मिकशिक्षाका प्रबन्ध कुछ भी नहीं है। यह सौभाग्यकी बात है कि, श्रीभारतधर्ममहामण्डल, स्कूल कालेजों में आर्य्यजातिको धार्मिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध कर रहा है। इसके लिये उपयुक्त ग्रंथ अंग्रेजी, हिन्दी और अन्यान्य भाषाओंमें भी तैयार कर चुका है। निम्नलिखित पुस्तकें कालेज, स्कूल, हिन्दी और संस्कृत पाठशालाओंमें धर्मशिक्षा देनेके लिये कैसी पर्याप्त हैं, सो निम्नलिखित सूचीके पाठ करनेसे ही विदित होगा।

(१) **वर्ल्डस इटरनल रिलिजन**—यह सम्प्रति अंग्रेजी भाषामें एक ऐसा ग्रन्थ छप गया है, जिसके द्वारा सब अंग्रेजी पढ़े व्यक्तियोंको सनातनधर्मका महत्त्व, उसका सर्वजीव हितकारी स्वरूप उसके सब अङ्गोंका रहस्य, उपासनातत्त्व, योगतत्त्व, काल और सृष्टि-तत्त्व, कर्मतत्त्व, वर्णाश्रमधर्मतत्त्व इत्यादि सब बड़े २ विषय अच्छी तरह समझमें आ जावेंगे। इसका मूल्य राजसंस्करणका ५) और

साधारण संस्करण का ३) है। अंग्रेजी भाषामें आजतक सनातन-धर्मका कोई भी ग्रंथ ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ था। ८ त्रिवर्ण चित्र भी इसमें दिये गये हैं।

(२) प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत—यह पुस्तक प्रकाशित हो गयी। नामसे ही इसका गुण प्रकाशित है। मूल्य २)

(३) साधनचन्द्रिका—इसमें मंत्रयोग, हठयोग, लय-योग और राजयोग इन चारों योगोंका संक्षिप्त परन्तु अति सुन्दर वर्णन किया गया है। मूल्य १॥)

(४) शास्त्रचन्द्रिका—यह ग्रन्थ हिन्दुशास्त्रोंकी बातें दर्पणवत् प्रकाशित करनेवाला है। [यन्त्रस्थ]

(५) धर्मचन्द्रिका—एन्ट्रेन्स क्लासके बालकोंके पाठनो-पयोगी उत्तम धर्म-पुस्तक है। इसमें सनातनधर्मका उदार सार्वभौम स्वरूप-वर्णन, यज्ञ, दान, तप आदि धर्माङ्गोंका विस्तृत वर्णन, वर्ण-धर्म, आश्रमधर्म, नारीधर्म, आर्य्यधर्म, राजधर्म तथा प्रजाधर्मके विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है॥ कर्म-विज्ञान, सन्ध्या, पञ्च महा-यज्ञ आदि नित्यकर्मोंका वर्णन, षोडश संस्कारोंके पृथक् पृथक् वर्णन और संस्कारशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि द्वारा मोक्षका यथार्थ मार्ग निर्देश किया गया है। इस ग्रन्थके पाठसे छात्रगण धर्मतत्त्व अवश्य ही अच्छी तरहसे जान सकेंगे। मूल्य १)

(६) नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत—भारतका प्राचीन गौरव और आर्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। इसका द्वितीय संस्करण परिवर्द्धित और सुन्दर होकर छप चुका है। मूल्य १)

(७) आचारचन्द्रिका—यह भी स्कूलपाठ्य सदाचार-सम्बन्धीय धर्मपुस्तक है। इसमें प्रातः कालसे लेकर रात्रिमें निद्राके पहले तक क्या क्या सदाचार किसलिये प्रत्येक हिन्दुस्तानी-को अवश्य पालने चाहिये, इसका रहस्य उत्तम रीतिसे बताया गया है और आधुनिक समयके विचारसे प्रत्येक आचार पालनका

वैज्ञानिक कारण भी दिखाया गया है। यह ग्रन्थ, बालकोंके लिये अवश्य ही पाठ करने योग्य है। मूल्य ॥)

(८) नीतिचन्द्रिका---इस ग्रन्थमें नीतिकी मार्मिक बातोंका भली भाँति वर्णन किया गया है। बीच २ में संस्कृत श्लोकोंके हिन्दी भाषामें मनोहर अनुवाद भी दिये गये हैं। मूल्य ॥)

(९) चरित्रचन्द्रिका---इस ग्रन्थमें पौराणिक ऐतिहासिक और आधुनिक महापुरुषोंके सुन्दर मनोहर विचित्र चरित्र वर्णित हैं।

[१०] धर्म्मसोपान— यह धर्म्मशिक्षा विषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इसमें धर्मका साधारण ज्ञान भली भाँति हो जाता है। यह पुस्तक क्या बालक बालिका, क्या वृद्ध, स्त्री, पुरुष सबके लिये बहुत ही उत्तम है। धर्मशिक्षा पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जन अवश्य इस पुस्तकको मँगावें। मूल्य ।) चारआना।

[११) धर्मप्रश्नोत्तरी—सनातनधर्मके प्रायः सब सिद्धान्त अति संक्षिप्तरूपसे इस पुस्तिकामें लिखे गये हैं। प्रश्नोत्तरीकी प्रणाली ऐसी सुन्दर रक्खी गई है कि, छोटे बच्चे भी धर्मतत्त्वोंको भली भाँति हृदयङ्गम कर सकेंगे। भाषा भी अति सरल है। कागज और छपाई बढ़ियाँ होनेपर भी मूल्य केवल ।) मात्र है।

[१२] सदाचारसोपान—यह पुस्तक कोमलमति बालक बालिकाओंके धर्मशिक्षाके लिये प्रथम पुस्तक है। उर्दू और बंगला भाषामें इसका अनुवाद होकर छपचुका है और सारे भारतवर्षमें इसकी बहुत कुछ उपयोगिता मानी गई है। इसकी पांच आवृत्तियाँ छपचुकी हैं। अपने बच्चोंकी धर्मशिक्षाके लिये इस पुस्तकको हर एक हिन्दूको मँगवाना चाहिये। मूल्य =)

पता—

मैनेजर, निगमागम बुकडिपो

भारतधर्म सिंडिकेट भवन, स्टेशनरोड, जगतगंज, बनारस।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके सभ्यगण और मुखपत्र ।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशीसे एक हिन्दी भाषाका और दूसरा अंग्रेजी भाषाका, इस प्रकार दो मासिक-पत्र प्रकाशित होते हैं, एवं श्रीमहामण्डलके अन्यान्य भाषाओंके मुखपत्र श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय कार्य्यालयोंसे प्रकाशित होते हैं। यथाः-फिरोजपुर (पञ्जाब) के कार्य्यालयसे उर्दू भाषाका मुखपत्र और मेरठ और कानपुरके कार्य्यालयोंसे हिन्दी भाषाके मुखपत्र।

श्रीमहामण्डलके पांच श्रेणीके सभ्य होते हैं, यथाः-स्वाधीन नरपति और प्रधान प्रधान धर्म्माचार्य्यगण संरक्षक होते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंके बड़े बड़े ज़मींदार, सेठ, साहुकार आदि सामाजिक नेतागण उस उस प्रान्तके चुनावके द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं। प्रत्येक प्रान्तके अध्यापक ब्राह्मणगणमेंसे उस उस प्रान्तीय मण्डलके द्वारा चुने जाकर धर्म्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पांच प्रकारके सहायक सभ्य लिये जाते हैं, विद्यासम्बन्धी कार्य करनेवाले सहायक सभ्य, धर्म-कार्य्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामण्डल, प्रान्तीयमण्डल और शाखासभाओंको धनदान करनेवाले सहायक सभ्य, विद्यादान करने वाले विद्वान् ब्राह्मण सहायक सभ्य और धर्म्मप्रचार करनेवाले साधु संन्यासी सहायक सभ्य। पाँच श्रेणीके सभ्य साधारण सभ्य होते हैं जो हिन्दुमात्र हो सकते हैं। हिन्दु कुलकामिनीगण केवल प्रथम तीन श्रेणीकी सहायक सभ्या और साधारणःसभ्या हो सकती हैं। इन सब प्रकारके सभ्यों और श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय मण्डल, शाखा सभा और संयुक्त सभाओंको श्रीमहामण्डलका हिन्दी अथवा अंग्रेज़ी भाषाका मासिकपत्र विना मूल्य दिया जाता है। नियमितरूपसे नियत वार्षिक चन्दा २॥) दो रुपये आठ आने आमदनी देनेपर हिन्दू नरनारी साधारण सभ्य हो सकते हैं। साधारण सभ्योंको विना मूल्य मासिकपत्रिकाके अतिरिक्त उनके उत्तराधिकारियोंको समाज हितकारी कोषके द्वारा विशेष लाभ मिलता है।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल, प्रधानकार्य्यालय।
जगतगंज, बनारस।

आर्यमहिलामहाविद्यालयकी नियमावली।

(१) आर्यमहिलाओंमें तथा हिन्दू-अन्तःपुरोंमें सनातनधर्मका प्रचार, आर्यसदाचारका विस्तार, धर्मशिक्षादान और स्वदेश तथा स्वजातिप्रेमकी जागृतिके उद्देश्यसे धर्मप्रचारिकाएँ, शिक्षयित्रियां और बालप्रतिपालिकाएँ (Governess) प्रस्तुत करनेके लिये श्रीकाशीपुरीमें यह आर्यमहिलामहाविद्यालय स्थापित रहेगा।

(२) वर्णाश्रमको माननेवाली ब्राह्मण, तथा उच्च जातिकी विधवायें इस महाविद्यालयमें भर्त्ती की जायँगी। विशेष कारण होनेपर उच्चकुलकी सधवा, अथवा कुमारी स्त्रियां भी भर्त्ती की जायँगी।

(३) इस महाविद्यालयसे संरक्षित एक विधवाश्रम रहेगा। जिसमें साधारणतः उच्चजातिकी विधवायें अर्थात् जिस जातिमें विधवाविवाह अधर्म समझा जाता है, ली जायँगी। यह विधवाश्रम आर्यमहिलामहाविद्यालयका पोषक भी समझा जायगा। इसमें साधारण तौरपर हिन्दी भाषा, धर्म तथा शिल्पादिकी शिक्षा दी जायगी।

(४) विशेष विभाग, जो कि नं० १ और २ के अनुसार स्थापित किया जायगा, उसमें भर्त्ती होनेकी योग्यता निम्नलिखित होगी:—

(क) धर्मप्रचारिका-श्रेणीमें केवल ब्राह्मण-विधवायें ली जायंगी।

(ख) शिक्षयित्री-श्रेणी तथा बालप्रतिपालिका-श्रेणीमें सब उच्चजातिकी विधवायें ली जा सकेंगी, जिनमें विधवाविवाहका होना अधर्म समझा जाता है।

(ग) इस विशेष विभागमें भर्त्ती होनेवाली सब आर्यमहिलाओंको एक विशेष धर्मप्रतिज्ञा पत्रपर दस्तखत करके आजीवन धर्म और देशसेवाके व्रतको धारण करना होगा।

(घ) किसी प्रादेशिक भाषा अथवा हिन्दीमें कुछ ज्ञान पहलेसे रहना आवश्यक होगा। संस्कृतका बोध रहे, तो वह आदरणीय होगी।

(४) महाविद्यालयमें जबतक उक्त विधवायें पढ़ेंगी, तबतक उनको महाविद्यालय तथा आर्यमहिलामहापरिषद्की नियमावली माननी होगी और पाठ समाप्त करके धर्मकार्य करनेके समय श्रीभारतधर्ममहामण्डल तथा आर्यमहिलामहापरिषद्के नियम और उपनियमोंके अनुसार उनको कार्य करना होगा।

(५) विधवाश्रममें केवल भोजन वस्त्रके लायक सहायता दी जायगी और विशेष विभागमें योग्यतानुसार ८) से २०) तक मासिक वृत्ति दी जायगी। जबतक वे परीक्षाकोटिमें रहेंगी, तब तक इससे कम वृत्ति दी जायगी।

(६) महाविद्यालयकी पाठ समाप्तिके अनन्तर जो महिलाएं केवल स्वधर्म, स्वजाति और स्वदेशकी सेवाके लिये प्रधान कार्यालय काशीमें रहकर शुभ धर्मव्रतका पालन करेंगी, उनके आजीवन तीर्थवासका तथा उनका अन्यान्य सब खर्च सभा उठावेगी और जो महिलाएं परीक्षोत्तीर्ण होनेके बाद बाहर वेतन लेकर कार्य करना चाहेंगी, उनके लिये योग्य वेतनपर कार्य ढूंढ कर दिया जायगा

(७) विधवाश्रममें रहनेका कोई समय नियत नहीं रहेगा। परन्तु महाविद्यालयमें शिक्षाका समय तीन वर्षसे सात वर्ष तकका होगा। उच्चशिक्षा चाहनेवाली आर्यमहिलाओंको और भी अधिक समय दिया जा सकेगा।

(८) विद्या, धर्मसेवा और कार्य्यपटुता आदि गुणावलीके विचारसे परीक्षोत्तीर्ण आर्यमहिलाओंको श्रीभारतधर्ममहामण्डलसे मानपत्र अथवा विद्या वा धर्मकी उपाधि दिलाकर उत्साहित किया जायगा।

(९) महाविद्यालयकी आर्य्यमहिलाओंको सदाचार पालन, मर्यादापालन और धर्मव्रत पालनके विशेष विशेष नियमोंको पालन करना होगा। अवश्य ही ये सब नियम वर्णाश्रममर्यादा, स्वकुलमर्यादा और अपनी अपनी उपासना मर्यादाके विरुद्ध नहीं होंगे।

(१०) महाविद्यालयकी विद्यार्थिनियां महाविद्यालयके छात्रीनिवासमें रह सकेंगी, विधवाश्रममें रह सकेंगी अथवा काशीमें अन्यत्र भी रह सकेंगी।

(११) सब विद्यार्थिनियोंको नियमित रूपसे व्याख्यानश्रेणी, बैठकर परस्पर धर्मजिज्ञासाश्रेणी और सङ्गीत श्रेणीमें अवश्य शिक्षालाभ करना होगा।

(१२) हिन्दी भाषामें योग्यता लाभ करना सबके लिये अवश्य कर्त्तव्य होगा।

(१३) महाविद्यालयकी साधारण शिक्षापद्धतिमें निम्नलिखित विषय होंगे, अर्थात् प्रथमावस्थामें सबको निम्नलिखित विषयोंमें शिक्षालाभ करना होगाः—

(क) संस्कृत भाषा शिक्षा।
(ख) हिन्दी भाषा शिक्षा।
(ग) अंग्रेजी भाषाकी साधारण शिक्षा।
(घ) वक्तृताके द्वारा साधारण इतिहास शिक्षा।
(ङ) नकशेपर भूगोलकी साधारण शिक्षा।
(च) अङ्क शास्त्रकी साधारण शिक्षा।
(छ) धर्म सम्बन्धीय शिक्षा।
(ज) सङ्गीत विद्याकी साधारण शिक्षा।
(झ) नित्य कर्म उपासनादिकी शिक्षा।
(ञ) चिकित्सा विद्याकी साधारण शिक्षा।
(ट) देशकाल ज्ञानकी मौखिक शिक्षा।

(१४) महाविद्यालयकी विशेष-शिक्षा पद्धतिमें निम्नलिखित विषय होंगेः—

(क) धर्मप्रचारिका विभागमें सब दर्शनोंकी शिक्षा, सब प्रकारके योगसाधनकी साधारण शिक्षा, वक्तृता देनेकी, बैठकर धर्म सिद्धान्त निर्णयकी विशेष शिक्षा और धर्मशास्त्रकी शिक्षा दी जायगी।

(ख) शिक्षयित्री विभागमें पढ़ानेकी शैलीकी शिक्षा, कारीगरी और शिल्प आदिकी शिक्षा, सङ्गीत शास्त्रकी शिक्षा, हिन्दी, संस्कृत और अंगरेजी भाषाओंकी विशेष शिक्षा और धर्मशास्त्रादिकी विशेष शिक्षा दी जायगी।

(ग) बालप्रतिपालिका (Governess) विभागमें ऊपर लिखित 'ख' विभागके सब विषयोंकी शिक्षा देनेके अतिरिक्त बालक

बालिकाओंके लालन पालन करनेकी रीतिकी शिक्षा, पाकप्रणालीकी विशेष शिक्षा, चिकित्सा विद्याकी विशेष शिक्षा, आचार तथा रीतिनीतिकी शिक्षा और अन्यान्य गृहकर्मकी शिक्षा दी जायगी।

(१५) व्याख्यान श्रेणीके साथ ही साथ ऐसा प्रबन्ध रहेगा कि, मौखिक उपदेश द्वारा महाविद्यालयकी आर्य्यमहिलाओंको नाना आवश्यकीय विषयोंकी शिक्षा दी जायगी।

(१६) सबको नियमित उपासना और योगादिका अधिकारानुसार शिक्षालाभ तथा अनुष्ठान करना होगा।

"आर्यमहिला"के नियम।

१—श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिकाके रूपमें आर्य्यमहिला प्रकाशित होती है।

२—महापरिषद्की सब प्रकारकी सभ्या महोदयाओं और सभ्य महोदयोंको यह पत्रिका विना मूल्य दी जाती है। अन्य ग्राहकोंको ६) वार्षिक अग्रिम देनेपर प्राप्त होती है। प्रति संख्याका मूल्य १॥) है।

३—पुस्तकालयों (पब्लिक लाइब्रेरियों), वाचनालयों (रीडिंगरूमों) और कन्यापाठशालाओंको केवल ३) वार्षिक मूल्यमें दी जाती है।

४—योग्य लेखकों तथा लेखिकाओंको नियत पारितोषिक दिया जाता है और विशेष योग्य लेखकों तथा लेखिकाओंको अन्यान्य प्रकारसे भी सम्मानित किया जाता है।

५—हिन्दी लिखनेमें असमर्थ मौलिक लेखक लेखिकाओंके लेखोंका अनुवाद कार्यालयसे कराकर छापा जाता है।

पत्र व्यवहार सम्पादक 'आर्य्यमहिला' के नाम करना चाहिये।